

# विश्व का सूर्य

परम पूज्य आचार्य श्री  
आदिसागर जी अंकलीकर  
का रोचक औपन्यासिक जीवन-वृत्त

—: लेखक :—

परम पूज्य १०८ मुनि श्री सुनील सागर जी महाराज  
(परम शिष्य सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज)

—: प्रकाशन सौजन्य :—

स्व० ब्रह्मचारी श्री चम्पालालजी की धर्म पत्नि  
श्रीमति मोहनबाई तलवाड़िया एवं समस्त तलवाड़िया परिवार,  
नरवाली (जिला बांसवाड़ा), राजस्थान

तृतीयावृत्ति  
१०००

१० सितम्बर  
सन् २००२

मूल्य  
स्वाध्याय/२५ रु०

|                        |  |
|------------------------|--|
| प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम | <b>विश्व का सूर्य</b>  |
| प्रेरणा एवं आशीर्वाद   | परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती तपस्वी सम्राट<br>१०८ आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज                   |
| कृतिकार                | पूज्य मुनि १०८ श्री सुनील सागर जी महाराज   |
| प्रतिपाद्य विषय        | परम पूज्य मुनि कुन्जर समाधि सम्राट आचार्य<br>श्री आदिसागर जी महाराज अंकलीकर का<br>औपन्यासिक जीवन वृत्त |
| पावन प्रसंग            | ५० पू० चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री<br>आदिसागर जी अंकलीकर की<br>जन्म जयन्ति                           |
| स्थान                  | नरवाली (जिला बांसवाड़ा), राजस्थान  |

### द्रव्य दाता :-

स्व० ब्रह्मचारी श्री चम्पालालजी की धर्म पत्नि  
श्रीमति मोहनबाई तलवाड़िया  
एवं समस्त तलवाड़िया परिवार,  
नरवाली (जिला बांसवाड़ा), राजस्थान



श्रीमति मोहनबाई तलवाड़िया

## आशीर्वाद

सम्यग्ज्ञान को चार अनुयोगों में विभक्त किया गया है यथा प्रथमानुयोग-करणानुयोग-चरणानुयोग-द्रव्यानुयोग ।

इसमें प्रथमानुयोग में, पुण्यपुरुषों का चरित्र पुराण- बोधि समाधि है । इसकी शाखा उपशाखा में उपन्यास गर्भित है । न्याय विनिश्चय में उपन्यासों दृष्टान्तों अर्थात् उपन्यास का अर्थ दृष्टान्त है का वर्णन है । प्रस्तुत उपन्यास प० पू० मुनिकुंजर आचार्य शिरोमणी श्री आदिसागर जी महाराज अंकलीकर का जीवन दर्शन "विश्व का सूर्य" नामक है । वर्तमान में उपन्यास पढ़ने में अच्छा लगता है । यह कृति अपूर्व आत्म प्रभावक कही जायेगी । दिगम्बर जैन सत्साहित्य से आत्महित होता है । अतः प्रसंशनीय माना जाता है ।

संसार विवादों से भरा हुआ है । प्राणी इसी में उलझता रूढ़ता है । वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज ने 23-10-93 को विवाद सुलझाया था कि "जैन समाज में आचार्य श्री आदिसागर जी अंकलीकर की परंपरा और आचार्य श्री शातिसागर जी दक्षिण की परंपरा इस युग में निर्वाध चली आ रही है । समाज का कर्त्तव्य है कि किसी प्रकार का विवाद न करके दोनों आचार्य परंपरा को आगम सम्मत मानकर वात्सल्य से धर्मप्रभावना करें । देव शास्त्र गुरु का अवर्णवाद करने से दर्शन मोहनीय कर्म का आस्रव होता है । और गुणानुवाद करने से कर्म निर्जरा एवं धर्म प्रभावना होती है । ज्ञान के बिना चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा रहता है । केवली प्रणीत धर्म को मंगलरूप, लोक में उत्तम शरणभूत कहा है । ज्ञान देने से ज्ञान मिलता है । पढ़ना लिखना छापना या छपवाना इत्यादि ज्ञान दान की कोटि में आता है, धन खर्च करने से घटता है । परन्तु ज्ञान खर्च करने से बढ़ता है । और ज्ञान दान की कोटि में आता है । बुद्धिमान पुरुष अपने ज्ञान को खर्च करने में लगे रहते हैं ।

मुनि श्री सुनीलसागर जी महाराज ने अपने ज्ञान को परम पूज्य मुनि कुंजर प्रथमाचार्य श्री आदिसागर जी महाराज अंकलीकर को माध्यम बनाकर निकाला है । सम्भवतः निकट संसारी भव्यात्मायें इसको पढ़कर सुनकर या अन्य प्रकार से अपनी आत्मसाधना कर सकेंगे ।

इसी भावना से प्रस्तुत "विश्व का सूर्य" नामक उपन्यास के लेखक प्रकाशन तथा द्रव्यदाता को मेरा शुभाशीर्वाद है ।

(सिद्धान्त चक्रवर्ति तपस्वी सम्राट गुरुवर)

आचार्य सन्मति सागर



## प्राक्कथन

साहित्यक भाषा से आज का नवयुवक घबड़ाने लगा है। आज का प्रत्येक वर्ग सरल विधा में, सरल भाषा में साहित्य का सृजन चाहता है। पर उसकी भावना अपेक्षाकृत, पूर्ण नहीं हो पाती।

साहित्य की विधाओं में कथा, कहानी अथवा उपन्यास सरल विधा कही जाती है। इन विधाओं का पठन पाठन आज का वर्ग बड़ी सरलता से कर लेता है। आज की माँग को देखकर जैन साहित्य का सृजन इन विधाओं में होना परम आवश्यक है। चूंकि हमारे आचार्यों ने कथा साहित्य का निर्माण एक बड़ी मात्रा में किया। पर आज व्यक्ति शास्त्र के नाम से ही घबड़ाता है। वर्तमान समय में कुछ प्रयास किये गए, जो कुछ सफल प्रतीत होते हैं।

मैंने भी कथा विधा में कुछ लिखने का विचार किया तो वही समस्या मेरे सामने थी, जो हर लेखक के सामने होती है, कि—क्या लिखूँ? और कहां से शुरू करूँ? मेरी इस समस्या का समाधान अंतर की प्रेरणा से हो गया। "छत पर रात को लघु शंका करने गया, आचार्य श्री की परछाई दिखी।" बस दोनों समस्याएं हल हो गईं।

कलम हाथ में थामी और परम पूज्य आचार्य श्री आदिसागर जी के जीवन वृत्त पर लिखना प्रारम्भ कर दिया। इस लेखन कार्य के प्रमुख प्रेरणा स्रोत रहे श्री विजय कुमार जी रारा, भागलपुर, जिनका समय-समय पर सहयोग मिलता रहा; और दूसरा प्रमुख सहयोग रहा आ० श्री आदिसागर जी अंकलीकर के अभिनंदन ग्रंथ का एवं मरने की कला जिसका मैं तहे दिल से आभारी हूँ।

लिखने का प्रमुख उद्देश्य रहा है। "भटकती हुई नई पीढ़ी को दिशा दर्शन" एक महापुरुष के व्यक्तित्व का प्ररूपण और आत्म दर्शन। आशा है सज्जन गण गुण ग्रहण करेंगे। अत्यल्प अवधि में इसके तृतीय संस्करण का प्रकाशित होना इसकी लोकप्रियता और मेरे श्रम की सार्थकता का परिचायक है।

- मुनि सुनील सागर



## सन्देश

गुरु की महिमा वरणी न जाय ।  
गुरु नाम जपो मन, वचन, काय ॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।  
कालेन फलते तीर्थ, सद्यः साधु समागमः ॥

इत्यादि शब्दों के द्वारा यह बताया गया है कि गुरु स्वयं तीर्थ स्वरूप हैं। जो उनका आश्रय लेता है, वह संसार समुद्र को पार कर जाता है। आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर हों, या आचार्य शातिसागर जी दक्षिण हों, किं वा अन्य कोई दिगम्बर-आचार्य हों, हम सबके प्रति श्रद्धा भक्ति बनाये रखें। भक्ति में छल छिद्र, राग द्वेष की परिणति यदि विद्यमान है तो आत्महित असम्भव है। मैं गुरु से बहुत दूर हूँ, किन्तु मेरा नमस्कार उन तक अवश्य पहुँचेगा। श्री कुंद कुंद स्वामी ने यहाँ भरत क्षेत्र में सीमंधर स्वामी को नमस्कार किया था और वह नमस्कार विदेह क्षेत्र में पहुँच गया। फिर मेरा नमस्कार और विनयांजलि भी गुरु चरणों में अवश्य पहुँचेगी। सदा से ही गुरुजनों का आशीर्वाद हमारे साथ रहा है, वह आशीर्वाद ही हमारा संबल है, रक्षक है।

- प्रथम गणनी आर्यिका श्री विजयमति माताजी



## अभिमत

पूज्य मुनि श्री सुनील सागर जी महाराज के द्वारा लिखे गये विश्व का सूर्य ग्रंथ में अपूर्व ज्ञान भरा हुआ है, सर्वज्ञ की परंपरा से प्राप्त ज्ञान का सदुपयोग है।

इसको गागर में सागर कहना भी अतिरायोक्ति नहीं है, इस बात को अध्ययन करने वाला ही जान सकेगा। गुरु का गुणगान किसी भी रूप में किया जा सकता है। पूर्ववर्ती आचार्य कुंदकुंद, समन्तभद्र, अंकलंकदेव की तरह महोपकारी दक्षिण भारत के वयोवृद्ध दिगम्बर संत, अप्रितम उपसर्ग विजेता, महामुनि, चारित्र चक्रवर्ती, मुनि कुंजर, समाधि सम्राट, कलिकाल तीर्थंकर, प्रातः स्मरणीय, त्रिकाल वंदनीय, विश्ववंद्य, आचार्य शिरोमणि श्री आदिसागर जी महाराज अंकलीकर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व सर्वोच्च रहा है। वह इस ग्रन्थ को पढ़ने से जानकारी होगी। ऐसे ग्रन्थ की बहुत समय से आवश्यकता थी जो आज इसकी पूर्ति हुई है। पूज्य आचार्य श्री के उन्नत व्यक्तित्व एवं चरित्र तथा पूज्य मुनि श्री की सशक्त लेखनी के परिणाम स्वरूप यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय हुआ कि अल्प समय में ही इसका तृतीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

**आर्यिका शीतलमति**

(संघस्थ शिष्या आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज)

आचार्य श्री आदिसागर जी अंकलीकर  
के जीवन पर आधारित कथानक

## विश्व का सूर्य

अगर वहां पर छोटी बड़ी पहाड़ियां न होती तो शायद ! वह स्थान इतना सुशोभित न हो पाता । आस पास खड़े लम्बे लम्बे साल के वृक्ष, कतार बद्ध आम के वृक्ष, नीबू, नारंगी और संतरा के वृक्षों ने मानो अनेकता में एकता ही बना ली है । चीकू के वृक्षों का अपना अलग ही प्रभाव था, उद्यानों से मंद-मंद बयार बहा करती थी । गुलाब जावित्री, कमल, केतकी, मोगरा, आदि सुगंधित पुष्प वहां की सहज उपलब्धि थे । खेतों में कहीं पर गेहूँ की फसल लहलहा रही है, कहीं पर चने की, कहीं पर लौकी तो कहीं पर अरहर की । मूंग, उड़द, सोयाबीन, मसूर आदि की भी कुछ कमी न थी ।

अंकली गांव में सिर्फ प्राकृतिक संपदा ही हो ऐसी बात नहीं थी, वहां और भी बहुत कुछ था, जिसे कलम कहने में असमर्थ हैं ।

प्रातः काल का सूर्य जब प्राची की नन्ही पहाड़ियों के पीछे से निकलता तो ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे अभी-अभी सोकर उठा हो अथवा फिर कल शाम को जब बच्चे लुका-छिपी खेल रहे थे तब उनके साथ खेलता हुआ उन पहाड़ियों के पीछे छिप गया हो, और अब निकल कर बाहर आ रहा हो ।

उससे निकली हुई स्वर्ण किरणों से संपूर्ण पहाड़ी प्रदेश तो स्वर्णमय लग ही रहा था साथ ही वे वृक्ष भी सोने के पत्तों वाले प्रतीत होने लगे थे जिनके पत्ते सूखकर पीले पड़ गये थे ।

सूर्य के पहाड़ी के पीछे से निकलते ही उसके सभी साथी भी बाहर आ गये थे, अर्थात् अधिकांश लोग उसके आने के इंतजार में पहले ही बिस्तर छोड़ अपने अपने कार्यों में लग गये थे । खेत की ओर जाता हुआ किसान अपने घरों पर हुए बैलों को हांकता हुआ तेजी से बढ़ता जा रहा था । ग्वालों ने भी अपने अपने पशुओं को चरने के लिए घर से निकालने का उद्यम प्रारंभ कर दिया था अधिकांश दुधारु पशु दुहे जा चुके थे, जो बाकी रहे थे उन्हें भी यादव गण शीघ्रता से दुह रहे थे । जो बछड़े अभी अपनी मां के पास न पहुंचे थे, वे रभा रहे थे, जो छूट चुके थे वे बड़े स्नेह से माँ के पेट में सिर मार-मार करके दूध पी रहे थे ।

व्यवसायी वर्ग भी अपने-अपने घोड़ों अथवा भैसों पर सामान लाद रहे थे । जिनको मात्र अनाज आदि खरीदना था, उन्होंने कुछ बोरा-बारदाना और (कांटा-बाँट) लेकर चलना भी प्रारंभ कर दिया था ।

अत्यंत धार्मिक व्यक्ति द्रव्य की थाली सजाकर कुंजवन की ओर चले जा रहे थे । अंकली से कुंजवन कोई पांच छह कि. मी. है । अंकली में जिन प्रभू का मंदिर था, अतः भक्ति पूर्ण हृदय से अधिकांश श्रावक पैदल ही कुंजवन की ओर चल देते थे । वहां जाकर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा अर्चना करने के बाद वापिस अंकली आकर भोजनादि करके अन्य काम करते थे ।

गांव में कहीं मुर्गे कुकड़ू कू की आवाज लगाते, तो कहीं चिड़ियाँ ची-ची -चूं-चूं करती रहती । आम के मौसम में तो कहना ही क्या कोयल अपनी मीठी बोली से सबको ही सूर्योदय के घंटे -डेढ़ घंटे पहले उठा दिया करती थी ।

कुल-मिलाकर देखा जाए तो अंकली गांव विविध विविधताओं से भरा हुआ था । गांव की गलियां भी कहीं चौड़ी और कहीं-सकरी अर्थात् जो मुख्य पथ है, वे चौड़े-चौड़े और उपमार्ग जैसे होना चाहिए वैसे हैं ।

X

X

X

विविध-विविधताओं से परिपूर्ण इस नगर में जिन भक्तों के पंच शताधिक भवन थे । इन भवनों में एक भवन वह भी था जिसमें क्षत्रिय, सूर्यवंशी सिध्दगौड़ा पाटिल सपरिवार निवास करते थे । अत्यंत तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी सिध्द गौड़ा निर्भीक, दयालु और सरल प्रकृति के शूरवीर थे ।

यह समस्त गुण उनकी वंश परंपरा से ही उन्हें प्राप्त हुए थे । आप के पिता भी इसी प्रकार गुणों के सागर थे और आपके दादाजी की तो महिमा ही निराली थी । वे अपने समय के महान पुरुषों की श्रेणी में गिने जाते थे । जब उनका अंकली गांव पर शासन था तब वहाँ के सभी प्रवासी निहाल थे ।

आपके पूर्वजों के बारे में लोग कहते भी थे कि महाराजा देशाई के शासन काल में उनकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी यहां का वहां नहीं हो सकता था । उनकी अनुशासन प्रियता तो सर्व विदित थी, उनके अनुशासन से समस्त प्रजा संतुष्ट थी । दूसरे राज्यों में भी उनकी न्याय शीलता के गुण गाए जाते थे, जब किन्हीं दो राज्यों में भी विवाद हो जाता तो उसका निर्णय महाराज देशाई करते थे । इनकी सैन्य शक्ति के सामने अच्छे अच्छों को झुकना पड़ता था ।

वृद्ध लोग जब कभी उनकी धार्मिकता, दयालुता, सरलता, और सौम्यता के गुण गाते तो अपने पूर्वजों की प्रशंसा सुन सिद्ध गौड़ा फूले न समाते थे ।

जब कभी वृद्ध उनकी राज संपत्ती नष्ट होने की तथा कथा कहते तो उनको नियम प्रतिबद्धता का पता चलता था । उन्हें अपना प्रण प्राणों से ज्यादा प्यारा था, तभी तो वे एक बार जीत करके भी हार गये थे और शासन जीवन से हाथ धोना पड़ा था ।

इस अतीत के बारे में वृद्ध जन कभी-कभी यों कहा करते थे कि महाराजा देशाई देव शास्त्र गुरु के अलावा किसी अन्य को नमस्कार भी नहीं करते थे, किसी दूसरे के सामने कभी गर्दन नहीं झुकाते थे ।

हमेशा न्याय पूर्वक शासन करते हुए प्रजा का पुत्रवत्

पालन करते थे । उनके राज्य में कभी-भी अन्याय-अनीति ने स्थान प्राप्त नहीं किया था ।

एक बार जब अंग्रेज दक्षिण महाराष्ट्र के सत्ताधिकारियों की सत्ता हथियाने दक्षिण महाराष्ट्र गए तो कई शासकों ने भयभीत होकर अपनी सत्ता उन्हें सौंप दी । कितने ही राजाओं ने उनसे युद्ध भी किया पर उनकी मजबूत शक्ति के सामने सिर नीचा करना पड़ा ।

सारा महाराष्ट्र भयावह स्थिति में था, अधिकांश राजा अंग्रेजों का संदेश पाते ही राज्य त्याग चुके थे । एक बार अंग्रेज शासकों द्वारा भेजा हुआ एक संदेश वाहक महाराजा देशाई के पास पहुँचा, और जो संदेश उसने अन्य राजाओं को सुनाया था वह सुनाया ।

महाराजा देशाई संदेश वाहक की बात सुनकर बोले— संदेश वाहक ! जाओ और अभी जाओ ! जाकर अपने अधिकारियों से कह दो कि न तो देशाई अपना राज्य ही छोड़ सकता है, और न ही तुम्हारी पराधीनता स्वीकार कर सकता है ।

महाराजा की बात सुनकर संदेश वाहक बोला— देशाई ! तुम अभी हमारी शक्तियों को नहीं जानते, सैकड़ों तुम से बड़े-बड़े राजा भी हमारी पराधीनता स्वीकार कर चुके हैं, फिर तुम किस खेत की मूली हो ।

महाराजा कुछ क्रोध में बोले— संदेश वाहक ! ज्यादा वाचाल मत बन जो कुछ मैंने कहा है, कह दे जाकर उन दुष्टों से, उन दुष्टों की दुष्टता का सबक उन्हें अवश्य ही मैं दूँगा ।

संदेश वाहक बोला— देशाई ! क्यों जबरन मौत को सामने बुला रहे हो क्या हाथी का भी मच्छर कुछ बिगाड़ सकते हैं "नहीं" । तुम हमारे सामने मच्छर से कुछ अधिक नहीं हो ।

महाराजा कुछ चिल्लाते हुए बोले— मूर्ख, वाचाल ! जबन-को लगाम दे वना सिर कलम कर दूँगा । अगर अपनी खैर चाहता है, तो जो कुछ तुझ से कहा गया है जाकर अपने अधिकारियों से कह दो और कह देना कि आज तक तुम दूसरों को युद्ध में ललकारते थे,

लेकिन आज महाराजा देशाई ने तुम्हें ललकारा है ।

महाराजा की ललकार सुन कर आग बबूला होता हुआ संदेश वाहक राज सभा से बाहर निकल गया । उसने जाकर संपूण समाचार गवर्नर को कह सुनाया । सुनते ही उसने कल ही अंकली की ओर प्रस्थान करने की घोषणा कर दी ।

वहां महाराजा देशाई भी अपनी शैन्य शक्ति सहित तैयार थे । जब अंग्रेजों से उनकी मुठभेड़ हुई, तो उनके सैनिकों ने बड़े उत्साह से शौर्यता पूर्वक युद्ध किया । युद्ध कुछ समय तक चलता रहा अंततः अंग्रेजों को घुटने टेकने पड़े । वहां उनकी सेना में भगदड़ मच गयी और यहाँ महाराजा देशाई की जय-जय कार हाने लगी ।

एक बार पराजित होने के बाद अंग्रेजों ने पुनः आक्रमण किया, लेकिन पुनः महाराजा देशाई की विजय हुई । अब अंग्रेजों ने उनकी अंदरूनी कमजोरी दूढ़ना प्रारंभ की, क्योंकि वे जानते थे, कि "किसी व्यक्ति की मुख्य कमजोरी उसे हमेशा हमेशा के लिए खत्म कर देती है ।"

बहुत प्रयास करने के बाद उन्हें महाराजा देशाई के इस नियम के बारे में पता चल गया कि वह देव, शास्त्र, गुरु के अलावा किसी को सिर नहीं झुकाता तो उन्होंने एक षड्यंत्र पूर्वक तीसरा युद्ध किया । इस युद्ध में उन्होंने जहां जहां से निकलने के रास्ते थे, उन-उन स्थानों पर इस प्रकार से तलवारें बांध दी कि किसी भी घुड़सवार का आराम से सिर कट जावे ।

महाराजा इस तथ्य से अनभिज्ञ थे, वे समस्त भूमि में लुप्त हो गए लेकिन पीछे लौटना क्षत्रियोचित न समझा और आगे तलवारें बंधी थी । युद्ध करते करते उन तलवारों से उनका सिर तो कट गया पर उन्होंने किसी दूसरे के सामने सिर नहीं झुकाया । यह थी उनकी प्राण पणता, जिस कारण उन्हें राज्य जीवन दोनों से हाथ धोना पड़ा, उनके इस बलिदान से संपूर्ण अंग्रेज अधिकारी और जिस-जिस ने भी सुना सभी आश्चर्य चकित थे । अंग्रेजों के प्रमुख गवर्नर ने भी दांतों तले उंगली दबाते हुए कहा था महाराजा देशाई मरे नहीं अमर हो गए हैं ।

उनके वीर गति को प्राप्त हो जाने पर अंग्रेजों ने अकली ग्राम के शासन को अपने अधिकार में लेकर, उसका प्रतिनिधित्व करने के लिए उनके ही पुत्र को सौंप दिया । धीरे-धीरे सत्ता विघटन होती गयी और वह अधिकार श्री राजगौड़ा तक ही रह पाया । उसके बाद स्वयं सिद्धगौड़ा और उनके पिता शंकरगौड़ा ने भी अधिकार पूर्वक शासन किया, लेकिन अब तक अंग्रेजों का प्रभाव बहुत हो चुका था, इसलिए शासन करना भी शासन करने जैसा न रह गया था उस शासन का प्रारूप बदल कर मात्र जागीरदारी तक ही सीमित रह गया था ।

X

X

X

सूर्यवंशी सिद्धगौड़ा अंकली गांव में जागीरदारी करते थे, चूंकि इनके पूर्वज शासन करते थे, अतः वह जागीरदारी भी शासन करने से कम न थी । सभी लोग उनका सम्मान करते थे । जब कभी कोई विवाद होता तो निर्णय भी इन्हीं के पास हुआ करता था ।

सिद्धगौड़ा की पतिव्रता धर्म परायण पत्नि का नाम अक्का बाई था, जो सदाचार और संस्कार से परिपूर्ण थी । इनके यहां अब तक एक ही संतान थी, जिसका नाम था बाबगौड़ा । बाबगौड़ा में भी परंपरागत गुण झलकते थे ।

एक पुत्र होने के बाद भी अक्का बाई की एक पुत्र पाने की लालसा और थी । भावना फलीभूत हुई और किसी पुण्य के सहज संयोग से अतिशय तेजस्वी बालक ने फागुन बदी तेरस सन् अठारह नौ छयासठ में उनकी पावन कोख से जन्म लिया ।

जन्मोत्सव का समाचार क्षण भर में यत्र-तत्र फैल गया और बड़ी धूमधाम से जन्मोत्सव मनाया गया । द्वितीय पुत्र रत्न की प्राप्ति से परिजन पुरजन सभी प्रफुल्लित थे । पिता सिद्धगौड़ा गांव के संपूर्ण नागरिकों को इस मंगल अवसर पर आमंत्रण दिया । समस्त पिछड़े हुए परिवारों को समुचित वस्त्र, अन्न, धन आदि प्रदान किया ।

वहां पर बज रही शहनाईयों से आकाश गूंज रहा था ।

कितने ही क्षत्रिय जा-जाकर सिद्धगौड़ा को पुत्र जन्म की बधाईयां दे रहे थे ।

जिन ज्योतिषी विद्वानों को बुलवाया गया था । उन्होंने पुत्र का बहुत ही शुभ नाम बताया एक ज्योतिषी विद्वान बोले यह बालक बहुत होनहार है । इसके जन्म समय के नक्षत्र, लग्न ग्रह आदि सभी शुभ हैं, हो ना हो यह बालक भविष्य में किसी विशेष कार्य का करेगा । इसकी उगलियों पर बने हुये चक्रों से ऐसा प्रतीत होता है, भविष्य में यह मुनि बन सकता है । कोई अन्य ज्योतिषी विद्वान कह रहे थे- बालक का मस्तिष्क चौड़ा है, यह अवश्य ही अपनी शासन सत्ता को नए आयाम देगा । जो इसके पूर्वजों के समय में सुख शांति थी, वह पुनः प्राप्त हो सकेगी ।

किसी ज्योतिषी ने लंबी नाक और लंबी लंबी उंगलिया देखकर कहा-भैया आप लोगों की बात तो सही है, परंतु मुझे तो दोनों की बात मिलाकर पसंद है और यही लक्षण मुझे प्रतीत हो रहे हैं अर्थात् बालक शूरवीर तो होगा ही साथ ही साथ सब कुछ छोड़कर त्याग मार्ग को भी अपनाएगा ।

नाना प्रकार के लोग नाना प्रकार की चर्चाएं कर रहे थे । स्त्रियां मंगल गीत गाने में संलग्न थी, नव युवतियां नृत्यादि कर रही थी, बालिकाएं चपेटा (पत्थर) खेल रही थी, बच्चे ऊधम मचा रहे थे, वृद्ध प्रमुदित मन चर्चाएं कर रहे थे और युवा पान सुपाड़ी में संलग्न थे ।

जब बालक के नाम करण की बात ज्योतिषियों के सामने आई, तो सभी ने अपने-अपने हिसाब से नाम बताएं । नाम तो सभी अच्छे थे लेकिन उनमें से एक नाम चुना गया, जो था रेवन्ना इंद्र पौड पाटिल । नाम की घोषणा संपूर्ण समुदाय के बीच कर दी गई ।

उक्त घोषणा को सुनकर एक प्रबुद्ध वृद्ध ज्योतिषियों के पास पहुंचा और उनसे परामर्श करते हुए कहा-पंडित जी ! आज फागुन तिथि तेरस है. यह दिन बहुत ही महत्व रखता है ।

कोई विद्वान बोला- क्या महत्व रखता है ? तुम क्या जानो महत्व को, हम विद्वानों ने जो कुछ कहा सो ठीक है ।

वृद्ध बोला—मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप लोगों ने गलत कहा है । मैं तो यह कह रहा हूँ कि आज का दिन महत्वपूर्ण है क्यों न इस दिन से मेल—जोल खाता हुआ कोई नाम रखा जाए—जो गृह, नक्षत्र, लग्न आदि के अनुरूप बैठे ।

वृद्ध की बात गौर से सुनने वाला एक विद्वान बोला—आपका कहना भी ठीक है, आप यही चाहते हैं न, कि बालक का नाम भगवान शंकर के नाम से मिलता जुलता रखा जाय, क्योंकि आज शिवरात्रि है ।

वृद्ध बोला— आप जो शिव रात्रि को शंकर से जोड़ रहे हैं, यह ठीक नहीं है; शिवरात्रि तो भगवान ऋषभ देव से जुड़ा हुआ पर्व है । फागुन वदी चतुर्दशी को भगवान ऋषभ देव को शिवगति की प्राप्ति होना थी, इसलिए फागुन बदी त्रयोदशी तक उनके पूर्व अवस्था के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने एक बहुत बड़ा अनुष्ठान किया था । जिसमें उन्होंने बहुत सारा द्रव्य चढ़ाकर उनकी पूजा की थी । जिस कारण से त्रयोदशी भगवान ऋषभदेव से जुड़ी हुई प्रतीत होती है ।

गुजरात में और अन्य प्रदेशों के तिथियों में एक माह का अंतर आता है गुजरात में फागुन को माघ के पहले मानते हैं और माघ को फागुन के बाद, जिससे मेल जोल बैठाने पर ऋषभदेव के निर्वाण की पूर्व बेला ही शिवरात्रि ही सिद्ध होती है ।

एक सरल प्रकृति के विद्वान कुछ सोच समझकर बोले ठीक है इस मंगल कार्य में विघ्न न पड़े, इसलिए आपकी ही बात मान लेते है इसका नाम आप क्या रखना चाहते है ।

उन्होंने कहा— शिवगौड़ा..... ।

नाम सुनकर विद्वान लोग कुछ शांत हो गये क्योंकि नाम तो आखिर शंकर से मिलता जुलता रखा गया । वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि शिव मोक्ष को ही कहते हैं ।

पहले नाम की अपेक्षा लोगों को यह नाम अधिक पसंद आया सभी लोग नाम सुनकर प्रफुल्लित थे । नामकरण के बाद अन्य क्षत्रियोचित्र कार्यक्रम हुए तदुपरान्त सभी अपने अपने भवनों की ओर बढ़ गये थे ।

परिवार के लाड़-प्यार में बालक शिव दूज के चांद की भांति बढ़ने लगा । उसकी बाल्य क्रीड़ा देखकर माता अति प्रसन्न होती और उठाकर उसे अपनी छाती से लगा लेती । पिता ने भी जब कभी शिव को प्यार किया करते थे, उसे अपने कंधे पर बिठा कर यत्र-तत्र घूमते रहते । बालक कभी बाल खींचता, तो कभी गले में पहनी हुई माला ।

कभी पेट के बल खिसकता हुआ रोने लगता तो कभी घुटनों के बल चलने की चेष्टा करते हुए हँसता । नाना प्रकार की बाल्य क्रीड़ाओं से परिजन और पुरजन को संतुष्ट करता हुआ, बालक शिव, किशोर पन की ओर बढ़ रहा था ।

X

X

X

बालक शिव अब लगभग तेरह-चौदह वर्ष का हो गया था । वह खेल कूद में विशेष रूचि रखता था । आज जब कबड्डी की टीम का चुनाव हो रहा था तब कुछ बच्चों में आपस में खीचा तानी चल रही थी ।

एक पंद्रह-सोलह वर्ष का बालक जोर-जोर से चिल्लाते हुए कह रहा था—तुम लोग जब भी कबड्डी खेलते हो, शिव को अपनी ओर मिला लेते हो, और हम लोगों को हारना पड़ता है ।

सभी लड़के जानते थे कि जिस ओर शिव हो गया, उसी पारी की जीत अवश्यसंभावी है । अतः उस पारी वाला एक लड़का कुछ गंभीरता से बोला—हम कब कहते हैं, कि शिव हमारी ओर ही रहेगा, जब कभी वह तुम्हारी ओर भी तो रहता है । अगर आज हमारी पारी में आ गया तो क्या हो गया ।

कोई अन्य बोला—देखो भाई अगर तुम शिव को अपनी ओर मिलाओगे, तो हम अपनी टीम में एक सदस्य ज्यादा रखेंगे ।

दूसरी टीम वाले एक सदस्य ज्यादा रख लेने को तैयार हो गए, वे बोले रख लो, जब हमारी ओर शिव है, तो तुम दो सदस्य भी ज्यादा रख लो कोई फर्क नहीं पड़ता ।

स्वीकृति पूर्ण बात सुनकर उस ओर का एक लड़का बोला—हमें एक सदस्य ज्यादा रखना मंजूर नहीं है, हमारी ओर तो शिव होना चाहिए ।

जब दोनों पक्षों में खींचा—तानी सी होने लगी तो चुपचाप खड़ा शिव गंभीर वाणी में बोला— अरे भाई ! मेरे कारण इतना झगडा क्यों करते हों । इस बात का निर्णय अभी इस सिक्के से हो जाएगा । दोनों पक्षों ने अपना अभिप्रेत पक्ष कहकर सिक्का आकाश की ओर फेंका, जब वह नीचे गिरा, तो पहली वाली टीम में शिव को पहुंचा देख दूसरी टीम वाले कुछ परेशान जैसे हुए, लेकिन वे अब कुछ कह भी नहीं सकते थे । क्योंकि यह निर्णय शिव का दिया हुआ था । जब तक झुरमुट नहीं पड़ गई, तब तक खेल चलता ही रहा । अब तक दूसरी टीम वाले दो—तीन बार पहली टीम से हार चुके थे । अंततः जब अंधेरा पड़ने लगा तो सभी खेल बंद करके अपने—अपने घरों की ओर जाने लगे ।

X

X

X

वहां बड़ा कोलाहल मचा हुआ था । बड़ी संख्या में लोग एकत्रित हो चुके थे, लेकिन कुछ भी नहीं कर रहा था, चिल्लाने के सिवा । एक पच्चीस तीस वर्ष का व्यक्ति जोर—जोर से चिल्ला रहा था, दौड़ करके रस्सा लाओ । जल्दी जाओ.....जल्दी जाओ..... ।

कोई अधेड़ उम्र का व्यक्ति बोला—ऐसा करो जल्दी दो रस्सी लाओ और एक चौड़े पाटिये में बांधकर कुए मंडालो, जिससे कि बालक बैठ जायेगा और आसानी से बाहर आ जायेगा ।

कोई वृद्ध व्यक्ति बोला— अरे ! क्या मुर्दे हो गए हो, कुएं में कूद भी तो सकते हो.....मर थोड़े ही जाओगे ।

एक युवा उस वृद्ध की ओर आंखे बड़ी-बड़ीं कर देखते हुए बोला—ज्यादा कूदने का शौक हो तो तुम कूद जाओ, कौन ऐसा मूर्ख होगा जो दूसरे की जान बचाने के पीछे स्वयं भी मरेगा ।

वहां सिर्फ विभिन्न प्रकार की बातें हो रही थीं, न तो अब तक रस्सा ही आया था, और न ही पाटिया । जिस स्त्री का बच्चा कुएं में गिर गया था, वह जोर-जोर से रो-रोकर कह रही थी.....मेरे बच्चे को बचा लो.....मेरे बच्चे को..... ।

लेकिन किसी की हिम्मत नहीं पड़ रही थी । यह करुणा भरी आवाज वहां से निकलते हुए शिव गौड़ा के कानों में पड़ी वह तीव्र गति से वहां पहुंचा और वस्तु स्थिति जानकर, शीघ्रता से कुएं में कूद गया ।

अब तो कोलाहल और बढ़ गया.....कुएं में कौन कूद गया । सब शंका-आशंका में पड़े थे, कि डूबते उतरते उस बालक को छाती से चिपकाएं शिव गौड़ा कुएं में स्पष्ट दिखने लगा । कुछ लोगों के मन में पहले भी यही अनुमान था.....कि हो ना हो.....कुएं में कूदने वाला शिव है ..... ।

अब तक कुछ व्यक्ति वहां पर रस्सा लेकर भी पहुंच चुके थे । शिव ने शीघ्रता से रस्सा कुएं में फेंकने का इशारा किया । एक मोटा जाट का रस्सा कुएं में फेंका गया । शिव ने बालक को अपनी पीठ पर बांधा और जो रस्सा ऊपर बंधवाया गया था, उस पर अपने हाथों से पकड़ पकड़ कर चढ़ने लगा ।

रस्सा जाट का था अतः करीब दस बारह हाथ ही ऊपर आ पाया था, कि हाथ छिलने लगे । खून बहने लगा, लेकिन फिर भी शिव ने साहस न छोड़ा, वह धीरे-धीरे मजबूत पकड़ के साथ ऊपर आ ही गया ।

दोनों हाथ खून से रंग गए थे । पैरों से भी खून झलकने लगा था, किंतु शिव के चेहरे पर दुःख का भाव भी न था । वे उस

बालक को जीवित निकाल सके, इसकी उन्हें खुशी ही थी ।

लोग दांतों तले उंगली दबाकर रह गए थे । लोग आपस में नाना-प्रकार की चर्चा कर रहे थे । कुछ लोग जो शायद उस बालक के निकट संबंधी थे । उसके पेट को दबा-दबा कर पानी निकाल रहे थे ।

X

X

X

आज शिव के शौर्य की चर्चा यत्र तत्र सर्वत्र हो रही थी । चौपाल पर बैठे हुए हुए कुछ वृद्ध आपस में चर्चा कर रहे थे । एक वृद्ध अपनी बात रखते हुए कह रहा था—कमाल कर दिया, उम्र तो मात्र चौदह पंद्रह वर्ष की है, और वीरता एक युवा क्षत्रिय जैसी । वास्तव में वंश परंपरागत गुण जाएंगे भी कहीं ।

जैसे बनिये की बेटे को तराजू तौलना नहीं सिखाना पड़ता, वैसे ही—सच्चे शूरवीर क्षत्रियों को भी दूसरों की रक्षा करना सिखाना नहीं पड़ता, वे स्वयं समझते हैं, कि क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य ही दूसरों की रक्षा करना है ।

सफेद दाड़ी वाला एक अन्य वृद्ध बोला—अगर आज शिव न होता, तो उसका पुत्र भी जिंदा न रहा होता । वह तो अदम्य साहसी शिव गौड़ा था, तो अठारह बीस हाथ गहरे कुएं में बिना कुछ सोचे समझे कूद गया और उसके पुत्र को बाहर निकाल कर ले आया ।

दूसरा वृद्ध बोला—निकाल कर ले तो आया.....लेकिन क्या—किसी ने उसके हाथ भी देखे कितना खून निकल गया होगा, और बीच में ही कोई अन्य वृद्ध बोला— थोड़े बहुत कष्ट से उसे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह बड़ा शूरवीर है । एक दिन की बात है, कि वह अपने—मित्र के साथ खेत पर गया था । गर्मी का समय था अतः धूप तेज पड़ती ही थी जिस कारण प्यास लगना स्वाभाविक ही था । जब उसका मित्र प्यास के कारण आकुल व्याकुल होने लगा, तो उन्होंने कुछ दूर तक पानी की तलाश की लेकिन पानी न मिल पाया । तब उसने

नारियल के वृक्षों से नारियल तोड़कर, नारियलों को मुट्ठी से फोड़कर उसका धानी अपने मित्र को पिलाया । अब बताओ ? नारियल भी कोई मुट्ठी से तोड़ने की चीज है क्या ?

उसकी बात पूर्ण होते ही कोई तीसरा वृद्ध बोला— नारियल .....नारियल को मुट्ठी से तोड़ना तो उसका बाएं हाथ का खेल है । वह तो लकड़ी के इन मोटे-मोटे दरवाजों को भी तोड़ देता है । अब देखो, उस दिन की घटना कौन सुना रहा था.....शायद.....।

एक अन्य वृद्ध बीच में ही बोला— मैं सुना रहा था । बात ऐसी थी कि शिव अपने मित्रों के साथ छिपा-छिपी खेल रहा था । खेल-खेल में कुछ शरारती मित्रों ने उसे एक कमरे (कोठी) में बंद कर दिया और अपने-अपने घर चले गए, लेकिन जब घंटे भर तक किवाड़ न खुले तो, शिव ने उन्हें अपने मुक्कों और घूसों से ही तोड़ गिराया और बाहर निकल कर आ गए । उन्होंने किसी से कुछ न कहा ।

उसके मित्र अपनी इस शरारत पर बड़े शर्मिंदा हुए । तथा शिव से माफी मांगी.....लेकिन वह कुछ न बोला ।

वह दाढ़ी बाला वृद्ध पुनः बोला— बड़ा शूरवीर बालक उत्पन्न किया है सिद्धगौड़ा ने ।

एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति बोला—शूरवीर भी क्यों नहीं, शूरवीर की जो संतान ठहरा । क्या, उसके पूर्वज कम शूरवीर थे ।

और न जाने कितने प्रकार की चर्चाएं जगह-जगह छिड़ी थी । ऐसे मालूम पड़ता था, जैसे लोगों के पास इस चर्चा के अलावा कोई दूसरा विषय ही बात करने के लिए न हो ।

अब कुएं पर पानी भरने वाली स्त्रियों को ही देखिए । वैसे भी स्त्रियां चर्चा करने में माहिर होती हैं, फिर कुएं अथवा मंदिर जैसा स्थान प्राप्त हो जाए तो कहना ही क्या है ? और अगर पार्टी, विवाह आदि की बात हो जाए तो वे फूली नहीं समाती .....।

तो आज कुएं पर भी यह चर्चा जोरों पर थी । एक अधेड़ उम्र की स्त्री कह रही थी— अरी ! आज तो शिवगौड़ा ने बड़ा गजब कर दिया क्या उसे अपने प्राणों की भी चिंता नहीं रही

होगी ? अरे, जरा सोचो जहां बड़े-बड़े जवान खड़े रहे, वहाँ एक किशोर जाकर कुएं में छलांग मार गया । बड़ा शूरवीर है, वह ।

एक अन्य स्त्री बोली—हाँ ! बहिन बड़ा ताकत वान है, मैंने भी सुना है कि, वह कपास के झाड़ों को समूल उखाड़ कर कुछ ही समय में गाड़ी भर कर ले आता है, जब कि दूसरों को दो-दो दिन में गाड़ी भर पाना मुश्किल पड़ती है ।

बड़ा पराक्रमी है वह और भी क्यों ना ? भोजन भी तो कम नहीं करता मालूम एक शेर (किलो) सींगदाना (मूंगफली) और एक शेर गुड़ तो उसे सुबह के नाश्ता में ही लग जाता है और फिर भोजन का तो कहना ही क्या ? मेरे लड़के ने मुझे उसकी एक घटना सुनाते हुए कहा था कि हम लोगों ने उससे शर्त लगाई कि अगर यह ढाई कि. ग्रा. का कददू (काशीफल) कच्चा ही खा जाओगे, तब ही हम सब में ताकतवर माने जाओगे । बातों ही बातों में वह कददू फोड़ - फोड़ कर खाने लगा जब वह लगभग पूरा ही खा गया तो मित्रों ने बचे हुए कददू को खाने के लिए मना भी किया, पर वह नहीं माना पूरा ही खा गया ।

एक अन्य स्त्री आश्चर्य जनक मुद्रा में बोली— पूरा छह किलो का कच्चा कददू खा लेने पर, उसकी मां ने उससे कुछ नहीं कहा ।

कहा क्यों नहीं, कहा तो पर वह बोला— कि मां तू मेरी विशेष चिंता मत कर, बस अपना आशीर्वाद दे कि मैं संसार में आया हूँ, तो कुछ यश कमा कर जाऊँ । मैं इतना कमजोर थोड़े ही हूँ जो कि मात्र छह किलो का कददू ही न पचा सकूँ ।

एक स्त्री बोली— सच ही है, जो इतना भोजन करता है वह तो शक्तिशाली होगा ही ।

एक अन्य वृद्धा बोली— बेटी ! यह शक्ति मात्र, भोजन करने से नहीं आती कुछ तो पूर्व कर्मों का उदय होता है और कुछ पुरुषार्थ, फिर दोनों के साथ-साथ जिसका मनोबल भी बड़ा हुआ हो उसका कहना ही क्या ?

आप ! स्त्रियों की चर्चा तो जानते ही है.....भरोसा नहीं कि दो चार घंटों में पूर्ण होगी भी अथवा नहीं । उनकी चर्चा अपने जोरों पर थी..... ।

X

X

X

एक बार तब उनकी शक्ति का पता चला था, जब कि अंकली गांव के जिन मंदिर का निर्माण कार्य चल रहा था । समस्त साधर्मी बंधु सहयोग कर रहे थे, उनमें शिवगौड़ा पाटिल भी एक थे । वे बड़ी-बड़ी शिलाओं को एक दो साथियों के सहयोग से ही मंदिर के ऊपरी हिस्से तक पहुंचा देते थे । कई बार तो वे अकेले ही बड़ी-बड़ी शिलाओं को उठा कर योग्य स्थान पर पहुंचा देते थे । उनकी इस अनुपम शक्ति को देखकर लोग आश्चर्य चकित रह जाते थे ।

जब एक वृद्ध ने उस चढ़ती उम्र वाले युवा का अदम्यशौर्य देखा तो, वह अपने आप को रोक न सका और वह सीधे उसके पिता सिद्ध गौड़ा पाटिल के पास जाकर बोला- पाटिल ! देखो तुम्हारा पुत्र कितनी बड़ी-बड़ी शिलाएँ उठा रहा है । उसे मना करो कहीं चोट वगैरह लग गई तो मुश्किल पड़ेगी ।

सिद्ध गौड़ा मुस्कराते हुए बोले- बाबा ! उसे कुछ नहीं होगा, उसका शरीर तो बज्र जैसा मजबूत है, आप उसकी फिक्र बिल्कुल भी न करें, और फिर मंदिर का कार्य है, अगर तत्परता से सहयोग न दिया गया, तो पूर्ण होने में भी तो समय लग सकता है ।

वृद्ध एक बार फिर बोला-पाटिल ! सहयोग करना ठीक है, लेकिन अपनी शक्ति से अधिक करना ठीक नहीं है ।

बाबा ! बिना शक्ति के कोई काम नहीं करता है, उसमें जितनी शक्ति है, वह उतना ही काम करेगा । आप व्यर्थ परेशान न हो, उसे अपना काम करने दो ।

हितैषी चिंतित था, किंतु पिता निश्चित, क्योंकि वे उससे बल, वीर्य, बुद्धि, साहस और पराक्रम आदि गुणों को जानते थे ।

X

X

X

शिव गौड़ा को जन्म से ही जिन धर्म के प्रति विशेष लगन थी । वह लगभग प्रतिदिन ही ऊदगांव में स्थित जिन मंदिर में दर्शनार्थ जाया करते थे । जिनेन्द्र प्रभु के प्रति उनकी अतिशय श्रद्धा थी । घंटो तक प्रभु को निहारना उनकी दिनचर्या जैसी बन गई थी ।

अंकली गांव में शीघ्रता से मंदिर निर्माण कर चलने का एक प्रमुख कारण यह भी था, कि मंदिर के अभाव में श्रावकों को जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन भी न हो पाता था । जो जिन धर्म के अतिशय श्रद्धालु थे उन्हें प्रतिदिन पांच-छह कि. मी. उदगांव अथवा कुंजबन जाकर भगवान का दर्शन हो पाता था ।

कई बार तो जिन वृद्धों का दर्शन करने के बाद ही भोजन करने का नियम था, वे जिन प्रभु के दर्शन न होने पर उपवास भी कर लेते थे । अथवा एक णमोकार मंत्र की माला फेरकर विशेष परिस्थिति में भोजन भी कर लेते थे ।

मंदिर निर्माण कार्य में शिव गौड़ा के साथ-साथ उनके पिता श्री सिद्ध गौड़ा पाटिल की भी एक प्रमुख भूमिका रही थी । उनके बिना कोई भी कार्य आगे नहीं बढ़ पाता था, क्योंकि संपूर्ण गांव में उन्हें ही मुख्यता दी जाती थी और अभी-भी दी जा रही थी ।

X

X

X

एक दिन माता-पिता ने आपस में शिव गौड़ा की शादी करने के बारे में विचार-विमर्श किया । उस शादी-विवाह के लिए कोई उम्र विशेष का तकाजा नहीं रहता था । बाल्यावस्था में ही अधिकांश विवाह हुआ करते थे ।

शिवगौड़ा के विवाह के लिए भी किसी अच्छी कन्या की

खोज की गई । पास के गांव में ही उन्हें अपने मन की कन्या मिल गई, उन्होंने उसके पिता ( जो कि उस गांव के जागीरदार थे ) से विवाह आदि के बारे में पूर्ण चर्चा कर ली ।

जब दोनों संतुष्ट हो गए, तब पंडितों से मुहूर्तादि निकल वाया गया । विवाह की तैयारियां प्रारंभ हो चली ।

निश्चित तिथि पर "हीरा" नाम की कन्या से उनका विवाह हुआ । क्षत्रियोचित रीति से समस्त समारोह का संचालन हुआ । गांव के तो समस्त परिवार विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए ही थे, आसपास के गांवों के लोग भी आ चुके थे ।

शिव गौड़ा का दांपत्य जीवन सुख पूर्वक बीतने लगा था । संपूर्ण परिवार में न कोई कलह, न राग-द्वेष, न ईर्ष्या भाव, सभी एक साथ प्रमुदित मन से रह रहे थे ।

बेटा शिव के विवाह से मां-बाप को तो प्रसन्नता थी ही, परिजन और पुरजनों को भी कम प्रसन्नता न थी । सभी का जीवन सुचारु रूप से चल रहा था । फिर आज तो प्रायः सभी परिवार ही प्रसन्न वदन था.....क्योंकि शिव गौड़ा पाटिल बच्चों से लेकर वृद्धों तक सभी के चहेते थे ।

### ३

जो उत्पन्न हुआ है, उसका नियम से नाश होगा । क्योंकि परिणाम स्वरूप से तो कुछ भी नित्य नहीं है । जन्म-मरण, यौवन-बुढ़ापा एवं लक्ष्मी विनाश के साथ ही उत्पन्न होती है । इसी प्रकार सभी वस्तुओं की क्षणभंगुरता जानना चाहिए ।

पता नहीं, कब किस पल किसको क्या हो जाये कोई भरोसा नहीं । अच्छे-खासे नौजवान व्यक्ति भी मौत के मुंह में जाते देखे हैं और जिनके मरने की हम वर्षों से मानसिकता बनाए बैठे हैं, ऐसे वृद्ध जीवित बने रहते हैं ।

काल किसी का सगा नहीं होता, मरण होने के बाद अथवा आयु पूर्ण होने के बाद वह किसी को एक सेकेन्ड भी ज्यादा नहीं जीने देता । यह बड़ा भयानक शत्रु है पता नहीं कब हमला बोल दे और एक झंपट्टे में ले जाए ।

अब यहीं पर देखो, कौन जानता था कि शिवगौड़ा के पिता आज चल बसेंगे । परिवार में रोना-धोना मच गया था । शिव की माँ करुण विलाप कर रही थी, अन्य स्त्रियाँ उसे सान्त्वना दे रही थी । कोई स्त्री समझाते हुए कह रही थी— बहिन ! व्यर्थ में रोकर के क्यों अपनी हालत खराब कर रही हो, यह तो संसार आना जाना लगा ही रहता है । देखो ! तुम्हारे रोने के कारण सारा परिवार बेहाल हो रहा है, पहले ही वे सब दुःखी है फिर तुम्हारा इस तरह रोना.....उन्हें और भी दुखित कर रहा है ।

एक वृद्ध स्त्री बोली—बेटी ! रोने से तो कोई मरा हुआ पति जिंदा नहीं हो जाएगा । जिस की आयु पूर्ण हुई, उसको निश्चित रूप से मरना पड़ेगा । उसे कोई भी काल के हाथों से बचा नहीं सकता । काल तो .....

और बुढ़िया मां ने एक लंबा व्याख्यान देना शुरू कर दिया, वास्तव में संसार में "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" वाले जीवों की कमी नहीं है । वह बुढ़िया माँ शिव की मां को तो समझा रही थी, पर उसे स्वयं यह होश भी नहीं था, कि मैं भी बूढ़ी हो चली हूँ, बाल सफेद पड़ गए, ढंग से चलना भी मुश्किल है । अब मुझे भी अपने आत्म हित का कुछ कार्य करना चाहिए ।

अगर व्यक्ति मात्र दूसरों के बारे में न सोचकर कुछ अपने बारे में भी सोचे तो वास्तव में वह अपने आप को भी निर्मल बनाने में समर्थ हो सकता है ।

सान्त्वना देने वाली महिलाओं की कतार लंबी होती जा रही थी । अधिकांश महिलाएं, तब एकत्रित हुई थी.....जबकि मृत शरीर श्मशान की ओर ले जाया जा चुका था । क्योंकि वे यह भली भाँति जानती थी कि जब तक मृत व्यक्ति की देह भी सामने रखी रहे तो कम

रोना-धोना होता है और जब अर्थाँ उठाई जाती है, तब से कुछ क्षणों तक के लिए जोर-शोर से रोना प्रारंभ किया जाता है ।

सिद्ध गौड़ा के मरण होने से सारे गांव में शोक सा छा गया । सब के मुंह पर उनके उन कार्य कलापों की प्रशंसा थी, जो उन्होंने जन सामान्य के लिए किए थे । उनके गुणों की प्रशंसा यत्र-तत्र बैठे हुए अधेड़ उम्र के और वृद्ध तो कर ही रहे थे, महिलाएं और बच्चे भी पीछे नहीं थे ।

X

X

X

पिता का देहान्त हो जाने से शिव को बड़ी ठेस लगी । एक बार उनके मन में यह बिजली भी कौंध गई कि संसार का कोई भरोसा नहीं.....कब किसको यहां से बिदा लेना पड़े । अच्छे-अच्छे शूरवीर महाबली काल के गर्त में समा गए ..... और समाते जा रहे हैं, फिर हम जैसे का मरण होना तो सामान्य बात है..... । उनके अंदर पिता का मरण, वैराग्य का एक बीज बन कर रह गया था ।

पिता के अभाव में घर परिवार का संपूर्ण कार्य अब उनके कंधों पर आ गया था । वे अपनी विधवा माँ को भी कई बार सांत्वना देते, समझाते । लेकिन ऐसी कौन सी पतिव्रता स्त्री होगी जिसे पति का वियोग होने पर दुःख न हो । फिर मां अक्का का तो अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पण भाव था । वह पल प्रति पल उनका अनुसरण करती रहती थी ।

शिव के अंदर भी दुःखों का सागर उमड़ पड़ा था, लेकिन विवेक रूपी वैराग्य के सूर्य ने उसे सुखाना प्रारंभ कर दिया था । वह सोचता था अगर मैं ही रोता रहूंगा तो परिवार का क्या होगा ।

उसकी सबसे बड़ी चिंता तो पहले ही खत्म हो गई थी । पिता ही अपने जीवन काल में उसकी बहिन की शादी, किसी गांव के एक अच्छे परिवार में कर गए थे । बहिन "आऊ" की चिंता से वे एकदम मुक्त थे ।

पतिव्रता कर्तव्य परायण पत्नि से भी वे संतुष्ट थे, जिसने उनको प्रसन्न रखने का हर संभव कदम उठाया । सुसंस्कारित, सेवाशील पत्नि हर दम शिव के सुख-दुःख में उसके साथ रहती ।

मां की सेवा करना, उसका प्रतिदिन का काम जैसा ही बन गया था । जिस दिन से उसका घर में पदार्पण हुआ था, उसी दिन से मां की आधी चिन्ताएं दूर हो गई थी । अब गृहस्थी का भार भी उनके कंधों से हल्का हो चला था ।

X

X

X

समय निकलते देर नहीं लगती, मनुष्य चाहे चले न चले पर समय अपनी गति से गतिमान रहता है । शिव गौड़ा के पिता का मरण हुए आज पूरे छह वर्ष बीत चुके थे । शिव के द्वारा परिवार संचालन सुचारु रूप से चल रहा था, मां भी अब अपने अतीत को विस्मृत जैसा कर गई थी ।

बेटे-बहू की सेवा ने उसका दिल जीत लिया था । अब उन्हें किसी प्रकार की कोई भी कष्ट न था । दो छोटे-छोटे बालक उनके आंगन की शोभा बढ़ाने लगे थे । उन्हें देख-देख कर मां भी बड़ी प्रफुल्लित होती कभी उन्हें छाती से लगाती, तो कभी उसका माथा चूमती घंटों-घंटों तक बच्चों को प्यार करती रहती ।

सभी दिन एक जैसे नहीं रहते । जिस अक्का बाई को गांव की अधिकांश महिलाएं अत्यंत पवित्र मानती थी अब उनमें से ही कुछ उन पर लांछन लगाने लगी थी । इस प्रकार के दुर्लाघन जब अक्का बाई ने सुने, तो उन्होंने उन सबको बुला कर कहा—तुम्हें मेरे चरित्र पर शंका है, ना । मैं उसका अभी निगारण किए देती हूँ ।

उन्होंने यह कह कर कि हे जिनेंद्र ! अगर मेरे शील में कोई दूषण लगा हो तो इस अग्नि से मेरा हाथ जल जावे और अग्नि का धधकता अंगारा हाथ पर उठा लिया, तथा उस पर चने सेक कर भी दिखा दिए ।

सभी महिलाओं के सिर नीचे हो गए । उनमें से जिसने यह अफवाह फैलाई थी वह बहुत ही शर्मिदा हुई तथा आंसू बहाते हुए क्षमा मांगने लगी । मां अक्का बाई ने उसे शीघ्र ही क्षमा करते हुए कहा— बिना सोचे समझे किसी पर दुर्लाघन लगाना बहुत बुरी बात है, अब भविष्य किसी दूसरी स्त्री के बारे में तुम ऐसा सोचना भी मत । संसार में क्या हो रहा है, इससे हमें क्या मतलब हमें तो अपने आप से, परिवार से अथवा अपने नगर से ही मतलब है....दूसरों में अवगुण खोजने की जगह अपने अवगुण देखो ।

अक्का बाई के पवित्र आचरण पर लगा हुआ, प्रश्न चिन्ह क्षण भर में हट गया, अब सबको पूर्ण विश्वास हो गया था कि वास्तव में यह पवित्राचरण वाली पतिव्रता स्त्री है ।

ऐसी घटनाओं का प्रचार—प्रसार करने की आवश्यकता बिल्कुल भी नहीं पड़ती उनका तो स्वतः ही प्रचार—प्रसार हो जाता है । और फिर अगर ऐसी बात महिलाओं को सुनने मिल जाए तो फिर कहना क्या, अब जब यह घटना महिलाओं द्वारा ही प्रसारित हुई तो कहना ही क्या ?

क्षण—भर में यह घटना जन—जन के कानों तक पहुंच गई । एक बार फिर सबका हृदय अक्का बाई के प्रति श्रद्धा से भर आया ..... ।

X

X

X

अब—जब पिता का देहान्त हुए सात—आठ वर्ष बीत गए थे, तब शिवगौड़ा अपने उत्तरदायित्वों के प्रति और अधिक जागृत हुए । संपूर्ण गांव में वे एक जुझारू, संघर्ष शील और दयालु युवक के रूप में पहचाने जाने लगे थे ।

उनकी दयालुता का कहना ही क्या था.....किसी को जरा भी दुःख देखना उनके लिए मुश्किल पड़ता था । किसी का दुःख देखकर उनके अंदर उसके दुःख को दूर करने की उत्कृष्ट भावना

जागृत हो जाया करती थी ।

मनुष्य तो ठीक पशुओं पर भी उनकी पूर्ण रूपेण दयामय दृष्टि रहा करती थी । जब कभी वे खेत पर काम करते-करते थके हुए मजदूर भाईयों से हल अपने हाथ में ले लेते और बैलों को हांकते हुए जुताई, बुवाई आदि करते रहते थे । कभी रहट में जुते हुए बैल उन्हें थके हुए महसूस होते तो वे तुरंत उन्हें निकाल कर स्वयं रहट को खींचते रहते ।

अत्यंत दयालुता के कारण पशु भी उन्हें कृतज्ञ दृष्टि से निहारते रहते थे । प्राणी मात्र पर दया करना उनका स्वभाव सा बन गया था ।

समय परिवर्तन शील है, सुख समृद्धि के बाद, दुख अभिवृद्धि कब आ टपके कुछ नहीं कहा जा सकता । उस क्षेत्र में एक समय ऐसा भी आया कि भयानक दुर्मिक्ष आ पड़ा । सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई, जन मानस भूख से पीड़ित होने लगे ।

जिसके यहां जो कुछ भी खाने को था वह पूर्ण रूपेण समाप्त हो गया था अब दुकानों पर अनाज मिलना बंद हो गया था । अन्न के एक-एक दाने को निर्धन वर्ग तरस रहा था । बड़ी दयनीय स्थिति बन गई थी, उस समय उन लोगों की ।

मध्यम वर्गीय परिवार भी कोई ज्यादा सुखी नहीं थे, उनके पास भी अब अनाज आदि न रहा था, फिर वे किसी तरह अन्य वस्तुओं से काम चला रहे थे ।

चारों ओर हा-हा कार मच गया था । प्राणों के लाले पड़ने लगे थे । चहुं दिशा अब मृत्यु ही मंडराती हुई दिख रही थी, क्योंकि भूख भी यमराज की ही एक रूप है । कुछ नीच पुरुष तो अभक्ष्य-भक्ष्य का ध्यान रखे बिना ही कुछ भी खाने लगे थे ।

जहां निर्धन वर्ग भूख से अत्यंत त्रस्त था, वहीं कुछ धनी-मानी क्षत्रिय, किसान अपने कोठों में अनाज भर कर सुख की नींद ले रहे थे । उन्हें किसी से कुछ भी मतलब न था । अपने मजबूत कोठों में भरे हुए अनाज की दम पर वे गौरव पूर्ण जीवन जी रहे थे ।

ऐसी स्थिति में कहीं शरण न समझ कर निर्धन वर्ग सीधा शिव गौड़ा पाटिल की हवेली में पहुंचा और उन्हें अपनी कथा—व्यथा सुनाई । चूंकि पाटिल इस स्थिति से पूर्व परिचित थे, वे अपने अनाज का चौथा भाग तो अब तक वितरित कर ही चुके थे, और करते भी जा रहे थे ।

उन आए हुए व्यक्तियों में से एक कुछ वृद्ध सा व्यक्ति बोला —पाटिल हम लोगों को भोजन चाहिए.....हमारे बच्चे भूख से त्रस्त है, तुम ही उन्हें बचा सकने में समर्थ हो । पाटिल रक्षा करो.....रक्षा करो..... ।

एक अन्य जीर्ण शरीर वाला वृद्ध बोला— भूख से तड़प तड़प कर मेरे पोते ने प्राण दे दिये.....लेकिन मैं भोजन लाकर दूं तो कहाँ से .....

सभी अपनी—अपनी कथा व्यथा करुण स्वर में कह रहे थे. ....पाटिल से अब उनके करुण शब्द नहीं सुने जा रहे थे । वे अपने आसन से खड़े होते हुए बोले.....आओ सब मेरे पीछे आओ.....उन्होंने अपने अनाज को संपूर्ण भंडार खोल दिए ।

सभी निर्धन वर्ग मनमाना अनाज भरकर ले जाने लगे..... अनाज अब समाप्ति की ओर था, लेकिन लेने वालों की पक्ति में कमी की जगह वृद्धि ही नजर आ रही थी ।

जब संपूर्ण अनाज खत्म हो गया और लेने वाले कातर स्वर में अनाज मांगते हुए खड़े थे । पाटिल के सामने एक विकट स्थिति खड़ी थी ..... उन्होंने कुछ सोच—विचार कर उन धनिक क्षत्रियों और किसानों के मकानों की ओर कदम बढ़ाया गांव वाले उनके पीछे हो लिए ।

उन्होंने प्रत्येक अमीर के घर जाकर थोड़ा अनाज वितरण करने की बात कही लेकिन कोई भी तैयार नहीं हुआ । जब कोई भी देने को तैयार न हुआ तो उन्हें कातर स्वर में चिल्लाते गरीबों को देखकर उन धनिकों के प्रति क्रोध और वे उन्हें अपनी बात मानने के लिए बाध्य करने लगे, लेकिन फिर भी कुछ सुपरिणाम न मिला, उन्होंने जब

धनिकों को आत्मीयता दिखाने की बजाय अभिमान दिखाते हुए देखा, तो वे कुछ आक्रोश में उनके गोदामों की ओर बढ़े और अपने घूसों के बज्र प्रहार से उनके दरबाजे तोड़ कर गिरा दिए और जोश भरी आवाज में बोले—गांव वालो ! जिसको जितना भी अनाज चाहिए, निकाल लो तुम इन नर पिशाचों की चिंता मत करो । इसे तो मैं सम्हाल लूंगा बढ़ो आगे बढ़ो.....कुछ अत्यंत भूख से व्याकुल वर्ग आगे बढ़ा और गोदाम को पूर्ण रूपेण खाली कर दिया..... अब सभी निर्भय हो गोदाम तोड़ कर अनाज लूटने लगे थे ।

गांव के ठाकुर ने कुछ अनर्गल चेष्टा करने की कोशिश करते देख पाटिल उसे ललकारते हुए बोला— ठाकुर ! अगर इस ओर एक भी बंदूक से गोली निकली, तो ध्यान रखना.....सारे परिवार का जनाजा निकाल दूंगा ।

पाटिल की आवाज सुनते ही ठाकुर ने अपनी बंदूक पीछे की ओर खींच ली । उसके द्वारा बंदूक लिये जाने पर शिव गौड़ा बोले— शायद तू भूल गया है कि तेरे दादा—परदादाओं ने भी मेरे ही घर का नमक खाया है.....और आज तू इतना स्वच्छंद हो रहा है । ध्यान रखना । अगर किसी भी गांव वाले की शिकायत मेरे कानों तक पहुंच गयी तो.....नतीजा क्या होगा, तुम जानते हो ।

शिव गौड़ा पाटिल की सिंह दहाड़ को सुनकर क्षत्रिय और धनिक किसान भी कुछ न बोले । पाटिल की दहाड़ ने सबका मुंह बंद कर दिया था ।

पाटिल की इतनी भयानक क्रांति शायद । पहली बार ही लोगों ने देखी थी । निर्धन वर्ग मनमाना अनाज पाकर उनकी जय—जयकार करने लगा । कोई वृद्ध कह रहा था पाटिल में अपने बाप दादों का खून आज भी बह रहा है, धन्य है गरीबों के मसीहा, तेरी जय हो..... ।

एक अन्य वृद्ध बोला— माना कि आज पाटिल का शासन नहीं है, लेकिन कल तक तो उसके पूर्वजों का ही शासन था, आखिर वह आत्म गौरव जाएगा कहीं । राजा बनने के लिए कोई मुकुट पहिनना आवश्यक नहीं है, अगर मनुष्य में पूर्णता मनुष्यता है, तो वह बिना

राज्य का राजा है, तो वह बिना राज्य का राजा है, वह तो बेताज बादशाह है ।

सभी आबाल वृद्ध इच्छित अनाज लेकर अपने-अपने घरों की ओर जा रहे थे । कुछ युवा वर्ग पाटिल के आस पास खड़े थे । सभी लोगों के जाने के बाद पाटिल अन्य युवा साथियों के साथ घर पहुंचा ।

मां को यह समाचार पहले ही मिल गया था, वह घबराई हुई सी, हबेली की पौर (बरामदे) में खड़ी थी, पत्नि भी चिंतित थी । कुछ हितैषी लोग भी वहां एकत्रित हो चुके थे ।

उनकी यह स्थिति देख बोला— आप लोग व्यर्थ की चिंता न करें, मैंने कोई डाका तो डाला नहीं कि अंग्रेजी शासन मुझे फांसी की सजा सुना देगा । जो कुछ होगा, तो सामने ही ना.....देख लूंगा । हमेशा न्याय की ही जीत होती है ।

बात वास्तव में ये थी कि जिन — जिनके गोदाम लुट चुके थे उन्होंने रिपोर्ट दर्ज करा दी थी.....उन पर मुकदमा जारी कर दिया था ।

वे अपने प्रथम पेशी पर अदालत में पहुंचे । न्यायाधीश बोला शिवगौड़ा तुमने इन सबका अनाज क्यों लुटवाया, क्या तुम जैसे जागीरदार को यह शोभा देता है .....

शिव गौड़ा एकदम सरल शब्दों में शांतिपूर्वक बोले— महानुभाव मैं उन क्षुधा से पीड़ित दुःखी मनुष्यों को देखकर, यह भूल गया था, कि मैं क्या कर रहा हूँ । मैंने जो कुछ भी किया.....वह मजबूरन किया है । पहले तो मैंने अपने गोदाम खोल दिये लेकिन जब निर्धन उससे तृप्त न हो पाए तो मैंने इन धनिकों से उन दुःखी व्यक्तियों को कुछ अनाज देने के लिए कहा, लेकिन इन्होंने मना कर दिया । बार-बार कहने पर भी जब इनका हृदय न पसीजा तो फिर मुझे विवश होकर इनके गोदामों के दरबाजे तोड़ना पड़े ।

बताइये ! मैंने असमय में किसी के प्राणों की रक्षा करके कोई अपराध किया है क्या ? अगर मेरा कोई भी अपराध आप की दृष्टि

में हो, तो निःसंकोच मुझे दंड दें ।

न्यायाधीश उनके गंभीरता पूर्ण उत्तर से अनुत्तर हो गया, वह शिवगौड़ा की बात सुनकर अपने आप को धिक्कारने लगा, मन ही मन सोच रहा था, कि मैंने किसी सच्चे मनुष्य की मनुष्यता पर प्रहार किया है । कुछ पन्ने इधर-उधर पलट कर वह बोले-शिव गौड़ा पाटिल ने मनुष्यता के लिए यह कदम उठाया है, अतः वह निर्दोष और ससम्मान बरी किया जाता है ।

न्यायाधीश का निर्णय सुनकर जैसे ही वह न्यायालय से बाहर आया, कि कुछ हितैषी, उनकी जय-जयकार करते हुए, उन्हें कंधे पर बिठा कर उन्हें उनके घर तक भेजने गए । संपूर्ण ग्राम वासी इस सुखद निर्णय को सुन कर प्रसन्न थे ।

क्षत्रियों के मन में यह निर्णय भी बदले की भावना में बदल गया अब वे किसी प्रकार से भी पाटिल को नीचा दिखाना चाहते थे । यदा-कदा वे अनेकों षडयंत्र रचते रहे लेकिन उन्हें कुछ सफलता न मिली ।

वे ऐसे-ऐसे कुत्सित प्रयास कर चुके थे कि गांव वाले भी उनके विरोध में आ गये थे । गांव के लोग जब कभी-पाटिल से प्रतिशोध लेने के लिए कहते तो वह कह देता था-आखिर वे भी तो हमारे ही गांव के हैं, क्यों उन्हें व्यर्थ में सताया जाय.....और फिर वे कोई हमें जान से तो मार नहीं रहे हैं, निंदा, अपवाद, गाली, गलौच आदि ही तो करते हैं..... करने दो । अपने ऊपर किए जा रहे इस वर्ताव का प्रतिशोध करना क्षत्रियों का कार्य नहीं है । क्षत्रिय तो स्व-प्राण रक्षा के लिए होते हैं ।

उनकी क्षमा पूर्ण बात सुनकर गांव वाले भी चुप हो जाया करते थे ।

अंततः एक दिन वह भी आया जब क्षत्रियों का हृदय भी उनके प्रति कृतज्ञता से भर गया ।

बात यह थी कि - एक दिन खेत से आने में शिवगौड़ा को देर हो गई । अंधेरा छा गया था, लेकिन कृष्ण पक्ष के घटते हुए चांद

का थोड़ा थोड़ा प्रकाश पृथ्वी पर पड़ रहा था । वह तेजी से गांव की ओर बढ़ता जा रहा था, कि चीखते हुए किसी बच्चे की आवाज उसके कानों में पड़ी ।

आवाज कहीं दूर से मंद-मंद ध्वनि में आ रही थी । वह घबराए नहीं अपितु उसी दिशा में तेजी से बढ़े । जब वे उस आवाज के बिल्कुल निकट पहुंच गए, तो दबे पांव चलकर वे यहां वहां देखने लगे.....अचानक उनकी दृष्टि वहां पहुंची; जहां एक काली सी वर्दी पहने एक दाढ़ी वाला व्यक्ति एक बच्चे के हाथ पैर बांध रहा था । उसने उसके मुंह को अब तक अच्छी तरह बंद कर दिया था ।

उसे देखते ही पाटिल ताड़ गया कि हो ना हो यह कोई तांत्रिक है और बच्चे को बांधकर ले जाना चाह रहा है.....पर मैं करूं तो क्या करूं..... । उस बच्चे को कैसे बचाऊँ.....वे कि कर्तव्य विमूढ़ से इधर-उधर देख रहे थे, कि अचानक उनको णमोकार मंत्र का स्मरण आ गया । मन ही मन णमोकार मंत्र को जपते हुए उन्होंने तांत्रिक के ऊपर छलांग लगा दी ।

तांत्रिक भी मस्त था, दोनों में जमकर मल्ल युद्ध हुआ, अंत में शिव गौड़ा ने उसे पकड़ कर ऐसा फेंका कि वह उठने के काबिल न रह गया था । जब वह अधमरा सा हो चुका, तो पाटिल ने बालक के हाथ पैर खोले, मुंह खोला और उसे कंधे पर रखकर तेजी से गांव की ओर बढ़े ।

गांव में आकर देखा तो चारों ओर कहीं चर्चा हो रही थी, कि ना मालूम ठाकुर का लड़का कहाँ चला गया । वह ढूढ़ते ढूढ़ते परेशान हो गया लेकिन अभी तक कुछ पता नहीं चला, न तो खेत पर मिला, न खलियान पर और न गांव में ही, न जाने कहाँ चला गया अथवा कौन ले गया ।

शिव गौड़ा ने बालक को लेकर घर जाना उचित न समझा, वह उसे लेकर सीधा ठाकुर की हवेली में पहुंचा । उसे देखते ही पहले तो ठाकुर को कुछ-संदेह हुआ लेकिन दूसरे ही क्षण जब बालक उसके कंधे से उतर कर उससे आ लगा तो वह पाटिल का

आश्चर्य भरी नजरों से देखने लगा ।

बालक ने संपूर्ण कथा—व्यथा अपने पिता को सुना दी ।  
ठाकुर अपने बेटे के मुंह से सारी बात सुनकर पानी पानी हो गया.....

पाटिल का आभार जताने के लिए जैसे ही उसने नजरे उठाई, तो  
देखा.....पाटिल जा चुका है ।

ठाकुर उसी स्थिति में पाटिल की हबेली पर पहुंचा और  
उसके चरणों में गिर कर अपने कृत्यों की क्षमा मांगते हुए बोला पाटिल!  
तुम देवता हो देवता.....अगर आज तुम न होते, तो मेरे इकलौते बेटे की  
जान चली गई होती.....। आंसुओं के साथ ठाकुर अपने कुकृत्यों  
का पश्चाताप करते हुए पाटिल के प्रति कृतज्ञता साबित कर रहा था ।

शिवगौड़ा अपनी सीधी सरल भाषा में बोला ठाकुर मैंने  
कुछ नहीं किया यह तो उस बालक का ही भाग्य था कि मैं खेत से आने  
लेट हो गया और फिर मेरा धर्म ही तो मैंने निभाया है ।

उनके इस व्यवहार से समस्त विरोधी पानी पानी हो गये  
वे अपने किए गए कृत्यों पर मन-ही मन पश्चाताप कर रहे थे वे सब बड़े  
ही शर्मिदा थे ।

आज फिर सभी गांव वाले पाटिल के गुण गाने लगे ।  
अब शायद ही कोई उनका विरोधी रह गया हो..... ? सभी उनके  
हितैषी बन चुके थे मां और पत्नी भी उनके सद्कर्तव्यों पर प्रमुदित  
थी ।

X

X

X

संसार कर्म के आधीन है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने किए  
हुये कर्मों का दुःख सुख अवश्य ही भोगना पड़ता है संयोग वियोग  
संसार का अपना निज स्वरूप है जो पल प्रतिपल होता ही रहता है ।  
शिवगौड़ा को पिता की मृत्यु ने एक संघर्षशील, कर्मठ और जुझारू बना  
दिया था। तूफानों से टकराने की क्षमता उनकी और भी बढ़ गयी थी  
कठिन से कठिन कार्य उनके लिए आसान हो गया था।

लेकिन सत्ताइस वर्ष की उम्र में ममत्व का वृद्ध हस्त उनके सिर से उठ गया, सारे गांव में शोक छा गया । शिवगौड़ा अचेतन से होकर गिर गए मित्रों ने उन्हें सम्हाला और सांत्वाना दी । "सांत्वना, आशा एक ऐसी चीज है जिसके बल पर मरता हुआ व्यक्ति भी जीवित बना रहता है ।" शिवगौड़ा अब कुछ विचलित से हो गये थे । पिता की मृत्यु के समय पड़े वैराग्य के बीज ने उन्हें प्रतिबोध दिया ।

वे अब संसार की असारता को समझ कर कुछ सावधान हुए बहुत देर से रो रही, पत्नि हीरा को उन्होंने समझाया सांत्वना दी । संपूर्ण ग्राम वासी इस प्रकार शोकमग्न थे जिस प्रकार किसी संबंधी का मरण हो गया हो । अक्का बाई भी तो सभी की संबंधी थी । सभी के सुख दुःख में हमेशा साथ देना उनका स्वभाव जैसा बन गया था ।

आज नगर के प्रत्येक व्यक्ति के होठों पर उनके गौरव मयी व्यक्तित्व की चर्चा थी ।

#### ४

जब किसी के अंतर चक्षु खुल जाते हैं, अंतर ज्ञान जग जाता है, आत्मा के प्रति रुचि होने लगती है अथवा संसार से वैराग्य हो जाता है । तब संसार की संपूर्ण झंझटों को छोड़कर अपने आपको सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति में लगा देता है, वह जानने लगता है कि इस मार्ग से ही मेरा कल्याण हो सकता है ।

यही कारण था कि शिवगौड़ा पहले की अपेक्षा अब स्वाध्याय में अधिक रुचि लेने लगे थे । वे बचपन में विद्या प्राप्त नहीं कर पाए थे, जिसका उन्हें बहुत ही खेद हुआ करता था । पर अब ऊदगांव जाकर वहां के सुप्रतिष्ठित विद्वान पं. अप्या शास्त्री के मुख से जिनवाणी सुनकर ही वे संतोष कर लेते थे ।

पिताजी की मृत्यु के बाद, जब से उनके अंदर वैराग्य का बीज पड़ा था, तब से ही वे रोज पांच-छह कि. मी. दूर स्थित ऊदगांव

जाकर जिनवाणी सुना करते थे । उस जिनवाणी से ही प्राप्त सदज्ञान के बल पर वे अपनी मां का वियोग सहन कर पाए थे ।

वास्तव में ज्ञान की महिमा अगम अपार है, इसलिए तो किसी कवि ने कहा है -

ज्ञान समान ना आन, जगत में सुख को कारण ।

इह परमामृत जन्म, जरा मृत रोग निवारण ॥

जिसे ज्ञान होता है, वह तत्व की गहराई में उतर कर देखता है, वह प्रत्येक वस्तु के आर-पार देखता है और सत्यता पा लेता है । सत्यता वही पा सकता है, जिसकी दृष्टि ज्ञान रूपी जल से साफ की गई है ।

शिवगौड़ा को अब सारा संसार ही असार लगने लगा । प्रतिवर्ष प्रत्येक चातुर्मास में सुने गए स्वाध्याय ने उनकी आत्मा को जागृत होने में बड़ा भारी सहयोग दिया । शायद वह ज्ञान न होता, तो वे अनित्यादि भावनाओं का चिंतन करते और संसार और, शरीर के स्वरूप के बारे में विचार ही न करते तो वैराग्य कैसे हो पाता । उन्हें उस-पूर्वार्जित ज्ञान ने ही प्रकाश देकर रास्ता दिखाया था, अगर ज्ञान से उन्हें सत्पथ न मिलता तो न जाने मातृ वियोग में वे क्या से क्या कर बैठते थे ।

X

X

X

मां के मरण के बाद उन्हें तत्व ज्ञान की प्राप्ति में अत्यधिक रुचि बढ़ी, क्योंकि इन दो घटनाओं ने उनके मन को वैराग्य रस से सराबोर कर दिया था अब संसार की वास्तविक स्थिति जान चुके थे ।

बहुत दिनों के चिंतन, मनन और स्वाध्याय के माध्यम से अब उन्होंने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया था । जिनवाणी के श्रवण में पहले ही उनकी रुचि थी, पर अब वह रुचि और भी बढ़ गई थी ।

पंडित अप्पा शास्त्री के पास पांच-छह कि. मी. चलकर प्रतिदिन समय से पहुंच जाना उनकी आत्म जागृति का प्रथम प्रकट चिन्ह थे । शंका, प्रश्न और तर्क भी अब पहले की अपेक्षा अधिक करने लगते थे । पंडित अप्पा शास्त्री से वे जब तक पूर्ण रूपेण समाधान प्राप्त न कर लेते, तब तक तर्क वितर्क करते ही रहते और जब समाधान मिल जाता तो प्रमुदित मन से जिनवाणी सुनते ।

दस-बारह वर्ष से चल रहे चातुर्मासिक, स्वाध्याय कार्यक्रम से शिव गौड़ा को एक नई दृष्टि मिली थी ।

उन्होंने एक सूत्र सा बना रखा था कि—लाख बात की बात है निश्चय उर लाओ, तोड़ि सकल जग दंद—फंद निज आत्म ध्यावो ।

आत्म ध्यान के प्रति उनकी लगन बढ़ी थी । अब वे आत्म चिंतन में भी समय लगाने लगे ।

X

X

X

ज्ञान के प्रति अत्यधिक लालसा बढ़ने से जिज्ञाषाएं भी बढ़ने लगी और तत्व चर्चा में आनंद पहले की अपेक्षा कई गुणा बढ़ने लगा ।

अब वे स्वेच्छा से पल-भर भी घर में नहीं रहना चाहते थे, पर कर भी क्या सकते थे । निःसहाय पत्नि और छोटे-छोटे दो बच्चों को छोड़कर कहीं जा भी तो नहीं सकते थे । जब कभी वैराग्य का सागर उनके हृदय पटल पर हिलोरें भरता हुआ उभरता, तो वे नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प करने लगते, सोचा करते थे न मैंने शादी की होती और ना ही वे पत्नि और बच्चे मेरे मार्ग में आज बाधक बनते, लेकिन अब वह भी क्या कर सकते थे ।

क्षत्रिय होने के नाते वे पलायन वृत्ति को भी स्थान नहीं दे सकते थे अर्थात् परिवार को असहाय अवस्था में छोड़कर नहीं जाना चाह रहे थे । चूंकि संसार शरीर और भोगों से वैराग्य हो जाने पर घर-परिवार आदि को छोड़ देना ही श्रेष्ठ है, पर असहाय अवस्था में

नहीं । ऐसा नहीं हो कि हम तो दीक्षा ले , और पत्नि व बच्चे दर-दर की ठोकरें खाते फिरें ।

स्वामी के अभाव में लाखों-करोड़ों की संपत्ति भी परिवार के लिए कूड़े-कर्कट से ज्यादा नहीं होती है, कब उस संपत्ति पर कोई दूसरा व्यक्ति अधिकार कर ले कोई भरोसा नहीं ।

शिव गौड़ा विभिन्न दृष्टियों से सोचकर यही निर्णय निकाल पाये थे, कि जब तक परिवार किसी सुयोग्य हाथों में नहीं सौंप दिया जाता, तब तक दीक्षा लेना उचित नहीं है ।

अब वे पहले की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही गंभीर रहने लगे थे उनका तात्त्विक चिंतन दिन-दिन बढ़ता जा रहा था । कीचड़ में कमल की भांति उनका जीवन चल रहा था । वे अपने संयमित जीवन को मित भाषी, मृदुभाषी बनाते रहे । उनसे किसी को कुछ भी कष्ट न था, हमेशा न्याय मार्ग पर ही उनका प्रत्येक पग बढ़ता था ।

शिवगौड़ा के आध्यात्मिक जीवन को तथा उनके बढ़ते हुए ज्ञान के चिंतन, मनन को देखकर पंडित अप्पा शास्त्री मन ही मन बहुत प्रसन्न होते, वे न जाने क्या-क्या सोचा करते थे उनके बारे में ।

एक बार पंडित जी के सामने शिवगौड़ा अपनी बात गंभीरता पूर्ण शब्दों में रखते हुए बोले-पंडित जी आपके माध्यम से मैं ब्रह्म पुराण, आदि पुराण, उत्तर पुराण, भरतेश वैभव, श्रेणिक चरित्र आदि कई प्रथमानुयोग संबंधी चर्चा भी सुनी पर आपने चरित्र ग्रंथों को गहराई से आज तक नहीं सुनाया मेरी इच्छा है, कि चरित्र ग्रंथों का गहराई से चिंतन मनन करूं । पंडित जी बोले- पाटिल आज ऐसी क्य़ा बात हो गई जो तुम चरित्र विषयक शास्त्रों को विशेष रूप से सुनना चाहते हो.....? आज तक तो तुमने इस संबंध में कुछ नहीं कहा .... ।

पाटिल बोले-पंडित जी बात क्या हुई, यह तो आपको भी पता है, चूंकि बातों का अज्ञानी जीवों पर कुछ भी असर नहीं पड़ता है, किंतु मैंने तो जिस वाणी को सुना है, और वर्षों से सुनता आ रहा हूं । प्रथमानुयोग अर्थात् कथा कहानियों से भी मुझे महान् ज्ञान की

उपलब्धि हुई है सुकुमाल, सुकौशल, यशोधर, गजकुमार, चिलाती पुत्र, वारिष्ण, सुदर्शन आदि मुनि राजाओं की कथाओं का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा है, अब मैं भी उन जैसा बनना चाहता हूँ । लेकिन बिना चरित्र को जानें, ग्रहण करना बुद्धिमानी नहीं है । वर्तमान में कोई ज्ञानी साधुजन भी नहीं दिखते हैं ।

पाटिल निःसंकोच, धारावाही वाणी में अपने मन की बात कह गया पंडित जी उनके विचारों से अवगत होते हुये बोले—पाटिल ! मैं तो सोचता था कि अब इस जीवन को तुम एक सदाचारी, ज्ञानी श्रावक के रूप में जिओगे, लेकिन तुम्हारे महान् विचारों को सुनकर मुझे अति प्रसन्नता है ।

पाटिल ! तुम्हारे कहने पर मैं चरित्र विषयक व्याख्यान जरूर दूँगा लेकिन, पहले यह शास्त्र तो पूरा हो जाने दो....यह शास्त्र भी पूर्णता की ओर है, इसे क्यों अधूरा छोड़ा जाये । पाटिल ने पंडित जी की बात पर सहमति देते हुए कहा—हां ! हां .....! इस ग्रंथ के पूर्ण हो जाने पर ही उस विषय को प्रारंभ किया जाए...तो ठीक रहेगा । ग्रंथ अधूरा छोड़ने पर उसकी अवज्ञा भी-तो होगी .....

पंडित जी, पाटिल के सद्विचारों और सदाचार से तो परिचित थे ही, और मां के मरण के बाद उनमें कुछ-कुछ वैराग्य के लक्षण भी स्पष्ट रूपेण दिखने लगे थे, परंतु वे यह नहीं सोच पाये थे, कि इस भीषण काल में इनका निर्ग्रंथ मार्ग पर बढ़ने का विचार भी बन सकता है ।

X

X

X

मां की मृत्यु के बाद गृहस्थी का संपूर्ण भार पत्नि के ऊपर आ गया था । अब उसके ऊपर से छत्र उठ गया गया था, जिसकी छाया में वह हमेशा प्रसन्न रहा करती थी । भले ही मां गृहस्थी का काम अधिक नहीं करती थी पर कब क्या करना, नहीं करना आदि बताती तो रहती ही थी ।

जब से मां की छत्रछाया पत्नि हीरा के ऊपर से उठी थी, तब से ही वह किसी विशेष बीमारी की शिकार हो गई थी । पूरे तीन वर्ष बीत गए थे, लेकिन उसने अपनी अस्वस्थता के बारे में शिवगौड़ा को कुछ भी न कहा था । इन तीन वर्षों में रोग इतना बढ़त चुका था कि उसने बिकट रूप ले लिया । अब उसकी अस्वस्थता का पता शिवगौड़ा को भी चल गया । वे तुरंत ही राज्य वैद्य को बुला कर तुरंत ही घर ले गए । पत्नि का स्वास्थ्य परीक्षण करवाया ।

स्वास्थ्य परीक्षण के बाद वैद्य ने उत्तर दिया—पाटिल ! रोग अपनी सीमा पार कर चुका है, अब किसी भी तरह इन्हें स्वस्थ नहीं किया जा सकता इनका जीवन भी अब ज्यादा लंबा नहीं रह गया है ।

वैद्य अपनी बात पूर्ण करके चला गया । अत्यंत अस्वस्थ अवस्था में पलंग पर लेटी हुई पत्नि हीरा के दाहिने तरफ बैठते हुए, शिवगौड़ा बोले—भद्रे ! तुम तो अपनी अंतिम तैयारी में लगी हो, बताओ .... तुम्हारे बाद इन बच्चों का पालन पोषण कौन करेगा....इन्हें कौन सम्हालेगा.....और कौन इन्हें मां का प्यार देगा ।

पत्नि ने टूटे शब्दों में कहा — आप अपना दूसरा विवाह करके मेरे इन बच्चों को दूसरी माँ ला दें.....बस मेरी यही इच्छा है । मैं स्वयं जान रही हूँ कि अब यह शरीर चार—छह दिन भी मुश्किल से टिक पाएगा.....आप मेरी बात पर ध्यान जरूर देना..... ।

बच्चों को माँ का प्यार आवश्यक है, जो एक मां ही दे सकती है, तुम जरूर इन्हें दूसरी....दूसरी माँ.....ला देना ।

दूसरे ही क्षण शिवगौड़ा कुछ सोचकर बोले—प्रिये अब तुम इन मोह माया की बातों को छोड़ो.....जीवन की इस अंतिम अवस्था में णमोकार मंत्र का जाप ही शरण है । तुम भविष्य की चिंता मत करो भविष्य का भार मेरे ऊपर है, मैं सब कुछ सम्हाल लूंगा । तुम व्यर्थ की चिंताएं छोड़ो और कुछ अपना मनन करने का विचार करो....जरा सोचों संसार में कौन किसकी मां है, कौन किसका पिता है, कौन पति और कौन भ्राता है । यह सब तो पर्यायों का भुलावा है । आत्मा तो त्रिकाली शुद्ध है, उस आत्मा के बारे में सोचो.... । तुमने भी तो कई बार शास्त्र

स्वाध्याय सुना है, उसका चिंतन करो इस संसार में देव, शास्त्र, गुरु और धर्म के अलावा कोई भी शरण नहीं है ।

यह संसार तो संयोग, वियोगमय ही है, इसलिए किसी का संयोग और किसी का वियोग होना स्वाभाविक है । इन संयोगों में मूर्ख ही प्रसन्न होते हैं और वियोग में मूर्ख ही दुःखी होते हैं । ज्ञानी तो संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं में ज्ञाता दृष्टा बनकर साम्यभाव रखता है । तुम अपने परिणामों में समता लाओ ।

सच्चे धर्म का चिंतन करो, उससे ही परम सुख की प्राप्ति हो सकती है, उससे ही भव-भव की भटकन रुक सकती है ।

शिवगौड़ा की बातों का पत्नि पर कुछ-कुछ प्रभाव दिख रहा था । अब वह कुछ समता धारण करने का उद्यम कर रही थी ।

X X X

पत्नि को समझाते हुए पाटिल कह रहे थे—यह शरीर नश्वर है । आत्मा का कभी उपकार करने वाला नहीं है । इसलिए उसे स्वस्थ रखकर अर्थात् योग्य-आहार विहारादि के द्वारा उसकी रक्षाकर काम लेना चाहिए । यदि रोगादिक उत्पन्न हो जाये तो औषधि आदि के द्वारा उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । औषयादि के देने पर भी शरीर पर उसका कोई प्रभाव न हो तो अर्थात् वह इस आत्मा को छोड़ने के मार्ग में ही हो तो उससे पहले ही दुष्ट के समान उस शरीर का त्याग कर देना चाहिए ।

कषाय और काय को अच्छी तरह समताभावों से कृपा करते हुए अपने मरण का स्वागत करना सल्लेखना है ।

सल्लेखना आत्मघात नहीं अपितु आत्म साधक का परम आवश्यक कर्तव्य है । सल्लेखना के समय तो कषायों का उपशमन किया जाता है और आत्मघात कषायों के तीव्र उदय में होता है ।

यह शरीर बड़ा कृतघ्नी है, जिंदगी भर हमने इसकी सेवा की, लेकिन आयु पूर्ण होने के बाद यह एक क्षण भी हमारा साथ देने के

लिए तैयार नहीं होता है । ऐसे कृतघ्नी को तो वह धोखा दे, उसके पहले ही छोड़ देना चाहिए । जब कभी शिव गौड़ा इस मानव पर्याय की दुर्लभता के बारे में बताते हुए कहते -

दुर्लभ है निगोद से थावर अरू त्रस गति पानी ।  
 नरकाया को सुरपति तरसे सो दुर्लभ प्राणी ॥  
 उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ श्रावक कुल पाना ।  
 दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम पंचम गुण ठाना ॥  
 दुर्लभ रत्नत्रय आराधन दीक्षा का धरना ।  
 दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन शुद्ध भाव करना ॥  
 दुर्लभ तै दुर्लभ है चेतन बोधिज्ञान पावै ।  
 पाकर केवल ज्ञान नहीं फिर इस भव में आवें ॥

देखो ! हमने अगर आज इस दुर्लभ मानव पर्याय को पाकर अपना उद्धार न कर सके, तो पुनः इस संसार में गोता लगाना पड़ेगा । यह तो निश्चित है कि यह एक न एक दिन अवश्य छूटेगा, क्यों न यह छूटे उसके पहले ही हम इसे बुद्धि पूर्वक छोड़ दें ।

किसी वस्तु के छूट जाने पर दुःख होता है किंतु छोड़ देने पर एक नई अनुभूति होती है, उस वस्तु में उपयोग भी नहीं जाता है । बुद्धिमान किसी वस्तु के छूटने के पहले उसे छोड़ने में ही बुद्धिमानी समझते हैं ।

जिस प्रकार एक निर्यापकाचार्य (समाधि लगाने वाले आचार्य) किसी समाधि करने वाले को सावधान रखते हैं, उसे संबोधित करते हैं उसी प्रकार शिवगौड़ा भी अपनी पत्नि को प्रतिक्षण संबोधित करते रहते थे ।

आत्मा की भावना कराने वाला अध्यात्मपद और बारह भावना तो सुनाते ही थे साथ ही साथ चतुर्गति में भ्रमण से प्राप्त दुःखों का भी मान कराते रहते ।

अपने दीर्घ कालीन शास्त्र श्रवण का रस वे उस मरणासन्न

पत्नि को भी पिंलाते रहते थे । अपने संबोधनों से उन्होंने उसे अपनी आत्मा की भावना करने योग्य बना दिया था । पति और बच्चों की शल्य भी प्रायः खत्म सी हो चुकी थी । अब मात्र णमोकार मंत्र गुनगुनाना ही रह गया था । संसार में पंच परमेष्ठी ही शरण है, यह उनके मन ने स्वीकार कर लिया था ।

बोधि और समाधि के खजाने प्रथमानुयोग से उन्होंने बहुत से रत्न चुन लिए थे । मुनि सुकुमाल, मुनि सुकोमल, मुनि गजकुमार, चिलाती पुत्र, सेठ सुदर्शन आदि उपसर्ग विजेता महामुनियों के चरित्र का चिंतन करके वह अपने मन के एकाग्र कर लिया करती थी । अब शरीर जबाव दे चुका था । वह पहले ही बीमारी के कारण अंदर ही अंदर खोखला हो चुका था, फिर उपवासादि के कारण दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था ।

X

X

X

छह-सात दिन से चल रहे समाधि यज्ञ की आहुति आज पूर्ण हो चुकी थी । महामंत्र णमोकार सुनते-सुनते हीरा ने प्राण त्याग दिए थे ।

शिवगौड़ा का आखिरी सहारा भी छिन गया था । अब वे अपने आत्म कल्याण का मार्ग शीघ्रता से पाना चाहते थे । पर वे करते भी क्या दो छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर जाते भी कहाँ । अब तक ता पत्नि बहिन थी, अब तो वह भी परलोक गमन कर गई ।

शिवगौड़ा किसी दृष्टि से स्वतंत्र भी थे, और किसी दृष्टि से परतंत्र भी । उनके अधिकांश बंधन स्वतः ही खुल चुके थे, लेकिन दो : हैं-नहें बालक उन्हें परतंत्र किए हुए थे ।

आत्मा की भावना सतत् बढ़ती ही जा रही थी, वे अब उन बच्चों को न तो माँ का प्यार ही दे पाते थे और न पिता का दुलार ही । वे स्वयं अपने आपको धिक्कारते कि आखिर इन नहें बालकों के साथ क्यों अन्याय हो रहा है । पर अब वे करते भी क्या.....?

जिसको संसार के स्वरूप का सम्यक् रूप से ज्ञान हो जाता है, वह हमेशा ही संसार से छूटने का प्रयास करता है । वह संसार के दुःखों से बचना चाहता है । विषय भावनाओं से उसका मन स्वतः ही हट जाता है ।

शिवगौड़ा भी संसार से किनारा करने के लिए व्याकुल थे । अब वे अधिक से अधिक समय धर्म ध्यान में देने लगे थे । चिंतन—मनन के सहारे ही अब उनका जीवन चल रहा था । जिस प्रकार से सिंह के डर से भयभीत हिरण कुलाचे भरता हुआ तेजी से भागता है, वह किसी प्रकार भी अपनी रक्षा करना चाहता है, उसी प्रकार शिवगौड़ा भी संसार रूपी भयानक सिंह से पीछा छुड़ाने के लिए उससे भागने का, छूटने का प्रयत्न कर रहे थे, वे अपनी आत्म रक्षा के लिए मुनि धर्म रूपी कवच ओढ़ने को उद्यत थे । उन्हें निजात्मा से इतना लगाव हो गया था कि वे उन नन्हें—नन्हें बच्चों को न तो कभी पर्याप्त स्नेह दे पाते और न ही प्रेम के दो बोल सुन या सुना ही पाते । बच्चे भी पिता की ऐसी स्थिति देखकर मन मसोस कर रह जाते थे ।

शिवगौड़ा को तीर्थयात्रा करने में बहुत आनंद आता था । अब तो वे अधिकांश समय तीर्थ वंदना में ही देने का प्रयास किया करते और अपने आत्म—कल्याण का रास्ता दूढ़ते रहते । वैरागी की स्थिति क्या होती है ? उसे एक वैरागी ही जान सकता है वह हमेशा खोया खोया सा रहता है, भोजन पानी भी कम करता है, घर—परिवार और संबंधियों के प्रति भी लगाव कम हो जाता है । उसे मंदिर घर से भी अच्छा लगने लगता है, तीर्थवंदना में उसे पहले की अपेक्षा ज्यादा आनंद आने लगता है । ध्यान, अध्ययन चिंतन, मनन, पूजन और वंदन ही वैरागी को एक सहारा रह जाते हैं । वैराग्य जब चरम सीमा पर पहुंच जाता है, तो उसे यह भी नहीं जचता और वह दिगम्बरी जिन दीक्षा

लेकर आत्मारोधन करना चाहता है ।

आत्म चिंतन के बाद दूसरा संबल था उन्हें तीर्थयात्रा का जिससे वह अपने मन को संतुष्ट कर लिया करते थे । अधिकांशतः वह कुंभोज बाहुबली तीर्थ की वंदना करने जाया करते थे । क्योंकि निकटस्थ क्षेत्रों में एक वह ही ऐसा क्षेत्र था, जहां पैदल आने-जाने में ज्यादा कष्टों का अनुभव नहीं होता था और जो कष्ट होते थे, उन्हें वह सहन कर लिया करते थे ।

पत्नि की मृत्यु के बाद उन्होंने कितने ही क्षेत्रों की यात्रा कर ली थी, कुंभोज बाहुबली की यात्रा के मध्य शिवगौड़ा ने नादनी मठ के भट्टारक स्वामी जिनप्पा से दीक्षा के विचार रखते हुए कहा—स्वामीजी मैं संसार से ऊब चुका हूँ । अनादि काल से न जाने किन-किन पर्याओं के दुःख भोगने के बाद यह दुर्लभ मानव तन पाया, अगर इसे पाकर भी आत्मोद्धार न कर पाया तो मानव का तन पाना ही व्यर्थ हो जाएगा ।

मेरी अब तीव्र इच्छा है, कि जैनेश्वरी दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँ । निर्ग्रथ मुद्रा धारण किये न तो आज तक किसी का कल्याण हुआ है और न हो सकता है । हे ! स्वामी जी ! आप तो मुझे सब दुःखो का नाश करने वाली निर्ग्रथ दीक्षा दीजिए । शिवगौड़ा के विचार सुनकर भट्टारक जिनप्पा जी बोले—पाटिल ! मैं तुम्हें दीक्षा अभी नहीं दे सकता....सोचों तुम्हारी संतान अबोध है...कौन है उनकी रक्षा करने वाला .....उनकी मां भी नहीं है....कि वह उन्हें सम्भाल लेगी । तुम्हारे दीक्षा लेने के बाद तुम्हारी संतान अनाथ हो जाएगी । पाटिल ! अभी तुम अपने कर्तव्य का पालन करो । जिस पौधे को लगाया है, उसे पानी दो । जब संतान योग्य हो जाए, तब दीक्षा ले लेना.....अभी तो संतान की रक्षा करना ही तुम्हारा धर्म है, कर्तव्य है । शिवगौड़ा अपनी विवशता बताते हुए बोले— किंतु स्वामी जी संतान का पालन-पोषण करने में तो बहुत समय लगेगा, उस बीच ही अगर मेरा जीवन खत्म हो गया तो..... ।

जिनप्पा स्वामी जी बोले कुछ भी है; पाटिल ! अभी तुम्हें

क्या करना योग्य है, मैंने तो वह बता दिया । मैं भी जानता हूँ कि जीवन का कुछ ठिकाना नहीं कब विदाई लेनी पड जाये इन श्वासों से, लेकिन फिर भी.....तुम्हें अपना कर्तव्य निभाने को प्रेरित करना मेरा कर्तव्य है ।

शिवगौड़ा बोले - क्या संतान को वयस्क किए, बिना दीक्षा नहीं ली जा सकती ?

जिनप्पा स्वामी बोले—ली तो जा सकती है, लेकिन कब ? जब कि संतान की रक्षा करने वाला कोई दूसरा संरक्षक हो.... । किसी दूसरे के अभाव में संतान को अनाथ की तरह छोडना कोई बुद्धिमानी नहीं है । स्वामी जी की बात सुनकर निराश और उदास मन से शिवगौड़ा के कदम घर की ओर बढ़ रहे थे । जो चरण तीव्रता से आचरण की ओर बढ़ना चाहते थे, वे भारी कदमों से घर की ओर जा रहे थे । जितनी गति वैराग्य की ओर बढ़ रही थी, उतनी ही गति घर की ओर से धीमी होती जा रही थी ।

आज पूरे दो पक्ष बाद वे स्वाध्याय सुनने हेतु ऊदगांव पहुंच पाए थे । पंडित अप्पा शास्त्री उनकी प्रत्येक परिस्थिति समझ रहे थे । अतः उन्होंने विशेष आव-भगत पूछ-ताछ करना उचित नहीं समझा ।

किसी के अतीत की दुःख भरी घटनाएं उससे कहना अथवा उससे पूछना, उसके स्मृत दुःख को स्मरण कराना ही है । बुद्धिमान कभी भी जिससे दूसरों को दुःख हो, ऐसी बात नहीं करते हैं ।

चुंकि पत्नी की मृत्यु हुए आज सत्ताईस दिन हो चुके थे, लेकिन उनके चेहरे की गंभीरता, उदासीनता ज्यों की त्यों बनी हुई थी । शायद वह उदासीनता दुःख की अपितु वैराग्य की थी । रोज की तरह णमोकार मंत्र आदि मंगलाचरण करने के बाद अपनी बात प्रारंभ करते हुए पंडित जी बोले— पाटिल ! यह शास्त्र तो दो दिन पूर्व ही पूर्ण हो गया था, दो दिन से तो इसके विशेष स्थलों का खुलासा चल रहा था । वह भी इसलिए कि कुछ विशेष तथ्य भी पकड़ में आयेंगे और

आत्मा में उसके संस्कार बैठेंगे । पंडित जी बात बदलते हुए बोले—एक दिन तुमने चारित्र्य विषयक चर्चा सुनने को कहा था.....ना ।

हाँ शिवगौड़ा बोले—

तो वह कब से प्रारंभ कर दूँ ।

जब से आप उचित समझे.....मैं तो अब घर गृहस्थी से निवृत्त सा ही हो गया हूँ, सभी जिम्मेदारियाँ खत्म हो गई हैं, लेकिन सबसे बड़ी जिम्मेदारी अभी बाकी है, जिसे निभा रहा हूँ...और वह है, उन नन्हें-नन्हें दो बच्चों की .... वह तो बेचारे..... ।

अपनी बात सुनाकर शिवगौड़ा दुःखित होगा, ऐसा सोचकर बात को बीच में ही काटते हुए पंडित जी बोले—तो, अच्छा.....है । आज से ही हम आचरण विषयक चर्चा प्रारंभ करते हैं ।

एक श्रोता की ओर दृष्टि करते हुए पंडित जी बोले— भाई ! बताओं—चर्चा श्रावक धर्म से शुरू करे अथवा मुनि धर्म से.....?

उत्तर देते हुए श्रोता बोला— पंडित जी ! अभी तक के स्वाध्याय से श्रावक और मुनि दोनों धर्म कुछ-कुछ समझ में आए हैं, लेकिन जब आप विशेष रूप से बता रहे हैं, तो चर्चा श्रावक धर्म से ही शुरू करिये, जिससे हमको श्रावक धर्म की विशेष जानकारी हों..... ।

एक अन्य श्रावक बोला—हां ! पंडित जी पहले श्रावक धर्म को समझना ज्यादा अच्छा रहेगा । हम अभी मुनि तो बन नहीं सकते, श्रावक धर्म सुनकर उसका ही अच्छी तरह पालन करें, वही ठीक है ।

कोई दूसरा श्रावक भी इसी तरह से कुछ कह रहा था । अब सभी आपस में ही बातचीत करने लगे थे

पंडित जी सभी को अपनी ओर आकर्षित करते हुए बोले—अच्छा ! तो प्रायः सभी की इच्छा यही है, कि चर्चा श्रावक धर्म से ही प्रारंभ की जाए...लेकिन एक बार पाटिल जी से भी तो पूछ लिया जाए कि चर्चा कहा से प्रारंभ की जाए ।

शिवगौड़ा की ओर देखते हुए पंडित जी बोले—क्यों भाई आपका क्या मन्तव्य है ।

शिवगौड़ा उत्तर में बोले—जो आपका और सबका मन्तव्य

हैं, वहीं हमारा मन्तव्य है, हम आप सबसे अलग थोड़े ही है ।

शिवगौड़ा की बात से सभा में एक सौहार्द सा आ गया । पंडित जी कुछ मुस्कराते हुए से बोले—लो ! भई पाटिल— जी का भी समर्थन प्राप्त हो गया । अब हम श्रावक धर्म से ही बात प्रारंभ करेंगे ।

सर्व प्रथम, श्रावक किसे कहते हैं ? हम इस बात पर चर्चा करेंगे, श्रावक शब्द का सामान्य अर्थ है सुनने वाला । जो गुरुओं के उपदेश को श्रद्धा पूर्वक सुनता है, वह श्रावक है, श्रावक शब्द तीन अक्षरों के योग से बना है—श्राव और क इसमें 'श्र' श्रद्धा का 'व' विवेक का तथा 'क' कर्तव्य का प्रतीक है ।

इस प्रकार श्रावक का अर्थ करते हुए कहा गया है कि जो श्रद्धालु और विवेकी होने के साथ-साथ कर्तव्य निष्ठ हो वह श्रावक है । श्रावक के अर्थ में उपासक, सागार, देशव्रती, अणुव्रती आदि अनेक शब्द आते हैं । गुरुओं की उपासना करने वाला होने से उपासक, अगार । घर सहित होने से सागार, गृही या गृहस्थ तथा अणुव्रत धारी होने से अणुव्रती अथवा देशव्रती कहा जाता है । व्रतों के परिपालन क्रमानुसार श्रावक के तीन भेद किये जाते हैं— 1. पाक्षिक 2. नैष्ठिक, और 3. साधक ।

पाक्षिक श्रावक का सीधा सरल अर्थ है, जो जिनेन्द्र भगवान् के पक्ष को ग्रहण कर चुका है । अर्थात् पाक्षिक श्रावक की श्रेणी में वे सभी श्रावक आ जाते हैं जो जिनेन्द्र भगवान् के पक्ष को ग्रहण करते हैं तथा जैन कुल क्रमानुसार अपना आचरण रखते हैं । यह गृहस्थ की प्राथमिक भूमिका है । इस भूमिका वाले श्रावक में सभी नैतिक गुण आ जाते हैं ।

आचार शास्त्रानुसार एक आदर्श गृहस्थ वही है, जो न्यायपूर्वक आजीविका उपार्जन करता है । गुणी पुरुषों एवं गुणों का सम्मान करता है । हितकारी और सत्य वाणी बोलता है । धर्म, अर्थ और काम रूप तीन पुरुषार्थों का परस्पर अविरोध से सेवन करता है । इन पुरुषार्थों के योग्य स्त्री, भवन आदि को धारण करता है । लज्जाशील होता है, अनुकूल आहार-विहार करने वाला होता है । सदाचार को

अपने जीवन की निधि मानने वाले पुरुषों की सेवा में सदा तत्पर रहता है । हिताहित-विचार में दक्ष, जितेन्द्रिय और कृतज्ञ होता है । धर्म की विधि को सदा सुनता है । उसका मन दया से द्रवीभूत तथा पाप भीरु होता है । उक्त विशेषताओं से भूषित व्यक्ति ही एक आदर्श गृहस्थ की श्रेणी में समाविष्ट होता है ।

इन संपूर्ण विशेषताओं के साथ एक अच्छे श्रावक बनने के लिए अष्टमूल गुणों का भी एक प्रमुख स्थान होता है । देव, गुरु और धर्म के प्रति समर्पित श्रावक को मद्य, मांस, मधु, रात्रि भोजन, पीपल, ऊमर, बड़, अंजीर, पाकर सदृश्य पंच उदम्बर फलों का त्याग, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, इन पंच परमेष्ठियों की स्तुति करना, जीव दया तथा पानी को वस्त्र द्वारा अच्छी तरह छानकर पीना यह आठ मूल गुण होते हैं । ये श्रावकों के मूल चिन्ह हैं । जिस प्रकार मूल (जड़) के शुद्ध और पुष्ट होने पर वृक्ष भी सबल और सरस होता है । उसी प्रकार उपर्युक्त नियमों से जीवन के पवित्र होने पर साधक मुक्तिपथ पर प्रगतिशील हो जाता है ।

उपर्युक्त आठों बातें अहिंसा की दृष्टि से कही गयी हैं, एक जैन श्रावक को इतने नियमों का तो अवश्य ही पालन करना चाहिए । इनके बिना वह नाम का जैनी भी नहीं कहला सकता । जैन होने के ये मूल चिन्ह हैं ।

मद्य, मांस एवं मधु तो स्पष्ट हिंसा के कारण होने से त्याज्य ही है, क्योंकि इनके सेवन में संकल्पी हिंसा होती है तथा इस प्रकार का आहार-मनुष्य की प्रवृत्ति के विरुद्ध भी है । कुछ लोग मधुमक्खियों के उड़ने/उड़ाने के बाद निकाली गई शहद खाने की सलाह देते । वे कहते हैं कि उसमें मधु मक्खियों का घात नहीं होता, अतः उसके खाने में कोई दोष नहीं है । लेकिन उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है ।

शहद का सेवन किसी भी अर्थ में निर्दोष नहीं है, क्योंकि शहद तो मधुमक्खियों का थूक है । किसी भी प्राणी के उच्छिष्ट पदार्थ का सेवन सज्जन नहीं करते । उस शहद में असंख्यात छोटे-छोटे त्रस

जीव भी पाए जाते हैं । अतः यह समस्त श्रावकों को अवश्य रूपेण त्याज्य ही है ।

बड़, पीपल, पाकर, ऊमर (गूलर), कटूमर (अंजीर) इन पांचों फलों से दूध निकलने के कारण ये क्षीर फल भी कहलाते हैं, इनके अंदर बहुसंख्या में त्रस जीव पाये जाते हैं । अतः इनका भी त्याग करना चाहिए ।

जल में अनेक त्रस जीव पाये जाते हैं । वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि दिखाई नहीं पड़ते हैं आचार्यों ने ग्रंथों में एक बूंद पानी में असंख्यात जीवों का रहना बताया है । ग्रंथों में यहां तक कहा जाता है कि यदि एक बिना छने जल की बूंद के जीव-कबूतर के बराबर आकार बना कर आकाश में उड़ें तो पूरे जम्बूद्वीप अथवा संपूर्ण विश्व में भी न समा पायेंगे । उन सभी जीवों के बचाव करने के लिए पानी को साफ, स्वच्छ, मोटे वस्त्र से छानकर पीना चाहिए । वैद्य लोग भी अस्वस्थ अवस्था में पानी गरम करके पीने को कहते हैं, उसका कारण भी यही है कि पानी गर्म हो जाने से उसमें रहने वाले कीटाणु समाप्त हो जायेंगे, और स्वच्छ पानी पीने से हम स्वस्थ भी हो जाएंगे ।

अब बात है रात्रि भोजन की तो रात्रि भोजन का त्याग भी प्रत्येक श्रावक को करना चाहिए । रात्रि में भोजन करने से त्रस हिंसा का दोष लगता है । भले ही किसी प्रकार के प्रकाश में भी आप अपने भोजन को देखते हैं, किंतु उसमें पढ़ने वाले जीवों की संख्या बहुत है, जिन्हें बचाया नहीं जा सकता । कुछ कीट-पतंग तो उसके प्रकाश में ही आते हैं और भोज्य सामग्री पर गिरते रहते हैं । अतः रात्रि भोजन में किसी भी प्रकार हिंसा से बचा नहीं जा सकता । अतः त्रस हिंसा से बचने के लिए और असंख्यात जीवों की रक्षा के लिए रात्रि भोजन का त्याग अनिवार्य है ।

रात्रि भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानिकर है । चिकित्सा शास्त्रियों का अभिमत है कि कम से कम सोने के तीन घंटे पूर्व तक भोजन कर लेना चाहिए । जो लोग रात्रि भोजन करते हैं, वे भोजन के तुरंत बाद सो जाते हैं, जिससे अनेक रोगों का जन्म होता

है । दूसरी बात यह है, कि सूर्य प्रकाश में केवल प्रकाश होता, अपितु जीवन दायिनी शक्ति भी होती है । सूर्य प्रकाश से हमारे पाचन तंत्र का गहरा संबंध है । जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल दल खिल जाते हैं, तथा उसके अस्त होने पर सिकुड़ जाते हैं । उसी प्रकार जब तक सूर्य प्रकाश रहता है तब तक उसमें रहने वाली गर्म किरणों के प्रभाव से हमारा पाचन तंत्र ठीक तरह से काम करता रहता है । उसके अस्त होने से उसकी गतिविधि मंद पड़ जाती है, जिससे अनेकों रोगों की संभावना बढ़ जाती है । अतः रात्रि भोजन का त्याग करना परमावश्यक है ।

पाक्षिक श्रावक यदि रात्रि भोजन का पूरी तरह से त्याग नहीं कर पाता तो कम से कम पान, दवा, जल, दूध आदि की छूट रखकर अन्य स्थूल आहार का तो त्याग करना ही चाहिए ।

पाक्षिक श्रावक को पंच परमेष्ठि की स्तुति, वंदना, पूजा आदि के साथ-साथ उनकी विशेष सेवा शुश्रूषा आदि भी करना चाहिए । समस्त संसार के प्राणियों के प्रति दयाभाव रखना चाहिए ।

आचार्यों ने कहा है— समस्त जीवों के प्रति मैत्री-भाव रखना चाहिए गुणी जनों के प्रति प्रमोद भाव होना चाहिए, दुःखी जीवों के प्रति सेवा अथवा कृपा भाव होना चाहिए तथा विपरीत आचरण वालों के प्रति माध्यस्थ भाव धारण करना चाहिए ।

पंडित जी आज की चर्चा को विराम देते हुए बोले—आज तो पाक्षिक श्रावक का ही विषय हो पाया.....शायद सभी की समझ में आ गया होगा । अब कल श्रावक के दूसरे भेद अर्थात् नैष्टिक श्रावक विषय पर चर्चा करेंगे । आज के विषय में जिसको जो कुछ भी अच्छा लगा हो, उसे ग्रहण कर जीवन में उतारें..... ।

बढ़ाते हुए पंडित जी कह रहे थे— “व्रतधारी श्रावक नैष्ठिक कहलाते हैं । नैष्ठिक शब्द निष्ठा शब्द से बना है । व्रतों का पूरी निष्ठा के साथ पालन करना नैष्ठिक श्रावक का लक्षण होता है । पाक्षिक श्रावक अपने व्रतों को कुलाचार के रूप में पालन करता है उसमें कदाचित् अतिचार भी लग सकते हैं ।

किंतु नैष्ठिक श्रावक निरतिचार रूप से व्रतों का पालन करता है । नैष्ठिक श्रावक की ग्यारह श्रेणियाँ होती हैं, जिन्हें ग्यारह प्रतिमाएं भी कहते हैं । साधक अपनी शक्ति को न छिपाता हुआ निचली दशा से क्रम पूर्वक उठता चला जाता है, और क्रमशः बढ़ता हुआ ग्यारहवीं प्रतिमा को भी ग्रहण कर लेता है । वे ग्यारह प्रतिमाएं क्रमशः इस प्रकार हैं— दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्त त्याग प्रतिमा, रात्रि भुक्ति त्याग अथवा दिवा मैथुन त्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरम्भ त्याग प्रतिमा, परिग्रह त्याग प्रतिमा, अनुमति त्याग प्रतिमा और उदिदष्ट त्याग प्रतिमा ।

वैराग्य की प्रकर्षता के अनुसार इन्हें इस क्रम में रखा गया है, कि धीरे धीरे इन पर क्रमशः कोई भी आरूढ़ हो सके । इन को धारण कर कोई भी अपने जीवन के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । ये ग्यारह श्रेणियाँ उत्तरोत्तर विकास को लिए हुए हैं ।

आचार्य श्री समन्त भद्रस्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है—कि प्रतिमाएं उत्तरोत्तर पूर्व गुणों के साथ बढ़ती हैं । जैसे किसी ने सातवीं प्रतिमा के व्रत धारण किये तो उसे उससे पूर्व छह प्रतिमाओं का पालन करना अनिवार्य है । कहने का मतलब है कि साधक पूर्व-पूर्व की भूमिकाओं के साथ उत्तरोत्तर भूमिकाओं में प्रवेश करता जाता है । जैसे आठवीं कक्षा में प्रवेश पाने वाले छात्र को सातवीं उत्तीर्ण करना अनिवार्य होता है अर्थात् उस कक्षा संबंधी योग्यता उसके अंदर होना अपेक्षित है वैसे ही आठवीं प्रतिमाधारी के अंदर पूर्व की सात प्रतिमाओं की योग्यता अपेक्षित है ।

अब हम पूर्वाचार्यों के अनुसार उन प्रतिमाओं का एक एक करके लक्षण कहेंगे । सभी उन्हें ध्यान से सुनकर ग्रहण कर करो

क्योंकि प्रतिमाएं हमारी आत्मोन्नति में विशेष रूप से सहायक हैं

सामान्य श्रावक अथवा पाक्षिक श्रावक के कर्तव्य और गुणों को तो हमने पूर्व में ही बता दिया है अब उसकी अगली दशा दर्शन प्रतिमा को कहते हैं—पाक्षिक श्रावक और दार्शनिक श्रावक में विशेष कोई अंतर नहीं है । वह श्रावक के आठ मूलगुणों का निरतिचार रूप से पालन करता हुआ आगे के व्रतों के पालन करने में उत्सुक रहता है, अब वह संसार शरीर और भोगों से विरक्त चित्त रहता हुआ पंच परमेष्ठी के चरणों में पूरी तरह समर्पित रहता है । भोगों के प्रति उदासीनता आ जाने के कारण वह अचार—मुरब्बा आदि पदार्थ तथा जिसमें फफूंद लगी हुई हो, जिन वस्तुओं का स्वाद बिगड़ गया हो, ऐसी वस्तुएं सेवन नहीं करता । वह मद्य, मांस मधु का त्याग तो नव कोटि से कर ही देता है, नित्य व्यवसाय का भी त्याग कर नीति और न्याय पूर्वक अपने परिवार का भरण—पोषण करता है ।

X

X

X

पहली प्रतिमा का लक्षण कहने के बाद पंडित जी बोले—दूसरी व्रत प्रतिमा का निरूपण करते हुए आचार्य श्री समंतभद्रस्वामी ने कहा है—कि व्रत प्रतिमा वाला श्रावक पूर्वोक्त मूल गुणों के साथ पांच अणुव्रतों का निरतिचार पालन करता है, तथा पंचाणुव्रतों के साथ—साथ तीन गुणव्रतों और चार “शिक्षाव्रतों” का पालन करता है । इस प्रकार व्रती श्रावक  $5+3+4 = 12$  व्रतों का निःशल्य होकर निरतिचार पालन करता है ।

दूसरी प्रतिमा का खुलासा करते हुए वे प्रथम अहिंसाणुव्रत का लक्षण बताते हुए बोले—अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए राग द्वेष पूर्वक किसी भी जीव को मन, वचन, काय से पीडा पहुंचाना हिंसा है । इस हिंसा के स्थूल त्याग को अहिंसाणुव्रत कहते हैं । जैन दर्शन में त्रस और स्थाकर के भेद से जीव दो प्रकार के बतलाये गये हैं । वनस्पति आदि स्थावरों और त्रसों की हिंसा, आरंभ उद्योग और विरोध में तो श्रावक

अपरिहार्य समझकर करता है । वह सिर्फ संकल्पी हिंसा का त्याग करता है अर्थात् वह संकल्प पूर्वक मन, वचन, काय से किसी भी त्रस प्राणी का घात अपने मनोरंजन, स्वार्थपूर्ति और शौक के लिए नहीं करता है तथा शेष तीन प्रकार की हिंसा का भी अपने विवेक से कम करने का प्रयास करता है ।

अहिंसाणु व्रत के अतिचारों पर प्रकाश डालते हुए पंडित श्री पंडित श्री अप्पा शास्त्री कह रहे थे—सावधानी पूर्वक व्रतों का पालन करते रहने पर भी अज्ञान अथवा प्रमाद वश कुछ ऐसी भूलें हो जाती हैं जो व्रतों का मलिन कर देती हैं । इस प्रकार की भूलों को शास्त्रों में अतिचार नाम से कहा गया है । अतिचार से आशय उन प्रवृत्तियों से है, जो व्रतों को दूषित करती हैं साधक को इस प्रकार के अतिचारों से बचना चाहिए ।

अहिंसाणुव्रत के पांच अतिचार हैं—छेदन, बंधन, पीडन, अतिभारा रोपण, आहार पाराणा अथवा अन्नपान निरोध । दुर्भावना पूर्वक पालतु पशु-पक्षियों के नाक कान आदि छेदना, नकैलना, नाथ देना आदि 'छेदन' है । पालतू पशु पक्षियों को इस तरह बांधना की वे हिल-डुल भी न सकें तथा विपत्ति के समय प्राणों की रक्षा करने के लिए भाग न सकें 'बंधन' है । डंडा, बेत, चाबुक आदि से बात करना—अपने—पराये पालतू पशुओं तथा परिजनों को पीड़ा पहुंचाना तथा कठोर अपमान जनक शब्दों का प्रयोग कर किसी को पीड़ा पहुंचाना 'पीडन' नाम का अतिचार है । क्षमता से अधिक बोझ लादना अतिभारारोपण है । दुर्भावनावश अपने आश्रित पशुओं एवं कर्मचारियों पर उनकी क्षमता से अधिक भार लादना उनसे अधिक काम लेना आदि सब 'अतिभारारोपण' की पर्याय है । दुर्भावना वश अपने आश्रितों के अन्नपान का निरोध करना, उन्हें जान बूझकर भूखा रखना, समय पर उनके लिए भोजन पानी की व्यवस्था न करना आहार—पारणा अथवा अन्नपान निरोध नाम का अहिंसाणु व्रत का पांचवा अतिचार है । इन अतिचारों को जान बूझकर कभी भी नहीं करना चाहिए और कदाचित् अज्ञानता वश प्रमादवश हो जाते हैं, तो गुरु चरणों में प्रायश्चित्त लेना चाहिए ।

X

X

X

सभी श्रावक उक्त उद्बोधन को ध्यान से सुन रहे थे । पंडित जी सत्य व्रत का स्पष्टीकरण करते हुए कह रहे थे—अहिंसा की आराधना के लिए सत्य की उपासना आवश्यक है । झूठा व्यक्ति सही अर्थों में अहिंसक आचरण नहीं कर सकता तथा सच्चा अहिंसक कभी असत्य आचरण नहीं कर सकता । सत्य और अहिंसा में इतना घनिष्ट संबंध है कि एक के अभाव में दूसरे का पालन हो पाना असंभव है । यह दोनों एक दूसरे के पूरक हैं ।

गृहस्थ संपूर्ण झूठ को छोड़ने में असमर्थ रहता है अतः उसके लिए स्थूल झूठ का ही त्याग करवाया गया है । जिस झूठ से समाज में प्रतिष्ठा न रहे, प्रमाणिकता खंडित होती हो, लोगों में अविश्वास उत्पन्न होता हो, किसी की जान जाती हो तथा राजदण्ड का भागी बनना पड़े, इस प्रकार के झूठ को स्थूल झूठ कहते हैं । सत्याणुव्रती श्रावक इस प्रकार के स्थूल झूठ का मन, वचन, काय से सर्वथा त्याग करता है । साथ ही वह कभी ऐसा सत्य भी नहीं बोलता । जिससे किसी पर आपत्ति आती हो । वह अपनी अहिंसक भावना की सुरक्षा के लिए हित मित और प्रिय वचनों का ही प्रयोग करता है ।

सत्याणुव्रत के पांच अतिचार हैं—परिवाद, रहोभ्याख्यान, कूट लेख क्रिया, न्यासापहार और पेशूकार अथवा साकार मंत्र भेद ।

किसी की निंदा करना अथवा किसी के साथ गाली—गलौच करना परिवाद है । दूसरों के गुप्त रहस्यों को उजागर कर देना रहोभ्याख्यान है । झूठे दस्तावेज तैयार करना, झूठे लेख लिखना, झूठी गवाही देना किसी के जाली हस्ताक्षर बनाना अथवा झूठा अंगूठा लगाना, किसी पर झूठे आरोप लगाना यह सब कूट लेख क्रिया है । दूसरों की धरोहर को हड़प कर लेना न्यासापहार है । भवन—भूमि आदि पर अवैध कब्जा भी इसी के अन्तर्गत आता है । चुगली करना पेशून्य है अथवा किसी बातों को उसके इशारे आदि से जान कर प्रकट कर

देना साकार मंत्र भेद नाम का अतिचार है ।

X

X

X

चोरी हिंसा का ही एक रूप है । अहिंसा का सम्यक् रूपेण पालन करने के लिए चोरी का त्याग भी आवश्यक है । जब ऐसी कोई चीज चोरी हो जाती है अथवा वह किसी प्रकार से ठगा जाता है तो उसबहुत मानसिक पीड़ा होती है । उस मानसिक पीड़ा के फलस्वरूप ही ही कभी-कभी हृदय घात (हार्ट अटैक) भी हो जाता है । अतः चोरी करने से अहिंसा कभी भी नहीं पल सकती है, तथा चोरी करने वाला सत्य का भी पालन नहीं कर सकता, क्योंकि सत्य और चोरी दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते ।

जिस पर अपना स्वामित्व नहीं है, ऐसी किसी की भी पराई वस्तु को बिना अनुमति के ग्रहण करना चोरी है । श्रावक स्थूल चोरी का त्याग करता है । वह जल और मिट्टी के सिवाय बिना अनुमति के भी स्वामित्व की गई वस्तु का उपभोग नहीं करता । वह मार्ग में पड़ी हुई, रखी हुई या किसी की भूली हुई, कम या अधिक मूल्य वाली किसी वस्तु को ग्रहण नहीं करता ।

अचौर्याणुव्रती उक्त प्रकार की समस्त चोरियों का त्याग कर देता है, जिसके करने से राजदण्ड भोगना पड़ता है, समाज में अविश्वास बढ़ता है, तथा प्रामाणिकता खंडित होती है । प्रतिष्ठा को षट्का लगता है । किसी को ठगना, किसी की जेब काटना, किसी का ताला तोड़ना, किसी को लूटना, डाका डालना, किसी के घर सेंध लगाना, किसी किसी की सम्पत्ति हड़प लेना, किसी का गड़ा धन निकाल लेना आदि सब स्थूल चोरी के उदाहरण हैं । श्रावक के लिए स्थूल चोरी का सर्वदा त्याग करना चाहिये । अचौर्याणुव्रत के पांच अतिचार हैं—चोर प्रयोग, चौरार्थ आदान, विलोप, हीनाधिक विनिमान और पतिरूपक व्यवहार ।

तरह-तरह के उपाय बताकर चोरी में सहायक होना, चोरी

की योजना बनाना, चोरों को प्रेरणा देना तथा चोरों की प्रशंसा करना, दूसरों से चोरी करवाना तथा चोरी का अनुमोदन करना चोर प्रयोग है । जानबूझकर चोरी का माल खरीद तथा उन्हें गिरवी रखना चोरो से संबंध बनाये रखना है, तस्करी का समान खरीदना चोरार्थ—आदान है । राजकीय नियमों 97 का उल्लंघन करना जैसे किसी की संपत्ति को छीन लेना, भूमि—भवन पर अवैध कब्जा करना, सार्वजनिक अथवा शासकीय भूमि पर अतिक्रमण कर अधिकार जमा लेना आदि क्रियाएं विलोप हैं । गैलन, मीटर आदि माप कहलाते हैं । किलो, तोला, ग्राम आदि तोल कहलाते हैं । माप तौल के साधन बाट आदि में कमती—बढ़ती रखकर व्यापार में अधिक लेने और कम देने की नियत रखना और करना हीनधिक बिनिमान कहलाता है । मिलावट करना, अधिक मूल्य की वस्तु में अल्प मूल्य की वस्तु में अल्प मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, शुद्ध वस्तु में अशुद्ध वस्तु मिलाना, नकली वस्तुओं का व्यापार करना आदि सबको प्रति रूपक व्यवहार कहा जाता है । इस प्रकार पवित्र में अपवित्र वस्तु मिलाकर अनुचित लाभ उठाना श्रावक के लिए वर्जित है । इन पांच अतिचारों से बचने का यथाशक्य प्रयास करना श्रावक का कर्तव्य है ।

X

X

X

यौनाचार के त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं । गृहस्थ अपनी कमजोरी वश पूर्ण ब्रह्मचर्य ग्रहण नहीं कर पाता । उसके लिए विवाह का मार्ग खुला है । वह विवाह करके कौटुम्बिक जीवन में प्रवेश करता है । उसके विवाह का प्रमुख उद्देश्य धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों का समान रूप से सेवन करना ही होता है विवाह के बाद वह अपनी पत्नि के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री की तरह समझता है । पत्नि भी अपने पति के सिवा अन्य पुरुषों को पिता, भाई और पुत्र की तरह समझती हुई, दोनों एक—दूसरे के साथ संतुष्ट रहते हैं । इसे ब्रह्मचर्याणुव्रत अथवा स्वदार संतोष व्रत कहते हैं ।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के भी शास्त्रों में पांच अतिचार बताए गये हैं, अन्य विवाह करण, अनग्द क्रीड़ा, विटत्व, कामतीवामिनिवेश तथा इत्वरिका गमन ।

दूसरों के विवाह कराने का व्यवसाय करना, दिन-रात उसी चिंतन में लगे रहना-जिनका विवाह करना जो अपने गृहस्थिक कर्तव्य में सम्मिलित नहीं है, उनका स्नेह अथवा लोभवश विवाह कराना अन्य विवाहकरण नाम का अतिचार है । विकृत और उच्छृंखल यौनाचार में रूचि रखना, अप्राकृतिक मैथुन करना अर्थात् यौनाचार के निश्चित अंगों के अलावा अन्य अंगों से मैथुन करना, अनंग क्रीड़ा है । काम संबंधी विभिन्न प्रकार की कुत्सित चेष्टाओं को विटत्व कहते हैं । काम की तीव्र लालसा रखना, निरंतर उसी के चिंतन में लगे रहना, कामोत्तेजक निमित्तों का संयोजन करने में ही लगे रहना, काम तीवामिनिवेश है । चरित्र हीन स्त्री-पुरुषों की संगति में रहना व्यभिचारिणी स्त्रियों के साथ उठना-बैठना, उनसे संबंध बनाये रखना इत्वरिका गमन है । श्रावक को इन अतिचारों को भी छोड़ना चाहिए ।

X

X

X

धन-धान्यादि बाह्य पदार्थों के प्रति ममत्व मूर्च्छा या आसक्ति को परिग्रह कहते हैं । मनुष्य के पास जितनी अधिक सम्पत्ति की कामना होती है उसके पास उतना ही अधिक ममत्व, मूर्च्छा या आसक्ति होती है । अपनी इसी आसक्ति के कारण आवश्यकता न होने पर भी वह अधिक से अधिक धन प्राप्त करने की कोशिश करता है । किंतु जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे-वैसे लोभ भी बढ़ता जाता है । वह अपने इसी लोभ के कारण अधिकाधिक धन संग्रह करता है । परिग्रह की दौड़ में दिन-रात बेचैन रहता है । यह लोभ और दुःख ही हमारे दुःख का मूल कारण है । धन-सम्पत्ति से सुख की कामना करना ईश्वर से आग बुझाने का, नदियों से समुद्र भरने का, नजरों से आकाश नापने का, पृथ्वी का मध्य दूढ़ने का असफल प्रयास है ।

यद्यपि मनुष्य की आवश्यकताएं बहुत सीमित हैं । उन आवश्यकताओं की पूर्ति थोड़े से प्रयत्न से की जा सकती है, किंतु आकांक्षाओं के अनन्त होने के कारण मनुष्य में और अधिक जोड़ने की भावना बनी रहती है । इच्छा तो आकाश की तरह अनन्त होती है । उनकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती । इच्छाओं का निमंत्रण ही इच्छा की तृप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है । अतः आकांक्षाओं की इस अन्तहीन परम्पराओं को देखते हुए आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें सीमित बनाने का प्रयास करना ही सच्चा पुरुषार्थ है । इसी से अहिंसा की सही साधना हो सकेगी । इसी दृष्टि से गृहस्थ अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप धन-धान्यादि बाह्य पदार्थों की सीमा बनाकर उतने में ही संतोष धारण करता है । उसके अतिरिक्त पदार्थों के प्रति कोई ममत्व नहीं रखता । इसलिए सहज ही वह अपनी अतंहीन इच्छाओं को एक सीमा में बांध लेता है, इसलिए इसे इच्छा परिमाण व्रत भी कहते हैं । परिग्रह परिमाण व्रत के भी पांच अतिचार हैं— अति वाहन अति—संग्रह, अति विस्मय, अति लोभ और अतिभार—वहन !

अधिक लाभ की आकांक्षा से शक्ति से अधिक दौड़ धूप करना, दिन रात उसी आकुलता में उलझे रहना तथा दूसरों से भी नियम विरुद्ध अधिक काम लेना 'अतिवाहन' है । अधिक लाभ की इच्छा से उपभोग वस्तुओं का अधिक मात्रा में अधिक समय तक संग्रह करके रखना अर्थात् अधिक मुनाफाखोरी की भावना रखकर अधिक संग्रह करना "अतिसंग्रह" है । अपने अधिक लाभ को देखकर अहंकार में डूब जाना तथा दूसरों के अधिक लाभ में विवाद करना, जलना, ईर्ष्या करना, हाय-हाय करना, आश्चर्य करना आदि "अतिविस्मय नामक परिग्रह परिमाण व्रत का तीसरा अतिचार है । मनचाहा लाभ होते हुए भी और अधिक लाभ की आकांक्षा करना, क्रय-विक्रय ले जाने के बांट और भाव घट-बढ़ जाने से अधिक लाभ की संभावना हो जाने पर इसे अपना घाटा मानकर संक्लेश करना "अतिलोभ" है । लोभ के वश होकर किसी पर न्याय - नीति से अधिक भार डालना, तथा सामने वाले की सामर्थ्य से बाहर काम लेना आदि अतिभार वहन नाम का पांचवां

अतिचार है । इन पांचों अतिचारों का भी त्याग श्रावक को करना आवश्यक होता है । इनका त्याग किये बिना श्रावक व्रत के अन्य गुणों पर भी गलत प्रभाव पड़ता है ।

X

X

X

पांच अणुव्रतों का कथन कर चुकने के बाद पंडित जी ने एक लंबी भूमिका बनाने के बाद गुण-व्रत की परिभाषा करते हुए कहा-जिनके पालन करने से अणुव्रतों का विकास होता है, वे गुणव्रत कहलाते हैं । गुणव्रतों की संख्या तीन है-दिग्व्रत, देशव्रत तथा अनर्थ दण्ड त्याग व्रत ।

जिसमें जीवन पर्यंत के लिए दशों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा बना ली जाती है, वह दिग्व्रत कहलाता है । लोभ के शमन करने के लिए दिग्व्रत धारण किया जाता है । क्योंकि इससे मर्यादीकृत क्षेत्र के बाहर के क्षेत्र में कितना भी बड़ा प्रलोभन हो, वह बाहर जाने का भाव नहीं रखता । अपने सीमित साधनों में ही संतुष्ट रहता है । तृष्णा की कमी हो जाने के कारण यह व्यक्तिगत निराकुलता का साधन तो है ही, विदेशी उद्योग का नियमन हो जाने से देश की सम्पत्ति और प्रतिभा भी विदेशों में जाने से बच जाती है ।

देशव्रत उसे कहते हैं जिसमें दिग्व्रत में ली गयी जीवन भर की मर्यादा के भीतर भी अपनी आवश्यकताओं एवं प्रयोजन के अनुसार आवागमन को सीमित समय के लिए नियन्त्रित किया जाता है । इस व्रत में वह सीमा बांध लेता है कि मैं अमुक समय तक अमुक स्थान तक ही लेन-देन अथवा अन्य किसी प्रकार का संबंध रखूँगा । उससे बाहर के क्षेत्र से न तो कुछ मंगाता है, न ही भेजता है, यही उसका देश व्रत है । इच्छाओं को रोकने के लिए यह सर्वश्रेष्ठ साधन है ।

बिना प्रयोजन पाप के कार्य करने को अनर्थदण्ड कहते हैं । इनका त्याग करना अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहलाता है । इस व्रत के पांच भेद हैं पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति, प्रमाद चर्या ।

बिना प्रयोजन खोटे व्यापार आदि पाप क्रियाओं का उपदेश देना पापोदेश कहलाता है । अस्त्र शस्त्रादि हिंसक उपकरणों का आदान-प्रदान करना तथा हिंसक सामग्री का व्यापार करना हिंसादान है । कोई हार जाए, कोई जीत जाए अमुक का मरण हो जाए, अमुक को लाभ हो जाए, अमुक को हानि हो जाए, बिना प्रयोजन इस प्रकार के चिंतन करने को 'अपघ्यान' कहते हैं । इन क्रियाओं में व्यर्थ ही समय नष्ट होता है तथा पाप का संग्रह होता है । अतः व्रती को इसका भी त्याग करना चाहिये ।

चित्त को कलुषित करने वाला अश्लील साहित्य पढ़ना, सुनना, तथा अश्लील गीत, नाटक, राश, संगीत आदि दुःश्रुति है । चित्त में विकृति उत्पन्न करने वाले, होने के कारण व्रती को इसका त्याग भी करना चाहिए । बिना मतलब पृथ्वी खोदना, पानी बहाना, बिजली जलाना, पंखा चलाना, आग जलाना, बनस्पति काटना-तोड़ना आदि प्रयोजन रहित और प्रदूषण फैलाने वाली क्रियाओं को प्रमाद चर्या कहते हैं । इनके अतिरिक्त दूसरों से व्यर्थ हंसी-मजाक करना, कुत्सित चेष्टाएं करना, व्यर्थ बकबाद करना तथा जिससे स्वयं को कोई लाभ न हो तथा दूसरों को व्यर्थ में कष्ट उठाना पड़े, इस प्रकार हिताहित का विचार किये बिना कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये । साथ ही भोगोपभोग के साधनों को आवश्यकता से अधिक संग्रह करना भी एक सदगृहस्थ के लिए अनुचित है । ये सब क्रियाएं भी अनर्थदण्ड के अन्तर्गत ही आती हैं ।

इन कहे हुए तीन गुणव्रतों के साथ शिक्षा व्रतों का पालन करना भी व्रती श्रावक का अनिवार्य कर्तव्य होता है । इनसे मुनि बनने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है इसलिए भी इन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं । हैं-सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि संविभाग-व्रत । व्रती इन्हें विशेष रूप से पालता है । साधु अवस्था में जिन कार्यों को विशेष रूप से करना होता है, उनका अभ्यास करना ही शिक्षाव्रत का मूल उद्देश्य होता है ।

अब इन चारों में से सबसे पहले सामायिक को समझेंगे ।

समय कहते हैं आत्मा को । आत्मा के गुणों का चिन्तन कर, समता का अभ्यास करना सामायिक है । गृहस्थ प्रतिदिन दोनों सन्ध्याओं में एक स्थान पर बैठकर समस्त पापों से विरक्त हो आत्मध्यान का अभ्यास करता है । सामायिक ध्यान का सर्वश्रेष्ठ साधन है, श्रावक के लिए मन की शुद्धता का श्रेष्ठ उपाय है । पांचो व्रतों की पूर्णता सामायिक में हो जाती है ।

सामायिक में व्रती, श्रावक, गृहस्थ, संसार, शरीर और भोगों के स्वरूप का चिन्तन कर अपने मन को उनसे विरक्त करने का अभ्यास करता है । वह विचारता है कि संसार, असार है, अशुभ है, संसार में दुःख ही दुःख है तथा वह नाशवान है परंतु इसके विपरीत मोक्ष सुख शांति का आधार और चिन्तन है । इस प्रकार अन्य अनेक भावनाओं द्वारा अपने वैराग्य को दृढ़कर समता में स्थिर होने को श्रावक का प्रयास होता है । इस अभ्यास में णमोकार मंत्र आदि पदों का बारंबार नियम से उच्चारण करना सहायक होने से वह भी सामायिक है, परंतु सामायिक में शब्दों के उच्चारण की अपेक्षा चिन्तन को ही महत्ता दी गयी है ।

दूसरा शिक्षाव्रत है—प्रोषधोपवास—प्रोषध का अर्थ होता है एकाशन, दोनों पक्षों का अष्टमी तथा चतुर्दशी को पर्व कहते हैं । पर्व के दिनों में एकाशन पूर्वक उपवास करना प्रोषधोपवास व्रत है ।

साधक प्रत्येक पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास करता है । इसके सप्तमी और त्रयोदशी को एकाशन करके जिनालय या गुरुओं के पास जाकर चारों प्रकार के आहार का त्याग करता है तथा शेष दिन धर्म ध्यान पूर्वक बिताता है । इसी प्रकार अष्टमी या चतुर्दशी को भी धर्म ध्यान पूर्वक बिताकर नवमी अथवा पन्द्रस के दिन प्रातः देव पूजन कर अभ्यागत अतिथि को भोजन कराकर अनासक्त भाव से भोजन करता है । यह प्रोषधोपवास की उत्तम विधि है । इसमें असमर्थ रहने वालों के लिए कम से कम अष्टमी और चतुर्दशी को एकाशन करने का विधान है । इस व्रत के माध्यम से पक्ष में कम से कम दो दिन एकाशन करना अनिवार्य होता है ।

उपवास के दिनों में घर-गृहस्थी और व्यवसाय-धन्धे के संपूर्ण कार्यों को छोड़कर धर्म ध्यान पूर्वक बिताना चाहिये । उपवास का अर्थ मात्र भोजन का त्याग ही नहीं है, अपितु पांचो इन्द्रियों के विषयों को त्यागकर आत्मा के पास रहने को उपवास कहते हैं । विषयों से विरक्त हुए बिना उपवास करना निष्फल है । वह तो उल्लंघन की कोटि में आता है । अतः कषाय-विषयों के त्याग के साथ-साथ आहार का भी त्याग करना उपवास कहलाता है ।

अब तीसरे शिक्षा व्रत की चर्चा करेंगे जिसका नाम है भोगोप-भोग परिमाण व्रत । भोग और उपभोग के साधनों को कुछ समय या जीवन पर्यंत के लिए त्याग करना भोगोपभोग परिमाण व्रत कहलाता है । भोजन, माला, आदि एक ही बार उपयोग में आने योग्य वस्तु को भोग कहते हैं तथा वस्त्राभूषण आदि बार-बार उपयोग में आने वाली सामग्री को उपभोग कहते हैं ।

यह भोगोपभोग परिमाण व्रत व्यक्तिगत निराकुलता एवं सामाजिक सद्भाव दोनों दृष्टियों से उपयोगी है, क्योंकि इस व्रत के हो जाने पर अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह और उपभोग बंद हो जाता है । भोग और उपभोगों के प्रति तृष्णा कम हो जाने से वृत्ती श्रावक न्याय और नीति का विचार करके ही अपना कार्य करता है अतः वह दूसरों को कष्टदायी आजीविका देने से भी बच जाता है ।

भोगोपभोग परिमाणव्रती अपने खान-पान की सात्विकता का भी विशेष ध्यान रखता है । वह मद्य, मांस, मधु और भोजन में मादकता बढ़ाने वाले पदार्थों का तो पहले ही त्याग कर चुकता है । अब वह अदरक, गाजर, मूली, आलू, प्याज, आदि जमीकंदों और वर्तमान में प्रचलित ऐसी औषधियां जिनके निर्माण का ठीक से पता नहीं चलता तथा जिनमें अशुचि पदार्थों के सम्मिश्रण की आशंका रहती है तथा पेय औषधियों का पूर्ण रूपेण त्याग कर देता है । यह भोगोपभोग परिमाण व्रती के विशेष नियम होते हैं ।

जो संयम का पालन करते हुए भ्रमण करते हैं, उनको अतिथि या साधु कहते हैं । ऐसे अतिथियों को अपने लिए बनाए गए

भोजन में से विभाग करके भोजन देना अतिथि संविभाग कहलाता है ।

ब्रती श्रावक प्रतिदिन अपने भोजन से पूर्व उत्तम, मध्यम, जघन्य तीन प्रकार के पात्रों की प्रतीक्षा करता है । मुनि उत्तम पात्र हैं, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका या ब्रती श्रावक मध्यम पात्र हैं तथा सामान्य जैन सदाचारी गृहस्थ जघन्य पात्र कहलाते हैं । तीन प्रकार के पात्रों में जो पात्र मिलते हैं, उन्हें वह श्रद्धा भक्ति पूर्वक भोजन कराता है ।

अतिथि के रूप में यदि उसे कोई मुनिराज मिलते हैं तो इसे अपना सौभाग्य समझ, श्रद्धा, भक्ति, शक्ति, उपलब्धता, दया, क्षमा और विवेक इन सात गुणों से भूषित होकर नवधा भक्ति पूर्वक उन्हें आहार देता है ।

(1) प्रतिग्रह (पड़गाहन) (2) उच्चासन (3) पाद प्रक्षालन (4) पूजन (5) प्रणाम (6) मनः शुद्धि (7) वचन शुद्धि (8) काय शुद्धि (9) आहार—जल शुद्धि यह नवधा भक्ति कहलाती है । जिसे श्रावक सम्यक प्रकार करता है ।

जैसे वह अपने सामने से किन्हीं मुनि महाराज को आहार मुद्रा में निकलते देखता है, तो बड़े हर्ष के साथ निवेदन करता है कि हे ! स्वामी नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु ! आइये ! ठहरिए ! ठहरिए ! हमारा आहार जल शुद्ध है । यदि मुनिराज उसकी प्रार्थना सुनकर ठहर जाते हैं तो वह उनकी तीन प्रदक्षिणा देता है, फिर वह अत्यन्त विनय के साथ उन्हें अपने घर में प्रवेश करने का निवेदन करता है । उसकी उक्त क्रिया को प्रतिग्रह या पड़गाहन कहते हैं । गृह प्रवेश होने के बाद उन्हें उच्चासन पर विराजमान कर सर्व प्रथम प्रासुक जल से उनके चरणों को धोकर अहोभाव से अपने मस्तक पर लगाता है । तत्पश्चात् जल, गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल इन अष्ट द्रव्यों से उनकी पूजा करता है । उसके बाद उन्हें प्रणाम कर वह निवेदन करता है कि हे स्वामी ! हमारा मन शुद्ध है, वचन शुद्ध है, शरीर से भी हम शुद्ध है हमारे द्वारा निर्मित आहार जल भी अत्यन्त शुद्ध है, कृपाकर भोजन

ग्रहण कीजिए । उसके इस निवेदन पर मुनिराज जब आहार ग्रहण करते हैं तब वह पूर्वोक्त, श्रद्धादि सातों गुणों से मुक्त होता हुआ आहार ग्रहण करते हैं तब वह पूर्वोक्त, श्रद्धादि सातों गुणों से मुक्त होता हुआ आहार दान देता है । उक्त नवधा भक्ति और सात गुणों का जोड़ सोलह होता है, इसलिए "हम सोला" कहते हैं शुद्धि के अर्थ में रुढ़ सोला का अर्थ मात्र वास्त्रदिकों की शुद्धि से न होकर उक्त सोलह प्रकार शुद्धियों से ही समझना चाहिये ।

इसी प्रकार शेष पात्रों को भी यथायोग्य श्रद्धा, भक्ति, विनय के साथ वह आहार दान देता है । वह सिर्फ आहार दान ही नहीं देता, बल्कि आवश्यकता के अनुसार औषधिदान भी देता है, समय-समय पर मुनियों को पिच्छि, कमण्डलु एवं शास्त्रादि उपकरण भी देता है । इसी प्रकार मुनियों के रहने योग्य स्थान भी बनवाकर या व्यवस्था कर स्वयं को कृतार्थ करता हैं ये सब क्रियाएं उस की अतिथि संविभाग व्रत के अन्तर्गत आती हैं । ऐसा कहा गया है कि इस प्रकार अभ्यागत अतिथि की पूजा और सत्कर्म करने से श्रावक द्वारा किये गए गृह कार्यों से अर्जित समस्त पाप धुल जाते हैं । इस अतिथि संविभाग का कथन भी पूरा हुआ । इसमें और भी बहुत कुछ समझाया जा सकता है, लेकिन समयभाव के कारण आज इसे यही समाप्त करते हैं, फिर कभी समझेंगे ।

X

X

X

दो प्रतिमाओं का कथन पूर्ण हो जाने के बाद पंडित जी आगे की प्रतिमाओं का कथन करते हुए बोले-नैष्ठिक श्रावक की तीसरी श्रेणी होती है सामायिक । इसे तीसरी प्रतिमा भी कहते हैं । इस श्रेणी में आते ही वह पूर्व गृहीत सभी व्रतों के साथ-साथ तीनों सन्ध्याओं में सामायिक करता है । अभी तक वह दिन में दो बार अपनी सुविधा के अनुसार सामायिक करता था, किंतु श्रेणी में आते ही वह तीनों सन्ध्याओं में कम से कम दो घड़ी अर्थात् एक महूर्त (अड़तालीस मिनिट)

तक सर्व संकल्प-विकल्पों को छोड़कर आत्म चिन्तन करता है । पूर्व में वह सामायिक अभ्यास रूप में करता था, अब वह नियम के साथ करने लगता है ।

चौथी प्रतिमा है प्रोषधोपवास इस श्रेणी में आने पर पर्व के दिनों में व्रती उसी विधि से उपवास करने लगता है । पर्व के दिनों में पहले कहीं गयी विधि के अनुसार उपवास के अभ्यास हो जाने के उपरान्त जब वह इन्हें व्रत रूप से करने लगता है, तब वह प्रोषधोपवासी श्रावक कहलाने लगता है ।

पांचवी श्रेणी वाला श्रावक सचित्त पदार्थों का त्यागी होता है । वह मूल, फल, साग-सब्जी आदि वनस्पति के किसी भी अंश को अग्नि अथवा अन्य प्रकार से संस्कारित किये बिना नहीं खाता । जैन धर्म की दृष्टि से वनस्पतियों में भी जीव पाए जाते हैं । जब तक ये कच्ची अवस्था में रहते हैं, तब तक सजीव रहते हैं । अग्नि से संस्कारित हो जाने पर वे अचित्त हो जाते हैं । उससे प्राणी संयम और इंद्रिय संयम दोनों पल जाते हैं, क्योंकि कच्चे फलादि वनस्पति अधिक स्वादिष्ट होने से अधिक खायें जाते हैं, जबकि उबली वनस्पति स्वाद की लिप्सा घट जाने से कम मात्रा में खाई जाती है । इसी प्रकार वह जल भी उबाल कर पीता है ।

पांचों प्रतिमाओं का पालन करते हुए साधक जब दिन में मन, वचन-काय से स्त्री मात्र के संसर्ग का त्याग कर देता है, तब वह दिवा-मैथुन विरत कहलाता है । इस प्रतिमा को रात्रि भक्ति त्याग प्रतिमा भी कहते हैं । अब वह रात्रि भोजन का मन वचन, काय से त्यागी हो जाता है । इस प्रतिमा का धारी श्रावक रात्रिभोजन की अनुमोदना भी नहीं करता है ।

पूर्वोक्त संयम के साथ में अपने मन को वश में करता हुआ साधक जब मन, वचन, काय से स्त्री मात्र का त्याग करता है, तब उसे ब्रह्मचारी कहते हैं । इस भूमिका वाला शरीर की अशुचिता को समझकर, काम से विरत हो, यौनाचार का सर्वथा परित्याग कर देता है । ब्रह्मचारी बनने के बाद वह अपने खान-पान और रहन-सहन में और अधिक

सादगी ले आता है तथा घर गृहस्थी के कार्यों से प्रायः उदासीन सा हो जाता है ।

ब्रह्मचारी बन जाने के बाद उसके अंतस् में संसार के प्रति और भी, अधिक उदासी आ जाती है, तब वह सब प्रकार के व्यापार आदि कार्यों का पूर्ण रूपेण त्याग कर देता है । हां, परिस्थिति विशेष में अपना भोजन स्वयं भी बना सकता है, कदाचित् कोई अतिथि हो, तो उसे भी भोजन करा सकता है । अपने कपड़े धो सकता है, और पूजन आदि की सामग्री भी तैयार कर सकता है । आरंभ विरत श्रावक खेती-बाड़ी, नौकर आदि सब काम छोड़कर पूर्वोपार्जित सीमित सम्पत्ति से ही अपने जीवन का निर्वाह करता है ।

पहले की आठ प्रतिमाओं का पालन करने वाला श्रावक जब अपनी जमीन-जायदाद, दुकान-मकान आदि से अपना स्वामित्व छोड़ देता है तब वह परिग्रह त्याग प्रतिमा वाला साधक कहा जाता है ।

आठवीं प्रतिमा में वह अपना उद्योग-धंधा तो पुत्रों के सुपुर्द कर ही देता है, किंतु संपत्ति को अपने अधिकार में ही रखता है । जब वह देख लेता है कि पुत्र भली-भांति इस संपत्ति को भी संभाल सकते हैं, तब वह अपनी संपत्ति अपने पुत्र या दत्तक पुत्र को पंचो के सामने सौंप देता है । अपने पास स्वयं के पहनने के वस्त्रादि योग्य वस्तुएँ ही रखता है ।

इस प्रकार नवमीं प्रतिमा में समस्त संपत्ति एवं जमीन-जायदाद से अपना ममत्व हटाकर सब कुछ पुत्रों को सौंपने के बाद जब वह देख लेता है कि अब मेरी सलाह के बिना ही पुत्रादि अपना काम-काज कर सकते हैं, तो वह घर गृहस्थी एवं व्यापार के कार्यों में किसी भी प्रकार का परामर्श देना बंद कर देता है । अब वह अत्यन्त उदासीन होकर तटस्थ भाव से रहने लगता है । वह किसी भी प्रकार की लाभ हानि में किसी प्रकार की रूचि नहीं लेता । ऐसा श्रावक घर में न रहकर प्रायः मंदिर, चैत्यालय, एकांत कमरा आदि स्थानों में ही रहता है और अपना समय स्वाध्याय, चिंतन आदि में ही व्यतीत करता

है । तथा अपने घर अथवा अन्य किसी साधर्मी बंधु का निमन्त्रण मिलने पर ही भोजन ग्रहण करता है । इसके बाद घर छोड़ने में समर्थ हो जाने पर वह अगली श्रेणी की ओर कदम बढ़ाता है ।

उद्दिष्ट त्याग, यह श्रावक की सर्वोत्कृष्ट भूमिका है । इस भूमिका वाला साधक गृह त्याग कर मुनियों के पास रहने लगता है तथा भिक्षावृत्ति से अपना जीवन बिताता है । इस प्रतिमा के दो भेद है—**क्षुल्लक और ऐलक**—

क्षुल्लक का अर्थ होता है छोटा । मुनियों से छोटे साधक को क्षुल्लक कहते हैं । यह घर छोड़कर मुनियों के पास संघ में रहता है । दिन में एक बार भिक्षावृत्ति से भोजन ग्रहण करता है तथा मुनियों की सेवा, सुश्रुषा एवं स्वाध्याय में लगा रहता है । इस क्षुल्लक के भी दो भेद होते हैं—1. एक गृहभोजी 2. अनेक गृहभोजी ।

अनेक गृह भोजी भिक्षावृत्ति करके भोजन करता है, वह श्रावकों के घर जाकर "धर्मलाभ हो" ऐसा कहता है, उसके ऐसा कहने पर यदि श्रावक उसे कुछ देते हैं तो ले लेता है, अन्यथा बिना विवाद के आगे बढ़ जाता है । इस प्रकार पांच-सात घरों में उसे जहां अपने योग्य पर्याप्त भोजन मिल जाता है, वही बैठकर किसी से पानी मांगकर, सरस, विरस, गर्म-ठण्डे का विकल्प किये बिना भोजन करता है । इसी बीच यदि कोई श्रावक विनय पूर्वक अपने यहां ही भोजन करने का निवेदन करता है, तो वह वहीं पर बैठकर भी अपने पात्र में भोजन कर लेता है । भोजन करने के बाद गुरु के पास जाकर चारों प्रकार के आहार का अगले दिन तक के लिए त्याग (प्रत्याख्यान) कर देता है ।

एक-गृह भोजी क्षुल्लक मुनियों के आहार के लिए निकलने के बाद चर्या के लिए निकलता है । श्रावकों के द्वारा विधि के साथ भक्ति पूर्वक आहार दिये जाने पर वह भोजन करता है । दोनों प्रकार के क्षुल्लक अपने तप, संयम और ज्ञानादिक का गर्व किये बिना अपना बर्तन अपने ही हाथ से साफ करते हैं । ऐसा नहीं करने पर महान् असंयम का दोष लगता है ।

ऐलक उद्दिष्ट त्यागी श्रावक का दूसरा भेद है । यह

वस्त्र के रूप में मात्र लंगोटी धारण करता है । अपने हाथ में ही अंजुली बनाकर दिन में एक बार भोजन करता है । तथा दो से चार माह के भीतर अपने सिर दाढ़ी और मूछों के बालों को उखाड़ कर केशलौच करता है । कुल्लक पात्र में भोजन करता है, कदाचित विशेष स्थिति में हाथ में भी भोजन कर लेता है, लेकिन ऐलक हमेशा ही अंजुलि बनाकर भोजन ग्रहण करता है । कुल्लक बाल कैंची से कटवाते हैं और कदाचित् केशलौच ही करते हैं । ऐलक एक मात्र लंगोटी धारण कर लेते हैं, कुल्लक लंगोट के साथ दुपट्टा भी रख लेते हैं । ऐलक मयूर पिच्छिका रखते हैं, कुल्लक के लिए पिच्छिका रखने का नियम नहीं है । यह ही इन दोनों में अंतर है । और अन्य सभी क्रियाएं समान रहती हैं । दोनों ही उदिदष्ट त्यागी उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं ।

इस प्रकार-दार्शनिक से लेकर उदिदष्ट त्याग तक नैष्ठिक श्रावक के ग्यारह भेद हो जाते हैं । स्त्री पुरुष सभी प्रतिमाओं का पालन कर सकते हैं । पुरुष श्रावक और स्त्रियों को श्राविका संज्ञा दी जाती है । ग्यारहवीं प्रतिमाधारी स्त्रियां कुल्लिका कहलाती हैं । वे अपने मात्र एक साड़ी और खण्ड वस्त्र मात्र रखती हैं, तथा पात्र में ही भोजन करती हैं । पहली से छटवीं प्रतिमा तक के श्रावक जघन्य, सातवीं से नवमी तक के मध्यम और दसवीं तथा ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं । साधक अपनी क्षमताओं को बढ़ाता हुआ ज्यों-ज्यों अपनी साधना में विकास करता है, त्यों-त्यों वह ऊपर की श्रेणियों में चढ़ता जाता है । प्रतिमाओं का उक्त क्रम जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए क्रमशः आगे बढ़ने की दृष्टि से रखा गया है । कोई भी साधक अपने दायित्वों को अच्छी तरह निर्वाह करते हुए क्रमशः इनका पालन कर कल्याण के पथ में अग्रसर हो सकता है ।

ग्यारह प्रतिमाओं के भेदों से नैष्ठिक श्रावक का कथन पूर्ण हो जाने पर पंडित जी साधक के बारे में बताते हुए कह रहे थे जीवन के अंत में मरण काल सम्मुख उपस्थित होने पर भोजन पानादि का त्याग कर विशेष प्रकार की साधनाओं द्वारा सल्लेखना पूर्वक देह-त्याग करने वाला श्रावक "साधक श्रावक" कहलाता है । सल्लेखना में क्रमशः

काय और कषायों को कृश किया जाता है समता परिणामों पूर्वक जो मरण होता है, वह सल्लेखना की कोटि में आता है ।

पंडित कुछ अन्य तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए अपनी बात को विराम देते हुए बोले— सभी सामान्य श्रावक और श्रविकाओं का इन कहे हुए व्रतों का यथाशक्ति पालन करना चाहिए ।

## ७

सम्यक् आचरण का मुख्य उद्देश्य अनादि-कालीन राग-द्वेष आदि विकारों को समूल नष्ट कर आत्मा की शुद्ध-बुद्ध ज्ञान स्वरूप अवस्था को प्रकट करना है । इसलिए श्रावक अपने "श्रावक-धर्म" संबंधी नियमों का पालन करता हुआ साधुत्व की ओर कदम बढ़ाता है । आचार्य शिरोमणि श्री समंतभद्र स्वामी ने एक साधक को चरित्र मार्ग में अग्रसर होने के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है —

मोह तिमिराप—हरणे दर्शन लाभ—दवाप्त संज्ञानः ।।

राग—द्वेष निवृत्तै, चरणं प्रति पद्यते साधुः ।।४७।।

अर्थात् मोहरूपी अंधकार के दूर होने पर साधक जब सत्य दृष्टि और यथार्थ बोध प्राप्त करता है तब वह राग द्वेष की निवृत्ति के लिए चरित्र को अंगीकार करता है । "गृहस्थ देश चारित्र को अंगीकार करता है, जबकि साधु पापों का परिपूर्ण रूप से त्याग कर संसार को समूल नष्ट कर आत्मा को स्वतंत्रता प्रदान करने वाले महाव्रतों को अंगीकार करता है ।

जो अपनी आत्मा की उपलब्धि के लिए सतत साधना रत रहता है, वह साधु है । आचरण ग्रंथों में जैन साधु को मुनि, ऋषि, मति, अनगार श्रमण, संयत, महाव्रती, अचेलक, दिगंबर, भदन्त, जिन कल्प आदि अनेक नामों से जाना जाता है । जैन धर्म के अनुसार साधु के आचरण को पालना अत्यन्त दुष्कर है । जिस साधारण व्यक्ति कभी-भी

सच्चे रूप में धारण नहीं कर सकते । इसे धारण करना तलवार की धार पर चलना है । यह हर किसी के वश की बात नहीं है । इसलिए हरेक व्यक्ति को मुनिव्रत धारण करने की अनुमति नहीं दी गयी है ।

आचार शास्त्रों में मुनि बनने की पात्रता की चर्चा करते हुए कहा गया है "संसार की असारता को अच्छी तरह समझने वाला, वैराग्यवान्, प्रकृति से शांत, दृढ-श्रद्धालु, विनम्र और विवेकशील, प्रामाणिक व्यक्ति ही मुनि धर्म अंगीकार करने के अधिकारी है । इसके विपरीत हिंसादिक कार्यों में लिप्त रहने वाला हत्या आदि का अपराधी, समाज या राष्ट्र के हितों में बाधक, देशद्रोही, कषायी, नपुंसक, व्याधिग्रस्त, पागल, मूढ और विषय-लोलुपी मनुष्य मुनिव्रत की पात्रता नहीं रखते ।" किसी भी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक विकृति से युक्त तथा जाति और कर्म से दूषित, सहवासी, और अतिवृद्ध मनुष्य को भी मुनिव्रत नहीं दिया जाता ।

मुनि बनने की पात्रता योग्य व्यक्ति को भी गुरु अथवा आचार्य अच्छी तरह देख-परख कर ही दीक्षा देते हैं । अगर उसने पूर्व से श्रावक आदि के व्रत धारण कर मुनि-धर्म का अभ्यास किया है, तब तो आचार्य कुछ ही समय में उसे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कर देते हैं और अगर उसने पूर्व में मुनि-धर्म का अभ्यास नहीं किया है, तो कुछ काल तक अभ्यास कराने के बाद उसे योग्यता प्राप्त होने पर निर्ग्रथ दीक्षा देते हैं ।

X

X

X

अब तक के आठ-दस दिनों में श्रावक धर्म की अच्छी तरह से चर्चा हो चुकी थी । श्रोताओं ने अपने अपने मन में उठने वाली सहज समस्याओं/शकाओं का समाधान पंडित जी से पाया था । पंडित जी बड़े सरल ढंग से अच्छे-दृष्टान्तों के माध्यम से आगम की कठिन से कठिन बात सरल शब्दों में श्रोताओं के सामने रखते थे । कम पढ़े हुए अथवा अनपढ़ किंतु विवेकी व्यक्ति उनकी बात को अच्छी तरह समझ

जाते थे । कुछ पढ़े लिखे व्यक्ति उठने वाली शंकाओं का विशेष मंथन और निष्कर्ष कर प्रस्तुत करते थे । लेकिन सभा पूर्णतः अनुशासित ढंग से पंडित जी के निर्देशन में ही चला करती थी ।

शंकाकारों और समाधानकर्त्ताओं में दस-बारह वर्ष से स्वाध्याय शील श्रावक शिवगौड़ा का भी एक प्रमुख स्थान था । वे एक अत्यंत आध्यात्मिक प्रकृति के गंभीर पुरुष के रूप में पहचाने जा रहे थे । श्रावक व्रतों के संबंध में इतनी लम्बी खुलासा चर्चा हुई थी, कि उनके मन में वैराग्य उत्पन्न होने से जो कुछ विषमताएं बन गई थी अब वे शांत प्राय हो गई थी । अब उन्हें गृहस्थ जीवन में भी आत्मोन्नति का एक मार्ग दिख रहा था, चूंकि उन्होंने अपने मन में सात प्रतिमाओं के व्रत सामान्य रूप से धारण कर लिए थे, किंतु मुनि बनने की उनकी उत्कृष्ट भावना दिन पर दिन मजबूत होती जा रही थी ।

उन्होंने सामान्य श्रावक के व्रत पहले ही शेडवाल की पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा में ग्रहण कर लिए थे । अब उन व्रतों का विशेषता पूर्वक-पालन करने लगे थे ।

कल ही श्रावक धर्म की चर्चाओं के विशेष स्थलों का खुलासा पूर्ण होकर, उसे विराम मिला था । आज पंडित जी मुनि धर्म की चर्चा करने के लिए उसकी पूर्व भूमिका बनाते हुए, विभिन्न प्रकार से समझाते हुए उस भूमिका को विराम ही दे पाये थे, कि एक विज्ञ श्रोता बोला-पंडितजी ! आपने जो श्रावकों के संबंध में चर्चा की, वह तो बहुत कुछ समझ में आ गई, तथा यह भी समझ में आ गया कि भट्टारक जी शुल्लक जैसे ही होते हैं पर आपने जो इतना कुछ-मुनि के बारे में बताया कुछ भी समझ में नहीं आया, कृपया कर बताइयें, कि जैन मुनि कैसे होते हैं ?

शंकाकार का प्रश्न पूछना जायज था, क्योंकि वास्तव में आज तक उसने दिगंबर जैन मुनि के दर्शन नहीं किये थे । करता भी कहीं से बेचारा, क्योंकि मुनियों का असदभाव सा ही था ।

पंडित उत्तर देते हुए बोले-वैसे तो दिगंबर जैन मुनि का कोई वेश नहीं होता, निर्वेशरहना ही उनका वेश है । किंतु बाहर से जहां

कहीं भी जन्म लेने वाले शिशु की तरह यथाजात निर्विकार मुद्रा दिखाई पड़े, जिनके सिर और दाढ़ी-मूँछों के बाल हाथ से उखाड़े गये हों तथा जिनका शरीर किसी प्रकार से संस्कारित हो। असंस्कृत न हो, हाथ में मयूर पंख से बनी पिच्छी और काष्ठ निर्मित कमण्डुल मात्र हो, इसके अतिरिक्त तिल तुष मात्र को परिग्रह न हो, समझ लीजिए वह दिगंबर जैन मुनि है। यह जैन मुनि का बाहरी चिन्ह है तथा ममत्व और आरंभ से रहित योग और उपयोग की शुद्धि पूर्वक सब प्रकार से निरपेक्ष और निरीह होकर अपने ज्ञान-ध्यान और तप में लगे रहना यह जैन साधु की अंतरंग पहचान है।

दिगंबर जैन मुनि के जीवन के मुख्य आधार होते हैं अट्ठाईस मूलगुण। वे हमेशा साधु वेश की जड़ स्वरूप इन अट्ठाईस मूलगुणों का अच्छी तरह से पालन करते हैं। पंडित जी बात पूर्ण होते ही शिवगौड़ा से बोले-पंडित जी अगर आप इन मूलगुणों का विस्तार पूर्वक व्याख्यान करे तो बड़ा अच्छा रहेगा। इससे सभी श्रोताओं को मुनियों के बारे में पूर्ण जानकारी हो सकेगी तथा कुछ प्रेरणा भी प्राप्त होगी।

पंडित जी तो पहले ही जानते थे कि शिव गौड़ा मुनि चर्या का विस्तार पूर्वक व्याख्यान अवश्य करवाएगा, क्योंकि उन्हें उनकी प्रवृत्ति मालूम थी, और अब तो वे कुछ अंशों में यह भी समझने लगे थे, कि हो न हो शिवगौड़ा मुनि मार्ग भी स्वीकार कर सकता है।

मूलगुणों के बारे में व्याख्यान करते हुए वे बोले-मुनियों के अट्ठाईस मूलगुण बताये गए हैं। पांच महाव्रत, पाँच समिति पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक, अदन्त धावन, अस्नान, भूमिशयन, एक भुक्ति स्थिति भोजन, केश लुंचन और नग्नता। इन अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करना, जैन मुनियों के लिए अनिवार्य कर्तव्य होते हैं। इनसे उनकी चर्या व्यवस्थित रहती है और वे साधना के मार्ग पर बने रहते हैं। ये मूलगुण मुनिव्रत की जड़स्वरूप हैं। इनका पालन करने पर ही मुनिधर्म सुरक्षित रह सकता है। मूलगुणों की व्याख्या करते हुए वे आगे बोले-हिंसा झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का प्रतिज्ञा पूर्वक पूर्णरूप से

परित्याग करना पांच महा व्रत कहलाता है । अणुव्रतों की अपेक्षा ये व्रत बहुत बड़े हैं । इनका पालन करना अत्यंत कठिन है । उच्च मनोबल वाले महापुरुष ही इनका पालन कर सकते हैं इसलिए इन्हें महाव्रती कहा जाता है । इसमें अहिंसा आदि का पालन अत्यंत सुक्ष्मता से किया जाता है । आध्यात्मिक जीवन के लिए इन्हें जीना अनिवार्य है ।

X

X

X

अहिंसा महाव्रत का पालन करने के लिए दिगंबर मुनि सूक्ष्म तथा वादर त्रस एवं स्थावर सभी जीवों की हिंसा का मन, वचन, काय से त्याग कर देते हैं । इस महाव्रत को धारण करने के बाद स्थावर जीवों में न तो पृथ्वी खोदते हैं, न ही अग्नि सुलगाते और तापते हैं । कच्चे पानी तथा अग्नि आदि को छूते भी नहीं हैं सुविधा के लिए, पंखा, सिगड़ी आदि का भी उपयोग नहीं करते । फल-फूल घास-पात आदि किसी भी प्रकार की वनस्पति का छेदन-भेदन आदि नहीं करते । यहां तक कि उसके स्पर्श से भी बचने का प्रयास करते हैं ।

अहिंसा महाव्रत का अच्छी तरह पालन करने के लिए वे हरी घास युक्त भूमि पर नहीं चलते । त्रस जीवों के साथ-साथ सूक्ष्मतम जीवों का भी घात न हो, इसका ध्यान रखते हुए सावधानी पूर्वक उठते बैठते हैं । उनकी संवेदनशीलता अत्यंत व्यापक होती है । वे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करते जिससे किसी भी प्राणी को कष्ट पहुँचता हो ।

उक्त अहिंसा महाव्रत को सम्यक् तथा पालन करने के लिए वे मन पर नियन्त्रण बनाये रखते हैं । वाणी पर भी अंकुश रखते हैं । वे निष्ठुर और कर्कश वचन न बोलते हुए पूर्ण सावधानी से क्रियाएं करते हैं तथा प्राकृतिक प्रकाश में दिन में एक बार ही भोजन लेते हैं ।

मुनि हमेशा हित, मित, प्रिय बचनों का ही प्रयोग करते हैं । वे सदा निर्दोष, अकर्कश, असंदिग्ध और स्पष्ट वचन ही बोलते हैं । कषायों से प्रेरित होकर, जानबूझकर, अथवा अज्ञानवश प्रयोग किये

जाने वाले बंधन दोष मुक्त होने से त्याज्य हैं इसी प्रकार से संदिग्ध अथवा अनिश्चय दशा में निर्णय रूपवाणी का प्रयोग भी नहीं करते । पूर्ण रूप से निश्चित हो जाने पर वाणी बोलते हैं वे सत्य, मृदु और निर्दोष भाषा में ही बोलते हैं । वे विचार व विवेक पूर्वक संयमित, संतुलित और सत्य भाषा का ही प्रयोग करते हैं ।

क्रोध के आवेग में लोभ-लालच में फंसकर, भयवश एवं हंसी-मजाक में, मुख से असत्य वाणी निकलने की संभावनायें रहती हैं अतः वे क्रोध, लोभ भय एवं व्यर्थ की हंसी मजाक का त्याग करते हैं, तथा सोच-समझकर विवेक पूर्ण वचनों का ही प्रयोग करते हैं ।

किसी की बिना दी हुई वस्तु को मुनिराज कभी-भी ग्रहण नहीं करते । वे जल, मिट्टी और तृण जैसी वस्तु भी बिना अनुमति के ग्रहण करना चोरी समझते हैं । किसी की गिरी हुई, भूली हुई या रखी हुई अल्प अथवा अधिक मूल्य की वस्तु को छूना तक निषिद्ध मानते हैं ।

अचौर्य महाव्रत की स्थिरता और सुरक्षा के लिए वे जिसमें कोई नहीं रहता ऐसे गिरि, गुफा, आदि शून्य स्थानों में ही आवास करते हैं । दूसरों के द्वारा छोड़े हुए मकान, जिसका कोई स्वामी न हो, वहीं ठहरते हैं । जिस स्थान पर वे ठहरते हैं उसमें निजत्व का भाव नहीं रखते तथा कोई दूसरा आकर उसमें ठहरना चाहे तो रोकते भी नहीं हैं । भिक्षावृत्ति का उचित ध्यान रखकर आहार ग्रहण करते हैं तथा अपने उपकरणों में तेरे-मेरे का भाव न रखकर अन्य साधुओं से विवाद आदि भी नहीं करते । मुनि राज हमेशा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं इस महाव्रत का पालन करने वाले साधु के लिए अब्रह्म से मुक्त रहना अनिवार्य है । उनके लिए मन, वचन व काय तथा कृत, कारित अनुमोदना से अब्रह्म का त्याग बताया गया है । यहीं नव कोटि ब्रह्मचर्य अथवा ब्रह्मचर्य महाव्रत कहलाता है ।

यौनाकांक्षा समस्त अधर्मों का मूल है तथा महा दोषों का प्रथम स्थान कहा गया है इससे अनेक प्रकार के पाप उत्पन्न होते हैं । हिंसादिक दोषो एवं कलह तथा संघर्ष का जन्म होता है । यह सब

अच्छी तरह जानकर मुनि अब्रह्म तथा उसके प्रति आकर्षण बढ़ाने वाले साधनों से हमेशा दूर रहते हैं ।

ब्रह्मचर्य महाव्रत की रक्षा एवं दृढ़ता के लिए वे स्त्रियों से राग पूर्वक चर्चा नहीं करते, न ही उनमें राग बढ़ाने वाली कथाओं को सुनते हैं । दुर्भावना पूर्वक उनके अंगोपांगो का अवलोकन भी नहीं करते । इसी प्रकार पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण भी नहीं करते तथा गरिष्ठ, उत्तेजक और कामोदीप्त भोज्य पदार्थों का सेवन एवं अपने शरीर के संस्कार का भी सर्वथा त्याग करते हैं ।

जैन साधु के लिए परिग्रह का त्याग अनिवार्य है । बाह्य पदार्थों का ममत्व मूलक संग्रह परिग्रह कहलाता है । यह परिग्रह ही हमारे दुःख का मूल कारण है । मनुष्य की सारी दौड़ धूप, धन अर्जन, रक्षण और संवर्धन के लिए होती है । बाह्य पदार्थों के प्रति हमारी आसक्ति ही अशांति का मूल कारण है ।

इसलिए पूर्ण रूप से निर्द्वन्द्व और अविचन रहकर विचरण करने वाले साधु अपने मास तिल तुष मात्र भी परिग्रह नहीं रखते । वे अपने शरीर से ममत्व छोड़कर नग्न दिगंबर रूप धारण करते हैं मयूर पंखों से बनी हुई पिच्छी अवश्य रखते हैं, वह संयम भी की रक्षा के लिए । शुद्धि के लिए कमण्डुल और अध्ययन के लिए शास्त्र भी रखते हैं, मात्र संयम के साधन के रूप में उसका उपयोग करते हैं । आसक्ति ही हमारी आन्तरिक ग्रंथि है, इस ग्रन्थि के खुल जाने के कारण जैन मुनि निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं ।

संसार में अनेक प्रकार के विषय हैं । उनमें से कुछ मनोज्ञ अर्थात् मन को अच्छे लगने वाले होते हैं और कुछ अमनोज्ञ अर्थात् बुरे अरुचिकर लगने वाले होते हैं । मनोज्ञ विषय मिलने पर रज बढ़ता है और अमनोज्ञ मिलने पर द्वेष बढ़ता है ।

राग द्वेष के कारण ही उनमें संचय और त्याग की भावना आती है । इसलिए जैन मुनि अपरिग्रह महाव्रत की रक्षा के लिए मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द रूप पांचो इन्द्रियों के विषयों में राग द्वेष भाव का त्याग कर देते हैं जिससे कि उनके ग्रहण

और त्याग का ही विकल्प समाप्त हो जाता है तथा अपरिग्रह महाव्रत की रक्षा का अच्छी तरह पालन होता है ।

X

X

X

पाँच महाव्रतों की अत्यंत स्पष्ट व्याख्या करने के बाद पंडित जी पांच समितियों का वर्णन करते हुए कह रहे थे—समिति का अर्थ है प्रवृत्ति गत सावधानी अथवा सम्यक् प्रवृत्ति ही समिति है । मुनि महाराज प्राकृतिक प्रकाश में चार हाथ भूमि को देखकर शुद्ध और निर्जन्तुक भूमि में ही विहार करते हैं । यह उनकी “ईर्या समिति” कहलाती है ।

वे निंदा चापलूसी आदि दूषित भावनाओं को त्याग कर सदैव संयत, नपी—तुली, संत्य, प्रिय और हितकारी वाणी का ही प्रयोग करते हैं । यह उनकी “भाषा समिति” कहलाती है । वे दिन में एक बार सदाचारी श्रावक के यहाँ शुद्ध, सात्विक आहारलोभ रहित, भिक्षावृत्ति से छियालीस दोषों को टालकर ग्रहण करते हैं । यह “एषणा समिति” कहलाती है । ज्ञान और संयम की रक्षा के लिए वे जो उपकरण अपने पास रखते हैं, उनको उठाने रखने में पूर्ण सावधानी रखते हैं, किसी भी वस्तु को उठाने रखने के पूर्व उस स्थान का निरीक्षण कर कोमल पिच्छिका से परिमार्जन करते हैं । यह उनकी “आहार”—निक्षेपण” समिति कहलाती है । अपने मलमूत्र का त्याग दूर एकांत, विस्तृत, सूखे एवं जन्तु रहित ऐसे स्थान पर करते हैं जहाँ किसी को आपत्ति न हो । इसे “व्युत्सर्ग समिति” कहते हैं ।

जैन मुनि चक्षु आदि पांचों इन्द्रियों पर नियंत्रण रखते हैं तथा इन्द्रिय विषयों की ओर आकृष्ट होकर इष्ट—अनिष्ट पदार्थों में राग—द्वेष नहीं करते । अपने—अपने विषयों में वह किसी भी इन्द्रिय को नहीं जाने देते, यह पंचेन्द्रिय निरोध नामक पांच मूलगुण कहलाते हैं ।

दिगंबर वेश धारी, निर्ग्रथ साधु हमेशा सामायिक, प्रतिक्रमण, स्तुति, बंदना, प्रत्याख्यान और कयोत्सर्ग रूप छह अवश्यकों का पालन

करते हैं । ये छह कार्य इन्हें अवश्य करने होते हैं, इसलिए उन्हें आवश्यक संज्ञा दी गई है ।

संपूर्ण इष्ट-अनिष्ट पदार्थों के प्रति समता भाव धारण कर आत्मकेन्द्रित होना सामायिक है । इसे समता भाव भी कहते हैं । जैन मुनि समस्त राग-द्वेष मोह आदि विकारी भावों से दूर होकर, लाभ, अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण, शत्रु-मित्र, कांच कंचन, तथा मरघट और मकान में समभाव धारण कर सभी प्रकार की पापात्मक प्रवृत्तियों से दूर हो जाते हैं । यह समता ही साधुत्व का कवच है । चौबीस तीर्थंकरों के गुणों का बखान करना स्तुति है । अरहंत, सिद्धों की प्रतिमा को एवं आचार्य आदि को मन-वचन, काय से प्रणाम करना बंदना है । स्वकृत अपराधों का स्वीकृति पूर्वक शोधन करना प्रतिक्रमण है । प्रतिक्रमण का तात्पर्य है-पीछे हटना । किसी दोष के हो जाने पर साधु निन्दापूर्वक उस दोष को निःसंकोच स्वीकार कर पुनः विशुद्ध चारित्र्य धारण करते हैं । भविष्य में लग सकने वाले दोषों से बचने के लिए प्रत्याख्यान करते हैं । शरीर का ममत्व त्याग कर पंच परमेष्ठियों का स्मरण करना और निजात्म रूप में लीन होना कायोत्सर्ग है । दिगंबर जैन मुनि दोनों समय अर्थात् दिन व रात्रि में इन्हें अवश्य करते हैं । सामायिक आदि साधु के नित्य कर्म हैं ।

पंचेन्द्रिय संघ एवं षडावश्यक कर्म को विराम देते हुए, अब वे मुनियों के सात विशेष गुणों की व्याख्या करते हुए कह रहे थे, कि मुनियों के सात विशेष गुणों में पहला है अस्नान अर्थात् स्नान नहीं करना शरीर से ममत्व रहित होने के कारण वे स्नान भी नहीं करते हैं, न ही किसी प्रकार से अपने शरीर का संस्कार करते हैं । इतना होने पर भी उनके शरीर से दुर्गंध नहीं आती, क्योंकि दिगंबर मुद्रा होने के कारण वायु और धूप से उनके शरीर की शुद्धि होती रहती है ।

सच्चे जैन साधु दातौन, मन्जन आदि से दन्त धावन भी नहीं करते । भोजन करने के समय ही श्रावक के यहां मुख शुद्धि कर लेते हैं । यह उनका अदन्त धावन गुण है । दिगंबर साधु गद्दे, तकिया, अथवा अन्य किसी प्रकार की शैय्या पर शयन नहीं करते, अपितु अपने

स्वाध्याय, ध्यान, एवं पद विहार से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करने के लिए, भूमि, शिला, लकड़ी के पाटे, सूखे घास अथवा चटाई आदि पर ही विश्राम करते हैं । यह दिगंबर मुनियों का भूमि शयन नाम का विशेष गुण कहलाता है ।

स्थिति भोजन नाम के विशेष गुण का पालन करने के लिए वे दिन में एक बार खड़े होकर ही भोजन करते हैं । मुनि शरीर को एक गाड़ी की तरह समझते हैं । उसके सहारे ही वे अपनी संयम यात्रा को पूर्ण करते हैं । जिस प्रकार गाड़ी को चलाने के लिए उसमें औगन (ग्रीस) लगाना, तेल डालना आवश्यक होता है, उसी प्रकार शरीर रूपी गाड़ी को चलाने के लिए वे चौबीस-घंटे में एक बार खड़े-खड़े अपने हाथों को ही पात्र बनाकर गोचरी वृत्ति से आहार करते हैं गाय जिस प्रकार घास डालने वाले व्यक्ति पर थोड़ी भी नजर न डालकर अपने आहार को लेती है, उसी प्रकार जैन मुनि भी देवांगनाओं के समान सुंदरियों के द्वारा भक्ति पूर्वक आहार देने पर भी, निर्मल मनोवृत्ति से भोजन करते हैं । उनकी आहार चर्या को भ्रामरी वृत्ति भी कहा गया है । जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों की पीड़ा पहुँचाएँ बिना ही उनका रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार जैन मुनि की देवांगनाओं के समान सुंदरियों के द्वारा भक्ति पूर्वक आहार देने पर, निर्मल मनोवृत्ति से भोजन करते हैं । उनकी आहार चर्या को भ्रामरी वृत्ति भी कहा गया है । जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों को पीड़ा पहुँचाएँ बिना ही उनका रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार दिगंबर साधु भी श्रावक को तनिक भी पीड़ा पहुँचाये, बिना आहार ग्रहण करते हैं । वे साधु रूखा-सूखा, सरस-विरस, ठंडा-गर्म जैसा भी भोजन मिलता है, शान्त भाव से ग्रहण करते हुए अपने गुणों को वृद्धिगत करते हैं ।

दिगंबर मुनि दीनता पूर्वक आहार नहीं लेते । गृहस्थ जब श्रद्धा-भक्ति से युक्त होकर "नवधा भक्ति" पूर्वक उन्हें आहार का निवेदन करता है तब वे शुद्ध सात्विक अपनी तपश्चर्या में सहायक आहार खड़े होकर अपने पात्र में ही ग्रहण करते हैं । भोजन के काल में वे किसी से किसी भी प्रकार की याचना नहीं करते, बल्कि जिस

प्रकार भी भोजन मिलता है, उससे ही अपनी बुभुक्षा शांत करते हैं, वे कभी विषम परिणाम नहीं बनाते ।

मुनिराजों का एक विशेष गुण केशलौच करना भी होता है । अपने हाथों से ही अपने बालों को उखाड़ना केशलौच कहलाता है । जैन मुनि दो माह से चार माह के भीतर अपने हाथों से सिर और दाढ़ी-मूँछ के बाल उखाड़कर केशलौच करते हैं । केशलौच करने का मुख्य उद्देश्य शरीर के प्रति निर्ममत्व एवं स्वाधीनता की भावना को बल पहुंचाना है । बाल बढ़ाकर रखने पर उनमें जुएं, लीख आदि जन्तु हो जाते हैं । नाई आदि से कटवाने पर दूसरों से याचना करने का प्रसंग प्राप्त होता है । इसलिए मुनि अपने बालों को अपने हाथों से उखाड़ कर अलग कर देते हैं । इस क्रिया में शरीर से निर्ममत्वपन स्पष्ट हो जाता है । खरे खोटे साधु की पहचान भी हो जाती है ।

पंडित जी की बात पूर्ण हुई ही थी, कि एक विज्ञ श्रोता अपनी बात प्रस्तुत करते हुए बोला—पंडित जी आपने जिस प्रकार विभिन्न शास्त्रों के माध्यम से मुनियों की चर्चा की, वैसे मुनि तो आज एक भी नजर नहीं आते और जो दो-चार नजर आते हैं, वे भी आहार आदि के समय श्रावक के घर कपड़ा लपेट कर पूर्व निश्चयानुसार जाते हैं, क्या पूर्णता निर्ग्रथ रहकर साधना करना अशिष्टता है, जो साधुओं को किन्हीं परिस्थितियों वश यह प्रक्रिया अपनानी पड़ रही है ।

पंडित अप्पा शास्त्री समाधान करते हुए बोले—साधु को किसी भी स्थिति में वस्त्रादि अपने शरीर पर नहीं डालने चाहिये, यह तो उनके आचरण के बिल्कुल विपरीत है । दिंगम्बर साधुओं का वस्त्र तो दिशायें ही हैं । कुछ लोग उनकी इस नग्नता को अशिष्टता, असभ्यता मानते हैं, लेकिन नग्नता अशिष्टता नहीं, यह तो मनुष्य की आदर्श स्थिति है । मनुष्य का प्राकृतिक रूप ही दिंगबर है । वस्त्र तो विकारों को ढाकने का साधन है । जैसे जन्म लेते समय बालक नग्न रहता है उस क्षण उसके अन्तस् में किसी प्रकार का विकार नहीं होता तथा उसे देखने वालों के मन में भी कोई वासना या विकार नहीं आता । जैसे-जैसे उसके अन्दर विकार आने लगते हैं, वह वस्त्र धारण करने

लगता है । साधु वस्त्रों का त्याग कर के अपने यथार्थ रूप को धारण करते हैं, अतः इसमें अशिष्टता जैसी कोई बात ही नहीं है । वस्तुतः किसी बाह्य रूप या क्रिया की शिष्टता एवं अशिष्टता का निर्णय भीतरी प्रयोजन की निर्मलता या अपवित्रता पर निर्भर करता है । आन्तरिक के मलिन होने पर ही उसकी प्रेरणा से किया गया कार्य अशिष्टता के अन्तर्गत आता है । इस प्रकार दिग्बरत्व तो विकारों पर विजय पाने का साधन है ।

हाँ ! जो साधु यदा-कदा वस्त्र धारण कर लेते हैं, वह कदापि सच्चे साधुओं का आचरण नहीं हो सकता, चूँकि वह किन्हीं परिस्थितियों वश नग्न विहार करते हैं, लेकिन कुछ भी परिस्थिति हो दिग्बर साधु के लक्षण तो जो हैं सो हैं । पूर्वाचार्यों द्वारा कहे गये लक्षणों युक्त साधु कब मिल पायेंगे ।

पंडितजी और श्रोताओं को कहाँ मालूम था, कि दिग्बरत्व को पुनःजीवित करने वाला उनके ही बीच में बैठा है । कौन जानता था कि अंकली गाँव से प्रकट हुआ दीप सारे देश में धर्म का प्रकाश फैलाएगा, आज वह मंद ज्योति से प्रज्वलित हमारे बीच में ही विद्यमान है ।

८

ज्ञान समान न आन जगत में, सुख को कारन ।

यह परमामृत जन्म जरा, मृतु रोग निवारन ॥

इन दो पंक्तियों में आगम के अभ्यास का फल दर्शाते हुए, एक रहस्य को कवि ने खोला, उन्होंने आगमाभ्यासी को यह बताया है कि—

ज्ञान ही सुख का मूल है, ज्ञान ही दुःख का फूल ।

राग रहित अनुकूल है, राग सहित प्रतिकूल ॥

शायद इन पक्तियों में आचार्य श्री कुंद-कुंद की गाथा का ही भाव उतारा गया है, जो कि उन्होंने दर्शन पाहुड में कही है, वह इस प्रकार है—

जिण चयण मोसह मिणे, विसय सुह विरेयणं अमिदभूदं ।  
जर मरण वाहि हरणं खय करणं, सत्व दुक्खाणं ॥

अर्थात् यह जो जिनेन्द्र भगवान के है, वे अमृत के समान हितकारी और विषय रूपी सुखों का विरेचन कराने के लिये औषधि के समान है । जन्म, जरा, मृत्यु रूपी ब्याधि का नाश तथा समस्त दुःखों का क्षय करने वाले हैं ।

वास्तव में मनोयोग पूर्वक जो जिनवाणी का स्वाध्याय करता है, उसे एक नई ज्योति प्राप्त होती है, जिसे वह अपने अंधेरे जीवन में लाकर प्रकाश प्राप्त करता है और फिर उसके ही सम्यक् प्रकाश में एक ऐसे पथ पर बढ़ने का प्रयास करने लगता है और बढ़ता भी है, जिस पर कि वह आज तक नहीं गया था । मनोयोग पूर्वक स्वाध्याय करने से एक आनंद की उपलब्धि होती है जो अकथनीय होता है ।

ज्ञान ही वह वस्तु है, वह प्रकाश या पदार्थ है, जो व्यक्ति को उसके स्व स्थान पर पहुंचा देता है । ज्ञान के अभाव में ही प्राणी भव की भटकन में पड़ा रहता है । ज्ञानी तो भव की भटकन जहां से उत्पन्न हो रही थी, उन्हीं जड़ों को काटने में जुट जाता है, और एक दिन पूर्ण रूप से उन्हें काट देता है । जड़ें—खोखली होते ही भव रूपवृक्ष समूल उखड़ कर नष्ट हो जाता है और अब वह पूर्ण स्वतंत्र हो अपने आनंद को प्राप्त करता है, स्वधाम को प्राप्त करता है ।

X

X

X

आचार्य श्री पूज्य पाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है—

यथा यथा समायाति संवित्तो तत्त्व मुत्तमम् ।

तथा तथा न रोचन्ते विषया सुलभा अपि ॥

जैसे जैसे उत्तम तत्व रूप आत्मा का अनुभव होने लगता है वैसे-वैसे आसानी से प्राप्त होने वाले विषय भोग भी उस ज्ञानी को नहीं रुचते, उसे अब विषय भोग अच्छे न लगकर निज आत्मा में ही रस आता है, अब वह हमेशा अंतर्मुख रहता है ।

यही स्थिति थी, शिव गौड़ा की इन डेढ़ दो महिनों से चल रही चारित्र विषयक चर्चाओं से सम्पूर्ण मुनि और श्रावक चर्चा का विषय तो स्पष्ट हुआ ही था साथ ही कितने ही श्रोताओं को व्रतादि ग्रहण करने की प्रेरणा भी मिली थी ।

शिवगौड़ा ने सम्पूर्ण चर्चा को बड़े गौर से सुना था, अब वे उसे जीवन में उतारने के प्रयास में थे, वे मुनियों के मूलगुणों से लेकर सल्लेखना तक की सम्पूर्ण क्रियाओं को आगम के माध्यम से जान चुके थे बीच-बीच में मुनियों की विशेष कर्म निर्जरा के कारणभूत दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परिषह जय, तीन गुप्तियाँ तथा बारह प्रकार के तप आदि संवर और निर्जरा के भेद प्रभेदों का खुलासा हुआ था ।

सम्यक् दर्शी दृष्टि, संसार से विमुख हो जाती है, वे अपने मातृहीन बच्चों को पिता का प्यार भी न दे पा रहे थे, उनके व्यवहार में भी गंभीरता और उदासीनता ही नजर आती थी । राग, माधुर्य और स्नेह तो कब का कम हो चुका था । दिनों दिन बढ़ती हुई धर्म भावना के कारण अब वे नित्य ही एकासन करने लगे और साथ ही पर्वों के दिनों में उपवास भी करते थे । कई बार तो वे दो-दो उपवास भी कर लिया करते थे, फिर भी वे सन्तुष्ट न थे, दीक्षा के भाव अत्याधिक प्रबल हो रहे थे ।

अब तो वे संपूर्ण मुनि धर्म को मनोयोग पूर्वक समझ चुके थे । उन आगम के तथ्यों पर अपने आपको कस कर देख चुके थे, वह पा चुके थे, कि वे अवश्य ही मुनि धर्म को सही रूप से निभाने में सक्षम हो सकेंगे । किंतु उनके कोमल पुष्प पुण्य जैसे दो बालक, उनकी साधना में बाधक थे कभी-कभी उन्हें लगता, शायद मैं इनके प्रति

अन्याय कर रहा हूँ। मैं न तो इन्हें पिता का प्यार ही दे पा रहा हूँ और न ही माँ का दुलार, किन्तु वे विवश थे, उनका मोहममत्व उन बच्चों से भी हट चुका था। बारह भावनाओं के चिन्तन ने उनके अंदर प्रज्वलित हुई वैराग्य रूपी अग्नि को चारों ओर फैला दिया था, उसने अधिकांश राग द्वेष, मोह आदि को झुलसा दिया था।

जब वैराग्य पद की ओर बढ़ते चरण रूकने से विवश हो गये तो अब वे उन बच्चों के बारे में सोचने लगे, आखिर इनके साथ क्या किया जाय। इन्हें निःसहाय छोड़कर आत्म कल्याण के मार्ग पर बढ़ जाना भी तो ठीक नहीं है। और फिर इनका क्या होगा। कौन सम्हालेगा इन्हें? आदि-आदि न जाने उनके मन में कितने प्रश्न उठा करते थे पर वे करते भी क्या और मन मसोस कर उसे इस बात पर राजी करते कि जब यह बालक कुछ बड़े जो जायेगे तब.....। लेकिन उनका अन्तस् यह कब स्वीकार कर सकता था, वह दूसरे समय ही बात रख देता था, कि क्या आपको विश्वास है कि इनके योग्य होने तक आप जीते रहेंगे।

प्रत्येक प्रश्न का एक उत्तर अवश्य होता है, प्रत्येक घर का एक द्वार अवश्य होता है, प्रत्येक रोग का एक निदान अवश्य होता है, प्रत्येक मनुष्य का एक गुण अवश्य होता है। उसी प्रकार प्रत्येक वैचारिक शंका का एक समाधान अवश्य ही होता है। जब शिवगौड़ा लगातार कई दिनों तक अपने बच्चों के संरक्षण और अपने आत्म रक्षण के बारे में सोचते रहे, तो उनके मन में एक कुछ योग्य और विचार आया, उन्होंने अपने दोनों नन्हें बच्चों को साथ लिया, और चल पड़े उस गांव की ओर, जहाँ उनकी बहिन रहा करती थी...कदम बढ़ रहे थे और तेजी से बढ़ते ही जा रहे थे।

X

X

X

रास्ता तय कर वे वहाँ पहुंच चुके थे जहाँ उनकी बहिन आरू रहा करती थी। उनके गांव में प्रवेश करते ही किसी ने उनके

आने की सूचना उनकी बहिन तक पहुंचा दी । बहिन भाई के आने का समाचार पाकर प्रसन्न हुई, क्योंकि बड़े अरसे से वह अपने भाई से न मिली थी ।

वह तुरंत ही भाई की अगवानी के लिए बाहर आई, भाई के साथ उन दो बच्चों को देख बड़ी प्रसन्न हुई, उसने झट से उन दोनों बच्चों को सम्हालते हुए उन्हें प्यार देती हुई भाई को अंदर ले गयी ।

बहिन के इस व्यवहार से शिवगौड़ा को कुछ संतुष्टि प्राप्त हुई । वे अंदर पहुंचे बहिन बोली—बैठो ! भैया ।

शिवगौड़ा बोले— बहिन आज मैं बैठने नहीं अपितु तुम्हें कुछ सौपनें आया हूँ ।

बहिन बोली— भैया आपने पहले ही इतना कुछ दिया है, कि सम्हाला नहीं जाता, धन—दौलत, मकान—दुकान, खेती—किसानी, अब मुझे किस बात की कमी है, सब कुछ तो दिया है तुमने ।

शिवगौड़ा बोले— बहिन ! जो तुम समझ रही हो, अब वह कुछ नहीं सौंपूंगा तुझे वह तो मैं अधिकांश बाँट चुका हूँ ।

—तो फिर क्या सौपना चाहते हो भैया ? कुछ शंकास्य दृष्टि से बहिन बोली ..... ।

—जो मैं सौंपना चाहता हूँ क्या तुम उसे संहर्ष स्वीकार कर सम्हाल सकोगी .....शिवगौड़ा बोले ।

—कहो तो भैया.....वया सौंपना चाहते हो, मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर सम्हालूंगी ।

—बहिन ! वह और कुछ नहीं, वह तो मेरी यही अमानत है, जो अभी तुम्हारे हाथों में तुम्हारा प्यार पाकर महीनों बाद भी मुस्कुराती हुई नजर आ रही है..... शिवगौड़ा बोले ।

—क्या भैया आप दूसरी शादी नहीं करेंगे ।

—नहीं..... ।

—इन बच्चों की खातिर भी नहीं ।

—नहीं..... ! अनादि काल से मैंने बहुत शादियाँ की लेकिन एक भी स्थित न रही । अब मैं वह शादी करना चाहता हूँ, जिससे कि

मुझे कभी दूसरी शादी न करना पड़े ।

—भाई ! मैं कुछ समझी नहीं, आप आखिर क्या कहना चाहते हो ?

—बहिन! मैं विवाह नहीं करना चाहता, मैंने सांसारिक विवाह करके देख लिया । अब शिव रमणी के वरण के प्रयास में हूँ, सिद्ध निवास की ओर जाने के प्रयास में हूँ, मैं वहां जाना चाहता हूँ जहां से कभी वापिस नहीं आना पड़ता है, जहां मात्र सुख ही सुख है ।

—भैया, जरा स्पष्ट कहो आप क्या कहना चाहते हो । मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है ।

—अभी तुम समझोगी भी नहीं बहिन और ना ही मैं तुम्हें समझा सकूंगा, मैं स्वयं अपने जीवन के भ्रम का निवारण करने की सोच रहा हूँ । तुम देख चुकी हो संसार के सुखों को.....कितना सुख है ? सत्य तो यह है कि संसार में सुख हैं ही नहीं, हाँ कभी कभी सुखाभास जरूर होता है । देखो संसार की असारता पिता गये, मां गयी और पत्नि भी चली गई, इसी तरह एक दिन मुझे भी जाना पड़ेगा । क्यों न उस जाने के पहले ऐसा कुछ कर लिया जाये जिससे कि बार-बार का आना जाना ही रूक जाये ।

अब मैंने आत्मोद्धार की बात सोची है । इस राग-द्वेष के परिवेश से अपनी आत्मा को मुक्त करूंगा । अपने पूर्वकृत कर्मों की निर्जरा करके हमेशा हमेशा के लिए परमानंद को प्राप्त करने का प्रयास करूंगा ।

शिवगौड़ा लगातार बोले ही जा रहे थे, अपने लम्बे व्याख्यान से उन्होंने अपनी बहिन का मोह भी ढीला कर दिया । आगम रस से पूर्ण, संपूर्ण सत्यता वाले प्रत्येक वचन में वह ताकत थी, कि अच्छे से अच्छा कठोर दिल भी एक बार पिघल जाएगा ।

उनकी बात पूर्ण होते ही उसने एक क्षण सोचा कि अब भाई को उनके मार्ग पर जाने से रोक पाना भी मुश्किल और रोकना ठीक भी नहीं, क्यों ना एक क्षत्राणी बहिन की तरह ही उन्हें बिदा दूँ । कुछ हल्के मन से वह बोली—भैया मैं जानती हूँ—तुम्हारा निश्चय अटल

है, अब तुम्हें उस पथ जाने से कोई नहीं रोक सकता, फिर मैं क्यों व्यर्थ मैं रोडे अटकाऊँ । जाओ भैया अपने उस पावन पुनीत कार्य को प्रारम्भ करो, अब तुम्हारा कोई बाधक न होगा, निश्चय की अटलता मानव के मार्ग में संभावित शूलों को समूल नष्ट कर देती है ।

तुम बच्चों की जरा भी चिंता मत करना, इन्हें मैं तुम्हारी धरोहर मानकर, अपने बच्चों से बढ़कर स्नेह से पालूंगी । इनके लालन-पालन के बिषय में जरा भी मत सोचना.....कुछ भी मत सोचना ।

जाओ.....भाई तुम्हारा मार्ग निर्बाध है, वैराग्य तुम्हें पुकार रहा है, दिशायें अभिनंदन कर रही हैं । हाँ, जाओ लेकिन कभी भी पीछे मुड़कर नहीं देखना । जिस प्रकार तुमने गृहस्थ जीवन में शूरवीरता से कार्य किया है, उसी प्रकार आत्म कल्याण के पथ पर भी एक वीर योद्धा की तरह डंटे रहना ।

शिवगौड़ा बहिन की बात सुनकर बोले—धन्य हो बहिन, मैं हमेशा तुम्हारा आभारी रहूंगा । जीवन से ज्यादा जीवन का लक्ष्य मूल्यवान होता है । अब मेरा धैर्य, साहस, ज्ञान और श्रद्धान ही मुझे सुरक्षित रखेगा, धर्म मेरा कल्याण करेगा..... ।

शिवगौड़ा के कदम, एक दिशा में बढ़ चले थे । बहिन उन्हें जाते हुए एक टक निहार रही थी । नन्हें बच्चें कुछ नहीं समझ पा रहे थे । कदम बढ़े.....और बढ़ते ही जा रहे थे । अब उस दिशा में एक परछाई मात्र ही नजर आ रही थी ।

X

X

X

बच्चों को बुआ का स्नेह भरा आँचल माँ की गोद जैसा लग रहा था, दोनो बच्चें उनके पास ही बैठे थे, कन्या तो उनके आँचल से लिपट गयी थी । बुआ ने उन्हें खूब प्यार किया, स्नेह दिया । दोनों बालक अत्यधिक स्नेह पा प्रसन्न प्रमुदित थे । माँ की मृत्यु के बाद शायद इतना प्यार उन्हें पहली बार मिला था । बुआ कन्या को स्नेह मय

चुंबन ले-ले कर पुचकार रही थी । तब अपनी छोटी बहिन को बुआ की गोद में आनंद लेते देख प्रमुदित हो रहा था । उन दोनों की चमकती हुई आंखें व प्रसन्न मुख यह प्रदर्शित कर रहे थे कि वे पिता के बिना भी बुआ की गोद में सुखी रह सकते हैं ।

उन दोनों नन्हें बच्चों को पलंग पर बैठाकर, एक कांसे के कटोरे में दूध-भात ले आई । दोनों को बारी-बारी से अपनी हाथ से भोजन कराया । सांझ होने को थी, बच्चों को भोजन कराने के बाद उन्होंने स्वयं भोजन किया परिवार के लोग संध्या के पूर्व ही भोजन कर चुके थे ।

चौपालों पर आज प्रायः शिवगौड़ा की ही चर्चा हो रही थी । कहीं उसकी शूर-वीरता का बखान हो रहा था, कहीं दानशीलता के गुण गाये जा रहे थे, तो कहीं उसकी दया और सरलता का व्याख्यान हो रहा था ।

वृद्ध तो उसके जाने से कुछ अनमने से भी दिख रहे थे । कुछ वृद्ध आपस में बैठे हुए चर्चा कर रहे थे । एक कह रहा था, किसको पता था-कि पाटिल अपनी अथाह संपत्ति छोड़कर योग धारण करेगा । सुना है, वह नग्न दिगंबर साधु बनने गया है ।

कोई वृद्ध कह रहा था-इस कठिन मार्ग को सामान्य व्यक्ति पालन नहीं कर पाते हैं इसे पालन करने के लिए तो पाटिल जैसे शूर ही चाहिये ।

एक वृद्ध कह रहा था, कि पाटिल के अंदर जितने गुण थे, शायद उस जैसा, अब कोई दूसरा व्यक्ति न मिलेगा । भगवान.....उनकी यात्रा सफल करे ।

विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार की चर्चाएं चल रही थी । शिवगौड़ा के वैराग्य की बात क्षण भर में चारों ओर फैल गयी थी । महिलाओं और बच्चों के मुख पर भी उस बेताज बादशह का नाम था ।

यहां बाहर नाना प्रकार की गोष्ठियां लगी हुई थी, वहां अंदर बुआ उन नन्हें बच्चों को सुलाने का प्रयास कर रही थी ।

जैसे-जैसे बुआ की गोद में मां का प्यार पाकर कन्या तो सो गई थी पर, तपन गौड़ा को नींद नहीं आ रही थी ।

जब उसे सुलाते हुए काफी समय हो गया और वह न सोया तो बुआ ने पूछा- क्या बात है बेटा- नींद नहीं आ रही क्या.... ?

बालक उत्तर देकर प्रश्न करते हुए बोला-बुआ, पिताजी कहाँ गये बुआ समझ गई कि बच्चे के हृदय में पिता का ध्यान है उन्हें कुछ उत्तर न सूझ रहा था, अनायास मुख से निकल गया, बेटा कहीं दूर भगवान के दर्शन करने गये हैं । कुछ दिनों बाद आ जायेंगे ।

बालक बोला-लेकिन बुआ अब रात हो गई है उन्हें जंगल में भय न लग रहा होगा । जंगल में तो भालू, बंदर, शेर, हाथी होते हैं ना ।

हाँ.....बेटा होते तो है, पर तेरे पिता इन सबसे जरा भी नहीं डरते । जब उनके पेट में से ही सर्प निकला और वे बिल्कुल न डरे, तब फिर अन्य से क्या डरेगे । वे तो बड़े शूरवीर है । उस समय घट सूर्य को देख दूसरे लोग तो वहाँ से भाग खड़े हुए थे..... ।

तपन लेटे से बैठते हुए आश्चर्य चकित मुद्रा में बोला-बुआ, ये घट सर्प क्या चीज है, क्या वह सबके पेट में होता है ..... ।

उसे अपना पेट टटोलते देख बुआ को हंसी आ गई..... बुआ का अनुकरण करते हुए वह भी हंस पड़ा, लेकिन जिज्ञासा ज्यों की त्यों बनी रही, वह तो पुनः बोला- बताओ न बुआ ! घट सर्प क्या चीज है ।

बुआ बोली -बेटा अभी सो जा, कल बताऊँगी, रात को सुनेगा तो डर लगेगा । तपन बोला-मैं नहीं सोऊँगा, सुनने के बाद ही सोऊँगा । बताओ..... मैं क्यों डरूँगा.....मेरे पिता जी भी तो किसी से नहीं डरते थे ।

बालक को हठ पकड़ते देख बुआ ने सोचा यह मानने वाला तो है नहीं अतः वह बात प्रारंभ करते हुए बोली-नहीं डरेगा, तो सुन! तेरे पिता के पेट में एक सर्प था, जो किसी बीमारी के रूप में ही था, वे जो कुछ खाते थे वह बड़ी जल्दी पचा जाता था । उन्हें प्यास

भी बहुत लगती थी अक्सर वह हांडी भरी छाछ पी जाया करते थे । एक दिन हवेली की पुताई के लिए एक हांडी में चूना-भिगोया गया था, तेरे पिता को तो कुछ मालूम न था, वे खेत से आये और चूने की हांडी को छाँछ समझ कर पी गये । घर बालों को ज्ञात हुआ, सभी घबराये पर तेरे पिता जरा भी न घबराए । कुछ समय पश्चात् वे शौचादि क्रिया के लिए नगर के बाहर अपने मित्रों आदि के साथ गये । वहाँ शौच द्वार से वह सर्प निकलकर एक ओर भागा । उसे देख सब मित्र डर गये, फिर तेरे पिता तो एकदम शांत मुद्रा में थे । मानों कुछ हुआ ही न हो ।

तेरे पिता बड़े शूरवीर है, उनके जीवन की सँकड़ों घटनायें हैं, मैं तुझे बारी-बारी से सुनाऊँगी चल बेटा.....अब तो सो जा रात बहुत हो गई है ।

बुआ की थपकियों से वह बालक सोने का प्रयास करने लगा । वह स्वप्न में दूर जंगल में जाते हुए अपने पिता को देख रहा था, जो निर्भीक मुद्रा में अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होते जा रहे थे ।

## ९

जब किसी की दृष्टि अन्तर्मुखी हो जाती है, तो उसे यह बाह्य पदार्थ अरुचिकर प्रतीत होने लगते हैं । अब उसे आत्मानुभव में ही आनंद आता है । पर उसे मात्र दुःख दायक ही प्रतीत होता है । अन्तर्मुखी दृष्टि वाले जीव की क्रियाएं सामान्य लोगों की अपेक्षा अंतरवाली होती है, जिन क्रियाओं को सामान्य व्यक्ति अत्यंत आसक्ति पूर्वक करता है, सम्यक् दृष्टि उसे निरासक्त चित्त होकर करता है ।

संसार की बड़ी विडम्बना है, बैरागी जीव संसार के ऐसे जीवों को पागल समझता है । बैरागी रागियों को पागल समझता है, लेकिन रागी भी बैरागी को कम पागल नहीं समझते हैं । कई बार तो

बैरागी को पागल करार भी दे दिया जाता है । खैर.....जहां नाना प्रकार की गतिविधियां देखी जाये, वहींतो संसार है, इस बात का चिंतन करके हम अपने आपको समझा कर रख सकते हैं, कि भाई जो कुछ है सो ठीक है ।

जो कदम आत्म कल्याणार्थ बढ़े थे, वह बढ़ते ही चले गए थे, उन कदमों ने सम्मेलन शिखर, राजगृही, चम्पपुर आदि कई क्षेत्रों की वंदना कर ली थी । वंदना से थके तन को विश्रांति आरा नगर में दी गई ।

सेठ देवकुमार जी रईस के आग्रह पर शिवगौड़ा करीब एक माह तक आरा में रुके । सेठ जी ने इस बीच उन्हें अनेकों जिन मंदिरों के दर्शन करवाये तथा स्वाध्याय भी करवाया । उनकी स्वाध्याय के प्रति लगन और तर्कणाशक्ति देखकर सेठ जी दंग रह जाया करते थे ।

नवादा, गुणावा, पटना, अयोध्या, वाराणसी, सिंहपुरी, चंद्रपुरी, गुलजारबाग, पावापुर, कुंडलपुर, आदि अन्य कितने ही क्षेत्रों की बंदना बड़े भक्ति भाव से उन्होंने प्रसन्न वदन से की । श्रवण बेलगोला, कारकल गिरनारजी, तारंगा जी, बड़वानी, मांगीतुंगी, आबू जी, अचलगढ़, सिद्धवर कूट आदि की यात्रा तो वे पहले ही कर चुके थे ।

अब वे आरा से पद विहार करते हुए अपने प्रमुख लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे, कदमों की स्फूर्ति पहले की अपेक्षा अब कुछ ज्यादा ही बढ़ गई थी । लम्बे रास्ते को पार करते हुए वे नांदनी गांव की ओर बढ़ रहे थे । कई दिनों की यात्रा के पश्चात् वे भट्टारक स्वामी जिनप्पा के पास पहुंचे । भट्टारक जी शिवगौड़ा को देख मुस्कराये, वे उत्तके अन्तस् तत्व को समझ रहे थे । उनकी दीक्षा की उत्कट अभिलाषा को भी वह समझ चुके थे ।

यथायोग्य नमस्कारादि कर शिवगौड़ा बोले—स्वामीजी, अब मैं घर गृहस्थी से पूर्णतः निवृत्ति लेकर आपके चरणों में आया हूँ । अब आप मुझे दीक्षा दीजिए । अब मैं अतिशीघ्र दीक्षा लेकर आत्म कल्याणके मार्ग पर बढ़ना चाहता हूँ । बिना दीक्षा लिए तीन काल में भी आत्मा को

स्वतंत्रता मिलने वाली नहीं है । अगर कर्मों से छूटना है, तो जिन दीक्षा लेना आवश्यक हैं ।

शिवगौड़ा की बात सुनकर भट्टारक जी बोले—तुम्हारा कहना शत प्रतिशत ठीक है, लेकिन जिन दीक्षा लेकर उसका भलीभांति पालन करना बड़ा मुश्किल है । एक बार मनुष्य तलवार की धार पर तो चल लेगा पर इस भीषण काल में दिगंबरत्व को निर्विघ्न रूप से पालन करने में असमर्थ है, और फिर अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है । तुमने संसार पूरा कहाँ देखा, कुछ दिन रूको फिर दीक्षा लेना ।

भट्टारक जी की बात पूर्ण होते ही शिवगौड़ा बोले— इस काल में भी दिगंबरत्व को भली भांति निभाया जा सकता है, लेकिन जब आत्मा की भावना होगी, तब बिना आत्मज्ञान के तो छोटा सा व्रत भी पालन नहीं किया जा सकता । फिर मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो चाहे सो कर सकता है ।

उम्र का कोई भरोसा नहीं । कौन कब इस संसार से विदा हो जाये क्या पता । यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिंदगी के सौ वर्ष पूरे करेगा ही, मृत्यु तो कभी—भी आ सकती है, एक पल का भी तो विश्वास नहीं है । और फिर उम्र भली तो कम नहीं है । भगवान महावीर ने भी तीस वर्ष की उम्र में ही दिगंबरत्व धारण किया था आयु तो केवल भ्रम मात्र है, आत्मा की कोई आयु या उम्र नहीं होती ।

शिवगौड़ा बिना रुके ही बोलते जा रहे थे— संसार..... को । तो हम अनादि काल से देखते आ रहे हैं, अगर नहीं देखा है तो सिर्फ मोक्ष । मोक्ष के अलावा भवों भवों में अनादि काल से प्रत्येक पदार्थ को यह जीव देख चुका और भोग भी चुका फिर भी उसे सुख शांति नहीं मिली । मिले भी कैसे वैभाविक परिणति में तो मात्र दुःख ही है, सच्चें सुख का तं आभास भी नहीं है । शिवगौड़ा की आत्मज्ञान पूर्ण तथ्यात्मक बातें सुनकर भट्टारक जी समझ रहे थे, कि यह जरूर कोई महान् आत्मा है, जो पुनः इस मुनि मार्ग को प्रकटाकर आगे बढ़ाएगा । इतना कुछ सोचने के बाद भी देशकाल, परिस्थिति को देखते हुए

उन्होंने पहले शिवगौड़ा को क्षुल्लक दीक्षा देना ही योग्य समझा ।

शिवगौड़ा के पुनः आग्रह करते ही उन्होंने उन्हें क्षुल्लक दीक्षा देने की स्वीकृति प्रदान कर दी । उनकी लगन निष्ठा और तपस्या के आगे भट्टारक जी भी नतमस्तक थे । स्वाति नक्षत्र शुभ दिन, शुभ तिथि में भट्टारक जी ने उन्हें क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर दी, जिसके माध्यम से सैकड़ों अन्य जीवों का कल्याण होना था ।

प्रारंभ से ही उत्कृष्ट चर्या का पालन करने वाले और एक आदर्श स्वरूप निर-परिग्रही क्षुल्लक जी का नाम क्षुल्लक आदिसागर रखा गया । शिवगौड़ा पाटिल अब आदि सागर महाराज के नाम से जाने जा रहे थे ।

अपनी भावना को कुछ अंशों में पूर्ण देखकर वे अत्यंत प्रसन्न थे । दीक्षा पाकर आत्म विभोर हो वह आत्महित के मार्ग पर चल पड़े । क्षुल्लक जी ने अल्प समय में ही दक्षिण भारत के अधिकांश तीर्थ क्षेत्रों की वंदना कर ली थी । उन्हें तीर्थ यात्रा में पहले ही बहुत आनंद आता था, अब तो वह पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ चुका था । अब तो उन्हें आत्मा का भी आनंद आने लगा था । घंटों ध्यान करते रहना, दो-दो, तीन-तीन उपवास के बाद आहार करना उनका अपना क्रम था ।

X

X

X

क्षुल्लक के व्रत पालन करते हुए, अब लगभग तीन महीने पूर्ण होने को थे । वे हमेशा पद बिहार ही करते थे और पद बिहार करते हुए एक समय यही गांव पहुंचे । वहां एक भव्य जिन मंदिर था, स्वाध्याय भी होता था । श्रावक गण जिन भक्त और अच्छे गुरु भक्त भी थे । क्षुल्लक जी वहां अपनी चर्या का अच्छी तरह निर्वाह होते देख, वहां कुछ समय रुक गए ।

इस प्रवास के दौरान उनकी आत्म विशुद्धि बढ़ चुकी थी, और उन्हें कंधे पर डला हुआ दुपट्टा भी वजनदार प्रतीत होता था ।

वे उसे बहुत समय से दूर करने की सोच रहे थे । जैसे ही यहाँ उन्होंने सुयोग्य अवसर पाया कि एक दिन—जिनैन्द्र प्रभु की साक्षी में दुपट्टे का त्याग कर ऐलक के व्रत धारण कर लिए ।

मुल्लक आदिसागर जी अब ऐलक आदि सागर जी के नाम से पुकारे जाने लगे थे ।

जब से वह ऐलक बने थे, तब से उनकी चर्या में ओर भी निखार आया था । अब वे पहले की अपेक्षा ज्यादा तपस्या करने लगे थे । उपवास भी बढ़ा लिए थे । तीन—तीन उपवास के बाद भी वे आहार—विहार—निहार आदि सभी क्रियाओं का विधि पूर्वक पालन करते रहते थे ।

घंटो क्या, दिन—दिन भर एक आसन से बैठे रहना, सामायिक अथवा ध्यान करते रहना उन्हें बिल्कुल आसान था ।

ऐलक श्री आदिसागर जी अब अपने ज्ञान से जन सामान्य को सदधर्म का उपदेश देने लगे थे । उनके सदपदेशों से जिनधर्म की इस शताब्दी की एक हल्की सी लहर उठना प्रारंभ हुई थी । उनकी वाणी में आकर्षण था । आगमानुकूल धर्मोपदेश से तो जन सामान्य प्रभावित था ही, उनकी चर्या से भी कम प्रभावित न था ।

शायद जन समुदाय ने मुनि तुल्य चर्या का पालन करने वाले किसी ऐलक को पहली बार देखा था, जो हमेशा अपने आप में ही लीन रहा करते थे । पर उससे उन्हें किंचित भी मतलब न था ।

ऐलक जी विभिन्न गांवों और नगरों में प्रभावना करते हुए, पद—विहार करने लगे । उनके पद विहार में कभी—कभी कुछ श्रावक भी शामिल हो जाया करते थे । रास्तें जहाँ कहीं विश्राम होता, वही धर्मगोष्ठी लग जाया करती थी । जैन व्यक्ति तो उनसे प्रभावित थे ही अजैन भी कम प्रभावित न थे ।

वे जन सामान्य को एकदम सरल भाषा में धर्म तत्त्व को समझाने का प्रयास करते थे । उनकी सरल, सहज शाब्दिक ध्वनि व्यक्तियों के कानों को पार करती हुई उनके हृदय तक भी पहुंच जाया करती थी । आकर्षित व्यक्तित्व हमेशा—हमेशा के लिए उनके भक्त बन

जाया करते थे । शायद लोगों ने इस प्रकार की धर्म प्रभावना पहले कभी — नहीं देखी थी जो आज ऐलक जी के माध्यम से हो रही थी, बच्चों क्या, बूढ़े और जवान क्या, सभी उनका नाम सुनते ही दौड़े चले आते थे ।

ऐलक जी अब अपने एक मात्र वस्त्र लंगोटी को भी छोड़ना चाह रहे थे । अब लंगोटी भी उन्हें आत्मध्यान में बाधक प्रतीत होने लगी थी । उनका विचार था, कि कहीं कोई दिग्बर साधु मिले, जिनके पावन चरणों में, मैं जिन दीक्षा ग्रहण कर लूं पर पांच—छह वर्ष तक खोज करने पर भी उन्हें ऐसे कोई निर्ग्रंथ साधु नहीं मिल सके जो आगमानुकूल आचरण करते हों । अब भी वे अपनी खोज में लगे हुईं थे, कितने तीर्थों पर कितने ही गांवों और नगरों में अब तक वे इसी लक्ष्य को मन में धारण कर भ्रमण कर रहे थे ।

इस बिहार के दौरान उन्हें कितने ही भट्टारक वेश धारी साधु मिले, और कितने ही शिथिलाचारी क्षुल्लक जैसा आचरण करने वाले साधु मिले पर उन्हें निर्ग्रंथ दिग्बर साधु की प्रशांत मुद्रा के अब तक कहीं दर्शन नहीं हुए थे । कुछ मुनि थे भी तो वे आहार आदि को जाते समय टाट आदि वस्त्र को लपेट लेते थे, क्योंकि दिग्बर साधु का यत्र—तत्र भ्रमण करना सर्वथा निषिद्ध था । उन साधुओं को पूर्व निश्चित श्रावकों के यहां ही आहार करने जाना पड़ता था, अतः उनकी चर्या का भी ठीक तरह से पालन नहीं हो पाता था ।

ऐसी स्थिति में ऐलक आदि सागर जी ही उन साधुओं से उत्कृष्ट आचरण, ज्ञान, ध्यान और तप वाले थे । अब वे उनसे दीक्षा ले तो कैसे! इसी टाल मटोल में अब उन्हें सात वर्ष पूर्ण होने आए थे ।

इन सात वर्षों में यत्र—तत्र धर्म की कुछ—कुछ जागृति अवश्य ही हुई थी । ऐलक जी आत्म कल्याण के साथ जन कल्याण में भी जुटे थे ।

उनकी प्रभावना से ऐसा प्रतीत होता था, कि जैन धर्म रूपी सूर्य जो, कि अज्ञान रूप मेघों से ढका है, कुछ समय बाद अवश्य ही प्रकट होगा..... ।

जब भारत पर मुसलमानों की क्रूर दृष्टि पड़ी थी, तब उसकी बहुत बुरी स्थिति हो गयी थी । चारों ओर अशांति का साम्राज्य छा गया था । यवनों का मूल सूत्र था, कि भारत से प्रत्येक धर्म को जड़ से खत्म कर इस्लाम धर्म की स्थापना करना । इनमें बाबर, ओरंगजेब और महमूद गजनबी जैसे क्रूर शासकों के नाम तो बहुत ही कुख्यात हुए और अपने धर्मायतनों को देखकर हम आज भी उन्हें धिक्कारते हैं ।

उन आताताइयों ने सैकड़ों मंदिर मिट्टी में मिला दिये हजारों प्रतिमा नष्ट कर दी, लाखों श्रावकों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए । ऐसी स्थिति में जैन धर्म की नैया भी डगमगाने लगी । कुछ श्रावकों ने भगवान की मूर्तियों को जमीन में गाढ़ दिया, कुछ ने कहीं अन्यत्र छुपा दिया और कुछ शस्त्र बल से मंदिर और मूर्तियों की रक्षा में जुटे रहे ।

साधुओं का प्रायः अभाव हो चुका था । अब मूर्ति के अभाव में श्रावक शास्त्रों की पूजन, करने लगे थे । इस अत्याचार के समाप्त होते ही कुछ विवेक शील श्रावक पुनः मूर्ति पूजन करने लगे और कुछ हठी श्रावक शास्त्र पूजा को न छोड़ सकें जिस कारण "तारण पंथ" चल पड़ा ।

आज भी जहां-कहीं भूगर्भ से जैन मूर्तियां प्राप्त होती हैं, जो शायद उसी समय जमीन में दबाई गई होगी । कितनी ही मूर्तियां देवों द्वारा स्वप्न देने पर निकाली जाती हैं, जो चमत्कारी सिद्ध होती हैं ।

कुटिल शासकों के शासन काल में धर्म दब गया था, लेकिन नष्ट नहीं हुआ था । जब मुगल काल के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का आधिपत्य रहा, तब भी धर्मवान मानव भय के कारण अपनी धर्म भावनाओं को हृदय में ही छुपाये रहे ।

उस समय कोई भी पूर्णतः दिगंबर साधु नजर नहीं आता था, क्योंकि नग्न साधु का कहीं भी दिखना मना था, उन्हें भी नाना प्रकार की यातनाओं का पात्र बनना पड़ सकता था । इस क्रूर काल चक्र के कारण ही मुनि धर्म में शिथिलता आ गई थी । मुनि वस्त्रादि का उपयोग करने लगे थे । केंशलौच भी पूर्ण रूपेण नहीं करते थे, भट्टारक वाद का जोर मुनि धर्म से ज्यादा था ।

जहां—कहीं, कभी—कभार कोई साधु नजर आते भी, तो प्रमादवश, अज्ञानवश अथवा परिस्थिति वश शिथिलता का पोंषण करते नजर आते थे । हाँ ! वे अपने चारित्र का कुछ अंशों में पालन अवश्य किया करते थे ।

X

X

X

इतने लंबे अन्तराल काल में कोई भी आगमानुसार आचरण करने वाला निर्ग्रन्थ साधु नहीं हुआ था । वर्षों बाद किसी ने साधु मार्ग को पुनर्जीवित करने का बीड़ा उठाया था, तो वह थे, शिवगौड़ा पाटिल, जो अब क्षुल्लक से ऐलक बन चुके थे ।

वे किसी दिगंबर गुरु की खोज में थे । लेकिन जब सात वर्ष तक उन्हें किसी दिगम्बर गुरु का सानिध्य न मिल सका तो उन्होंने स्वयं दीक्षित होने का विचार बनाया और चल दिये कुंथल गिरि की ओर ।

कुछ काल के पद बिहार के बाद वे कुंथल गिरि पहुंचे । अपने—आपको चारित्र में पूर्ण दृढ़ समझ कर उन्होंने दिगंबर होने का दृढ़ निश्चय किया । चूंकि वह पहले ही पूर्वाचार्यों के सैकड़ों शास्त्रों का स्वाध्याय के माध्यम से श्रवण कर धारण कर चुके थे, और फिर ऐलक अवस्था में भी खूब ध्यानाध्ययन हुआ था । उन्हें सात—सात, आठ—आठ उपवास करने का भी अभ्यास हो गया था ।

एक दिन उन्होंने भगवान कुल भूषण—देशभूषण की चरण रज से पवित्र उनकी ही सिद्ध स्थली कुंथल गिरि पर मूल नक्षत्र में

जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली । इस समय वे सैतालिस वर्ष के हो चुके थे । नाम वही का वही रहा मात्र ऐलक के स्थान पर मुनि शब्द जुड़ गया । आदि सागर यह नाम उस समय इतना प्रसिद्ध हो गया था, कि लोग नाम सुनते ही नतमस्तक हो जाते थे । सैंकड़ों श्रावकों ने अपने जीवन काल में प्रथम दिगंबरी दीक्षा और दिगंबर साधु को देखा था ।

मुनि आदिसागर की जय के नारों से आकाश गूँज रहा था । श्रावक जन धन्य हो, धन्य हो, जय हो—जय हो, आदि शब्दों का उच्चारण कर रहे थे । सैंकड़ों व्यक्ति उनका दर्शन कर, उनकी आराधना और पूजन कर अपने जीवन को धन्य मान रहे थे ।

X

X

X

दिगंबर मुनि श्री आदि सागर जी अपनी सहज वाणी से यदा—कदा श्रावकों को संबोधित किया करते थे, उनके वचनों का अचूक प्रभाव प्रत्येक श्रावक पर देखा जा रहा था ।

वे दीक्षा के उपरांत अपने उपदेश में कह रहे थे—चारित्र को ही धर्म का मूल कहा है । निजात्म तत्व को जानना, उसे पहचानना और उसमें रमण करना ही चारित्र है । यही चारित्र जब साम्य से संपूर्ण साम्य में परिवर्तित हो तब मोह और लोभ का नाश करते हुए परम शुद्ध चैतन्य अवस्था को प्राप्त कराता है ।

हम संसार में जो हमारा बुरा करता है, उसे शत्रु मान लेते हैं, जो हमें दुःख देता है हम उसे शत्रु मान लेते हैं । लेकिन वास्तव में वह शत्रु तुम्हारा असली शत्रु नहीं है, तुम्हारा असली शत्रु तो तुम्हारे अंदर विद्यमान मोह है इस मोह के कारण ही तुम किसी को शत्रु और किसी को मित्र मानते हो ।

संसार में कौन किसका शत्रु है कौन किसका मित्र, यह सब तो कर्मों का ही खेल है । जो शत्रुमित्र में समानता रखते हैं, वे वास्तव में सुखी रहते हैं । अगर हमें संपूर्ण सुख को प्राप्त करना है, तो राग—द्वेष को अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा । जब तक जीव के अंदर राग

अथवा द्वेष विद्यमान है, तब तक वह पूर्ण रूपेण वास्तविक सुख को नहीं पा सकता ।

साम्य भाव से ही सुख की प्राप्ति संभव है, अतः हमेशा साम्यभाव बनाने का सम्यक् प्रयास करो । राग द्वेष इन दोनों को अतिशीघ्र छोड़ो । इन्हें छोड़े बिना सुख कभी नहीं हो सकता ।

सुख पाने का मूल आधार तो सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र है । सुख के लिए इन तीनों को साधना परम आवश्यक है । इन तीनों की अभेद रूपता ही वीतराग भाव, निर्विकल्प समाधि अथवा आत्मलीनता कहलाती हैं, जिससे अनुपम आनंद की उपलब्धि होती है ।

पर की आशा छोड़ कर, निज में डुबकी लगायीं ।  
निज में ही सब कुछ है, पर कुछ भी नहीं ॥  
सबके पल्ले लाल है, लाल बिना कोई नहीं ।  
यातें भये कंगाल, गांठ खोल देखो नहीं ॥

सभी के अंदर अनुपम सुख भरा हुआ है, पर हम उनकी ओर देखते ही नहीं हम तो पर में सुख की खोज करते हैं । जो चीज अपने पास है, उसे दूसरी जगह दूढोंगे बताओं कैसे मिलेगी ।

वे एक कहानी सुनाते हुए कह रहे थे—एक ब्राह्मण किसी साधु के पास गया और उनसे सुख मांगने लगा तो उन्होंने कहां अमुक नदी में एक मगर मच्छ रहता है, जाओं वह तुम्हें सुख दे देगा ।

वह सोचने लगा, भला मगर मच्छ भी सुख दे सकता है, खैर.....गुरु की बात तो माननी ही पड़ेगी । वह नदी किनारे पहुंचा, कुछ समय बाद उसे एक मगर मच्छ दिखाई दिया । वह मगर मच्छ को देख पहले तो कुछ भयभीत हुआ लेकिन दूसरे ही क्षण कुछ संभलते हुए बोला—मुझे मेरे गुरु ने तुम्हारे पास सुख लेने के लिए भेजा है, अतः मुझे सुख दो ।

उसकी बात सुनकर मगर बोला—मैं तुम्हें जरूर सुख दूंगा,

लेकिन पहले तुम मेरा एक छोटा सा काम कर दो । ब्राह्मण ने पूछा—  
क्या काम है ? बताओ मैं अभी किये देता हूँ ।

मगर बोला— मुझे बहुत जोर की प्यास लग रही है, तुम मुझे कहीं से एक लोटा पानी ला दो । उसकी बात सुनकर ब्राह्मण आश्चर्य चकित होते हुए बोला— तुम स्वयं इतने गहरे पानी में होकर भी प्यासे हो यह बड़े आश्चर्य की बात है । मगर उसकी ओर देखते हुए बोला—इसे ही जान लेना तो सुख है, सुख कहीं बाहर नहीं तुम्हारे अंदर ही है । तुम तो व्यर्थ में ही बाहरी दुनिया में भटक रहे हो । बाहरी दुनिया में कहीं भी सुख मिलने वाला नहीं, सुख तो तुम्हारे अंदर है, उसे अंदर ही खोजोगे, तभी पा सकोगे ।

बंधुओ, यही स्थिति हम सबकी हो रही है, हम अंदर की वस्तु को बाहर ढूढ़ रहे हैं, बताओ मिले तो कैसे ?

संयम ही उस सुख को प्राप्त करने का प्रमुख साधन है । संयम से ही इस भयानक संसार का अंत हो सकता है । संयम रूपी नौका ही इस संसार रूपी समुद्र से पार उतारने में समर्थ है । अतः इस संयम की आराधना अवश्य करो । सम्यक् रूपेण पालन किया गया संयम ही परम सुख स्वरूप निर्वाण को प्राप्त करा सकता है ।

X

X

X

सभी प्रकार के परिग्रह के त्यागी मुनि श्री आदि सागर जी महाराज के पास पिच्छी, कमंडुल के अलावा अन्य कुछ भी नहीं था । संसार की समस्त सुविधाओं का त्याग कर वे अपने आत्म कल्याण में लग गये थे । कुंडल गिरि में उन्होंने कुछ काल तक प्रवास किया, उसके बाद वे गांव गांव पद विहार कर धर्म प्रभावना करने लगे ।

अपने उपदेशों में वे संयम को धारण करने की प्रेरणा विशेष रूप से दिया करते थे । वे मनुष्य भव की दुर्लभता बताते हुए कहा करते थे कि—यह मनुष्य का भव प्राप्त हो पाना अत्यंत मुश्किल है । पहले तो निगोद से निकल कर त्रस पर्याय का पाना ही मुश्किल

है, अगर चिंता मणि रत्न के समान अत्यंत कीमती त्रस पर्याय को पा लिया, तो उसके बाद पंचेन्द्रिय संज्ञी हो पाना मुश्किल है और पंचेन्द्रिय संज्ञी भी हो गए तो यह मानव तन पाना, अत्यंत मुश्किल है । अतः इस महा दुर्लभ मानव पर्याय को पाकर संयम धारण करने में ही बुद्धिमानी है ।

उनके त्याग मय जीवन और प्रेरणाप्रद जीवन से शिक्षा पाकर उनके उपदेशों को सुनकर भव्य जीव संयम धारण करने लगे । उनके उपदेश अत्यंत सरल भाषा में, हृदय ग्राह्य होते थे, वे अपने उपदेशों के मध्य एक न एक दृष्टांत अवश्य सुनाया करते थे । इस मानव तन की तुलना चिंता मणि रत्न से करते हुए, वे सुनाया करते थे—कि एक घास काटने वाली महिला रोज ही घास काटने जाया करती थी । एक दिन घास काटते हुए उसे एक चमकीला पत्थर दिखा, जिसे उसने यह सोच कर उठा लिया कि बच्चों को खेलने के काम आएगा ।

वह घास को सिर पर रखकर हाथ में वह पत्थर लिये जा रही थी, कि रास्तों में उसे एक जौहरी मिला । वह समझ गया कि यह अज्ञानी महिला है, यह हीरा इससे कम मूल्य में मिल सकता है, अतः वह बोला यह पत्थर बेचेगी । वह बोली हां बेचूंगी । कितना दाम लेगी । पूरा एक रूपया । जौहरी अपनी आदत के अनुसार बोला—आठ आने में बेचना हो तो दे दें । उसने नहीं दिया । कुछ आगे बढ़ी उसे पुनः एक जौहरी मिला उसने झट से उसे एक रूपया देकर हीरा खरीद लिया ।

अब वह पहला वाला जौहरी पुनः वापिस आया लेकिन उस महिला ने तो हीरा एक रूपये में बेच दिया था, अतः वह झल्लाते हुए बोला—मूर्ख वह अमूल्य हीरा था जिसे तुमने बेच दिया । वह महिला बोली—मूर्ख ..... मैं नहीं, तुम हो । जब तुम जानते थे कि हीरा अमूल्य है, तो एक रूपये देकर भी न खरीद सके, मैंने तो कुछ लाभ—उठा ही लिया है ।

हम भी अपने अमूल्य मानव जीवन को या तो यूँ ही बर्बाद कर देते हैं अथवा अत्यल्प मूल्य में ही उसे खो देते हैं । जिस शरीर से

साधना कर परम सुख को प्राप्त किया जा सकता है, उसे हम तुच्छ विषय भोगों में बर्बाद कर देते हैं । वे दो पक्तियां सुनाते हुए बोले—

यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनिवो जिनवाणी ।  
यह विध गए न मिले, सुमणि ज्यों उरधि समानी ॥

अतः इस अत्यंत मूल्य वान मानव पर्याय को पाकर इसे यूँ ही मत खो देना । समय रहते इसके उपयोग कर लेने वाला ही बुद्धिमान कहा जाता है । बाकी तो मूर्खों की श्रेणी में गिने जाते हैं । उनके शब्दों का प्रभाव प्रत्येक श्रोता के मानस पटल पर पड़ता था । उनकी त्याग, तपस्या देखकर लोगों को दांतों तले उगली दबानी पड़ जाती थी ।

कहाँ आज का आदमी दिन में सात-सात बार भोजन करता है और कहां महामुनि सात दिन में एक बार आहार करते थे एक समय वह भी था, जब वे सात-सात किलो भोजन यूँ ही पचा जाते थे और हांडी भर छाछ पी जाते थे, पर आज उनकी विरक्ति देखो.....सात दिन में मात्र एक दिन आहार लेते और वह भी एक बार और खड़े-खड़े ।

जन-सामान्य की श्रद्धा के पात्र महामुनि, कुंजर आदि सागर जी महाराज लगातार दो-दो दिन तक एक ही आसन से बैठ रहा करते थे । वे मंदिर और धर्म शाला की बजाय शमशान और जंगल को आत्म ध्यान के लिए ज्यादा उपयुक्त समझते थे ।

उनके ज्ञान ध्यान तप की चर्चा संपूर्ण श्रावक समुदाय में शीघ्रता से फैल चुकी थी । चूंकि कितने ही श्रावक उन्हें ऐलक अवस्था से ही जानते थे पर तब तो वे तीन-चार अथवा चार-पांच ही उपवास किया करते थे पर अब लगातार सात उपवास की बात सुनकर आश्चर्य होना सहज बात थी ।

उनके त्याग तपस्या की चर्चा जैन समाज में तो घर-घर थी ही, अजैन भी यत्र-तत्र उनकी चर्चा करते देखे जा रहे थे । अद्भुत

चमत्कारी संत के दर्शन को हर व्यक्ति लालायित रहा करता था । अब वे अपने उस क्षेत्र में निराबाध रूप से दिगंबर वेश में ही भ्रमण किया करते थे, जहां वे ऐलक अवस्था में रह चुके थे ।

X

X

X

अब दक्षिण भारत के सांगली जिले में और उसके आस-पास के क्षेत्रों में वे भ्रमण कर-कर के धर्म प्रभावना कर रहे थे । उनके प्रभाव के सामने उनके त्याग और तपस्या के सामने अच्छे-अच्छे राजा महाराजा भी झुक जाया करते थे । क्रूर हृदय भी उनके सामने जाकर पानी-पानी हो जाया करते थे, वे ही अपने पूर्व कृत कर्मों का पश्चाताप कर लिया करते थे ।

उनकी परम दिगंबर मुद्रा देखते ही श्रावक जन अत्यंत प्रमुदित हो जाया करते थे । अत्यंत भक्ति-भाव से श्रद्धा और विनय से उनकी भक्ति-भक्ति पूजन आदि किया करते थे ।

उनके प्रेरणादायी उपदेशों को सुनकर कितने ही मनुष्यों ने मिथ्यात्व छोड़ दिया था, अब कुगुरु कुदेव और कुशास्त्र को न पूज कर सुदेव, सुशास्त्र, और सुगुरु की पूजन करने लगे थे। नित प्रति जिन मंदिर जाना उनका नियम बन गया था । कितने ही भव्यों ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये । ऐसे महामुनि के सानिध्य से सैकड़ों भव्य अष्ट मूल गुण धारण कर चुके थे । अब यत्र-तत्र कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा था, कि जैन भी कोई धर्म है ।

देवाधिदेव भगवान महावीर की वाणी का प्रचार-प्रसार करते हुए, चूंकि मुनि अवस्था में रहते उन्हें ज्यादा समय नहीं हुआ था, फिर भी कितने ही श्रावकों ने उनसे क्षुल्लक के व्रत धारण कर लिए थे, वे हमेशा-हमेशा के लिए महामुनि के चरणों में समर्पित हो गए थे ।

कुछ योग्य और ज्ञानी भव्यों को महामुनि ने भवतारणी दुःखहारिणी, जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कर दी थी । अब वे अपने इस संघ के मध्य सूर्य जैसे शोभा को प्राप्त होते थे । वे हमेशा ख्याति, पूजा से

दूर भागते थे, पर उनकी ख्याति और पूजा दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही थी। जिस तेजी से उनकी ख्याति बढ़ रही थी, उससे कहीं ज्यादा तेजी से वे स्वयं शिव पथ पर बढ़ रहे थे.....और बढ़ते ही जा रहे थे। शिष्य समुदाय भी उनके पद चिन्हों का अनुकरण कर रहा था।

## ११

आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी ने समय सार में कहा है, कि म्लेच्छ को अगर आप संस्कृत या प्राकृत भाषा में किसी भी विषय को समझायेंगे, उसकी समझ में न आयेगा और वह अर्थ का अनर्थ करेगा, इसलिए म्लेच्छ को उसकी ही भाषा में समझाना चाहिए जो उसकी समझ में आती हो।

महामुनि आदि सागर जी आचार्य कुन्द कुन्द के कथन का अनुसरण कर धर्म प्रभावना करने में सफल हो रहे थे।

जब कभी वे किन्हीं छोटे गांवों अथवा नगरों से निकलते, तो वहां के जन सामान्य को अवश्य संबोधित करते और उस संबोधन में, उपदेश में दिगंबर धर्म के अंग-उपांगों पर प्रकाश डाला करते थे।

आज भी एक गांव में, वे एकत्रित जन समुदाय को दिगंबरत्व के बारे में बताते हुए, एक उदाहरण के माध्यम से समझा रहे थे - जैन मुनि नग्न इसलिए रहते हैं, कि नग्नता परम पवित्र है। वस्त्र तो वासना को ढकने के लिए होते हैं और फिर वस्त्र रखने से विभिन्न समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं एक साधु जी थे, वे हमेशा नग्न रहकर ही साधना किया करते थे। एक दिन उन्हें उनके किसी भक्त ने सलाह दी, कि महाराज आप कम से कम एक लंगोट तो धारण कर लिया करो। साधु ने कुछ टाल मटोल की पर वे भक्त की गोल-गोल बातों में फंस गये, अंततः उन्होंने लंगोटी पहनने की स्वीकृति दे दी। भक्त महोदय दूसरे ही दिन दो लंगोट लेकर साधु जी के पास देन आये साधु जी उनका उपयोग करने लगे। जब वे अपनी

घास-फूस की कुटिया में लंगोट को टांग कर भिक्षा मांगने जाते तो चूहे उसे कुतर जाते, अतः परेशान हो साधु ने बिल्ली पाल ली । अब बिल्ली को भोजन की आवश्यकता हुई, तो उन्होंने कुछ ग्वालों से दूध मांगना प्रारंभ कर दिया । ग्वाले कुछ ही दिन तक तो दूध देते रहे, अंततः उन्होंने हार-थक कर उन्हें एक गाय दे दी । अब साधु जी गाय को यहां-वहां चराने ले जाने लगे । जब लोगों को एतराज होने लगा, तो वे राजा के पास पहुंचे राजा ने उन्हें कुछ जमीन दान कर दी । अब साधु जी जमीन पर खेती भी करने लगे ।

जब दो-तीन वर्ष तक साधु जी जमीन का लगान न चुका पाये, तो उन्हें भी वहीं दण्ड दिया गया जो अन्य कृषकों को दिया गया था । वे भी सबके साथ हाथों को ऊपर कर धूप में खड़े कभी हंस रहे थे, तो कभी रो रहे थे । उनकी ऐसी स्थिति देख राजा ने पूछा- आप कभी हंसते है, कभी रोते है, इसका कारण क्या है ?

वह बोले-यह लंगोटी ही वह कारण है, जिस कारण मुझे अपनी खोई हुई साधना पर रोना और स्वयं की मूर्खता पर हंसना आ रहा है । अगर मैंने यह लंगोटी स्वीकार न की होती, तो आज इस तरह अपमानित होकर अन्य कृषकों के बीच में हाथ ऊपर करके धूप में खड़ा न होना पड़ता ।

राजा साधु के हृदय की व्यथा समझ गया और उसने साधु को दण्ड से मुक्त कर दिया । अब साधु पुनः लंगोटी छोड़कर तपस्या करने लगे । वे जन समुदाय को संबोधित करते हुए बोले- कहने का मतलब है, कि लंगोटी की चाह भी महा दुःख देने वाली है अतः जैन साधु लंगोटी का भी त्याग कर देते हैं ।

वे हमेशा यथाजात रूप को धारण कर बालक वत् रहा करते हैं उनक मन में किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ करता है ।

मुनि राज के शब्द जन सामान्य को सहज ही समझ में आ जाते थे । अब तो कुछ अजैन भी जैन साधुओं के प्रति श्रद्धालु हो गये थे ।

X

X

X

पद बिहार करते हुए महा मुनि कुंभोज बाहुबली पर्वत पर आ पहुंचे । सात-सात उपवास के बाद भी उनके पद विहार में किसी प्रकार का विराम नहीं हुआ था । शायद! उनके केशलौच का समय निकट था और किसी क्षेत्र पर ही वे केशलौच करना चाहते थे, अतः उपवासों में भी वे यथावत पद विहार कर बाहुबली पर्वत पर पहुंचे थे ।

जब उन्होंने पर्वत पर ही केशलौच प्रारंभ किया, उस समय यहां एक उपाध्याय पंडित के अलावा अन्य कोई नहीं था ।

इसी समय महाराज के कुछ भक्त जो दर्शन को आये थे । वे अभी पहाड़ के नीचे ही थे । ऊपर चढ़ने के प्रयास में थे, तभी पहाड़ पर अपार भीड़ होने का अहसास हुआ, क्योंकि उच्च स्तर में जय घोष सुनाई दिया था ।

इस उच्च घोष को सुनकर यात्री कुछ तेजी से पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास करने लगे । कुछ यात्री लम्बे-लम्बे पग रखते हुए आगे बढ़ रहे थे । बड़ी कठिनाई से वे पहाड़ पर पहुंच ही गये । वे सोच रहे थे, कि अपार भीड़ में महाराज के अच्छी तरह से दर्शन करना भी मुश्किल हो जाएगा, किंतु जैसे ही वे उस स्थल पर पहुंचे जहां महाराज श्री केशलौच कर रहे थे, तो आश्चर्य चकित रह गए । वहां महाराज और उनके अलावा एक व्यक्ति ही वहां मौजूद था, फिर इतने उच्च स्तर में जय घोष किसने किया ? कहां से हुआ ।

सब आपस में एक दूसरे का मुंह ताक रहे थे । आपस में काना-फूंसी कर रहे थे, कि ऊदगांव के देशाई देव बोले-उच्च स्वर से जय घोष हुआ, वह हम सबने सुना, हम सब बड़े भाग्यशाली हैं, जो देवकृत जयघोष सुना, हम तो ऐसे महामुनि के दर्शन मात्र से ही भवपार हो जायेंगे, जिनके चरणों की वंदना सुर-असुर सदा किया करते हैं ।

धन्य हैं, इस विकराल काल में यह चमत्कार, इनके पग धरने से ही यह भूमि पावन हो गई । इस धरती का कण-कण पावन हो गया जहां-जहां ऐसे महान संत के चरण पड़ेगे तो वहां-वहां तीर्थ बन जायेंगे ।

X

X

X

महाराज सूखी घास की तरह केशों को उखाड़ते जा रहे थे । जब महामुनि का केशलौच पूर्ण हो गया, तब उन्होंने एक क्षण को यात्रियों की ओर निहारा एवं उनकी भावना को समझ उन्होंने धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया ।

जैसे ही उन्होंने णमोकार की ध्वनि प्रारंभ की, वैसे ही सभी श्रावकों का ध्यान उस ओर आकर्षित होने लगा । उनके अंदर चल रहे, सभी अंतर्द्वन्दों को विराम मिला । सभी मुनि राज की सौम्य शांत मुद्रा को एकटक निहार रहे थे । महामुनि की मुद्रा सूर्य के समान तेज वाली थी, केशलौच करने के बाद जरा भी ऐसा महसूस नहीं हो रहा था, कि वे पीड़ा महसूस कर रहे हैं । उनके मुखार बिंद से निःसृत महामंत्र के उच्चारण से सर्वत्र चेतना की लहर सी दौड़ गई । सभी श्रोतागण सजग, सावधान हो उनकी वीतराग वाणी का पान करने लगे ।

महाराज कह रहे थे— जग में यह बात अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि दूध से दही जमता है । पतला दूध भी थोड़े से जामन से दही का रूप धारण कर लेता है और दही को मथने पर उसमें से सारभूत मक्खन प्राप्त होता है जो गर्म करने पर घी बन जाता है । उसी प्रकार आत्मतत्व दुग्ध है उसमें जब ज्ञान रूपी जामनपड़ जाता है तो ध्यान रूपी मक्खन उत्पन्न होता है और ध्यान रूपी मक्खन को तप से तपाने पर शुद्धतम तत्व रूपी घी प्राप्त हो जाता है ।

इसलिए सर्व प्रथम तो यह जानने की आवश्यकता है, कि हमारे पास दुग्ध है अथवा नहीं अर्थात् आत्मा है या नहीं ? प्रत्येक जीवित शरीर के अंदर आत्मतत्व विद्यमान है, उस आत्म तत्व को जानकर उसमें ज्ञान रूपी जामन डालना भी आवश्यक है अर्थात् हमेशा ज्ञान का अभ्यास करना, ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है । जब उस ज्ञान रूपी जामन से आत्म रूपी दही जम जाएगा । तो मथने पर उसमें से ध्यान रूपी मक्खन निकलेगा, जो तप रूपी अग्नि से गर्म करने पर शुद्धतम रूप में परिवर्तित हो जाएगा ।

दुग्ध रूप आत्मा सब के पास उपलब्ध है, लेकिन आवश्यकता है उसके ज्ञान की । कितने लोगों को तो यह पता ही नहीं होता कि हमारे अंदर कोई आत्मा भी है । कुछ लोगों को ज्ञान होता है, तो विश्वास नहीं होता है और कुछ लोगों को पता और विश्वास भी होता है, तो उनकी वैसी क्रिया नहीं हो पाती जैसी कि उनकी आत्मोन्नति में सहायक हो ।

बिना सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् क्रिया के कभी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता है । आत्मा, शुद्धात्म रूप तभी हो सकती है, जब हम इन तीनों को एक साथ अपनायेंगे ।

अगर हमें अपनी आत्मा की उन्नति करना है, उसके परम स्वरूप को प्रकट करना परम आवश्यक है । उस ज्ञानाभ्यास से ही हमें तत्व और कुतत्व की पहचान होगी और जब हम प्रत्येक वस्तु के वास्तविक स्वरूप को जानने लगेंगे तब ध्यान होगा । जब ध्यान होने लगेगा तो तप में वृद्धि होगी और तप में वृद्धि होने से आत्म गुणों में वृद्धि होगी । जिससे हम सब एक दिन परमात्म पद को प्राप्त कर सकेंगे, जहां कि हमारी यात्रा की पूर्णता होगी । भव भ्रमण को विराम लगेगा ।

महामुनि अपनी सरल भाषा में बस्तु तत्व का विवेचन कर रहे थे सभी श्रोता गण उनकी मुख मुद्रा को एकटक निहारते हुए धर्माभूत का पान कर रहे थे ।

वे एक उदाहरण देते हुए कह रहे थे— कि जैसे कोई बीमार व्यक्ति है । अगर वह वैद्य के यहां नहीं जाता है, तो उसकी बीमारी ठीक नहीं हो सकती । वैद्य के यहां जाने के बाद भी उसकी दी हुई दवा पर जब तक श्रद्धा नहीं होगी तब तक वह स्वस्थ नहीं हो सकता । श्रद्धा होने पर अगर दवा कब खाना कैसे खाना अगर पूर्ण जानकारी न होगी तब तक भी वह स्वस्थ न हो पाएगा । श्रद्धा और ज्ञान होने पर जब क्रिया नहीं करेगा अर्थात् दवा को यथा विधि से ग्रहण नहीं करेगा, तब भी वह स्वस्थ न हो पाएगा ।

उसी प्रकार संसार में अनादि काल से जन्म जरा, मृत्यु इन महा व्याधियों से पीड़ित यह जीव जब तक सच्चे देव, शास्त्र, गुरु रूपी वैद्य की शरण में नहीं जाएगा, तब तक स्वतंत्र नहीं हो सकता

अर्थात् अपने आत्मा में लीन नहीं हो सकता है, कदाचित् वह सच्चे वैद्य स्वरूप इनके पास पहुंच भी गये तो श्रद्धा ज्ञान और चारित्र के बिना कुछ भी नहीं होने वाला ।

जब तक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र यह तीनों एक साथ नहीं होंगे, तब तक वास्तविक आत्म तत्त्व का आनंद प्राप्त नहीं हो सकता, मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता । अगर हमारी मोक्ष पाने की भावना है, अपने स्वरूप में लीन होना चाहते हैं, तो इन तीनों का आश्रय लिये बिना न आज तक कोई सिद्ध हुआ ही है और न ही कभी हो सकता है । अतः इस भवतारक रत्नत्रय का आलंबन लेना प्रत्येक भव्य को मुक्ति में सहायक होगा ।

वाह्य में इनका आलंबन लेने से अंतरंग में वह स्वयं ही उत्पन्न हो जाएंगे और तीनों की पूर्ण रूपेण सम्यक् उत्पत्ति ही मोक्ष है । सभी भव्य मोक्ष मार्ग को बढ़े और जब तक उसे प्राप्त न कर ले तब तक बढ़ते ही जाए । मोक्ष मार्ग संयम का मार्ग है, अतः उसकी शुरुआत के लिए सभी को कुछ न कुछ संयम धारण करना चाहिये । गुरु के हाथ से ग्रहण किया हुआ व्रत नियम संयम, बहुत बड़ी उपलब्धि और उन्नति का कारण होता है । अतः संयम को भी सामर्थ्यानुसार धारण करें । जो हमारी आत्मोन्नति में परम साधक कारण है ।

महाराज की बात पूर्ण हो चुकी थी, लेकिन श्रोता एक एक करके उन्हें प्यासे की तरह निहार रहे थे । उनके मन में महामुनि के द्वारा कही हुई ज्ञान की धारा प्रविष्ट हो रही थी । वे अभी कुछ और भी सुनना चाहते थे पर अब कह भी तो नहीं सकते थे, क्योंकि महामुनि ने अपनी प्रज्ञा के बल से आगम का सार ही उनके सामने उद्देल दिया था । महामुनि की वाणी सुनकर सभी अपने आपको कृत कृत्य मान रहे थे ।

X

X

X

परम पूज्य महामुनि आदि सागर जी अपनी पद रज से

धरती को यदा कदा विचरण कर पवित्र किया करते थे । उस समय वे सांगली जिला और उसके आसपास तो पद विहार कर ही चुके थे । चिकडोली, कागनोली, कोल्हापुर, चिचवाड़ आदि क्षेत्रों में भी वे विहार कर रहे थे । उनका अधिक समय तीर्थ क्षेत्रों पर ही गुजरता था ।

जब कभी वे बाहुबली भगवान की छत्र छाया कुम्भोज बाहुबली में प्रवास करते तो आस पास के गांवों में चर्यार्थ जाया करते थे । उन गांवों में एक गांव का नाम भोज भी था । इस भोज नाम के ग्राम में ही आचार्य श्री शांति सागर जी का जन्म हुआ था । उनकी जन्म भूमि होने का गौरव प्राप्त होने से भोज आज भी स्मरण में बना है ।

मुनिराज आदिसागर जी जब चर्यार्थ भोज गांव जाते, तो सात गौड़ा अपनी दादी के साथ मुनि राज को आहार दिया करते थे । चूंकि संपूर्ण गांव मुनि आदिसागर जी का भक्त था, किंतु सात गौड़ा पाटिल की भक्ति कुछ ऐसी थी, जिसकेवश उन मुनिराज को भी हो जाना पड़ता था ।

जब कभी गुरु और शिष्य में चर्चा होती, तो बड़ा आनंद आता सात गौड़ा अपनी मनोभावना व्यक्त करते हुए बोलते—गुरु देव अब तो मैं आपके चरण सानिध्य में ही रहना चाहता हूँ, क्या चरणों में जगह मिलेगी ।

महाराज उत्तर देते हुए कहते—आने वाले को कोई रोक नहीं सकता और जाने वाले को कोई पकड़ नहीं सकता । आना जाना तो लगा हुआ है ।" पर आज तक ऐसा आना नहीं हुआ कि जाना न पड़े और ना ही ऐसा जाना हुआ कि आना न पड़े ।

उत्तर सुन सात गौड़ा बोलते— गुरुदेव, आप तो हमेशा अध्यात्म में पहुंच जाते हो । आप तो दिगंबर मुनि हैं सो अध्यात्म मय होना ही चाहिए, लेकिन मैं तो अभी गृहस्थ ठहरा, कृपाकर पथ दर्शन दीजिए । मैं क्या करूँ ?

महाराज कहते—सात गौड़ा तुझे मैं क्या मार्ग दर्शन दूँ, तू ही भविष्य में सारी दुनिया को मार्ग दर्शन देगा । तू एक महा प्रभावी साधु बनेगा । जब तुम मुझसे मेरे सानिध्य में आने की बात कहते हो,

तो मुझे बहुत आनंद आता है । मैं भी चाहता हूँ कि तुम अतिशीघ्र इस मार्ग पर स्वयं बढ़ो और भटके जग को रास्ता दिखाओ ।

सात गौड़ा तुम्हारी वह गुरु भक्ति और वैया वृत्ति अवश्य ही तुम्हारी आत्मोन्नति में सहायक होगी ।

सात गौड़ा कहते— महाराज मैं क्या वैयावृत्ति करता हूँ मात्र पिच्छी कमंडलु ही तो साफ करता हूँ । और जब आप हमारी दुकान में ठहरते हो, तो हाथ पैर दबा देता हूँ । यह कौन सी बड़ी वैयावृत्ति हो गयी ।

महाराज कहते— और दादी के साथ जो आहार देते हो, वह क्या है ?

—महाराज ! वह तो श्रावक का कर्तव्य है । प्रत्येक श्रावक को आहार दान तो करना ही चाहिए ।

—और दूध गंगा, वेद गंगा नदी पार कराते वह ?

—गुरुदेव वह तो मैं अपने स्वार्थ के लिए कराता हूँ ।

हमेशा यही विचार करता हूँ कि हे गुरुदेव जिस प्रकार मैं आपको नदी पार कराता हूँ, उसी प्रकार आप मुझे संसार रूपी समुद्र पार करा देना । मैं तो छोटा उपकार करके अपना बड़ा उपकार करवाना चाहता हूँ । फिर महाराज आपको कंधे पर बैठा कर चलने में मुझे आनंद भी तो बहुत आता है सात गौड़ा बोले ।

बड़े स्वार्थी हो ! सात गौड़ा तुम्हारी मनोभावना एक ना एक दिन अवश्य ही पूर्ण होगी । बस तुम तो हमेशा धर्म ध्यान करते रहो व्यर्थ के प्रपंच में मत पड़ना, और ना ही जमींदारी और मुखियाई के चक्कर में पड़ना । आत्मा की ओर दृष्टि रखना जरूर ही घर से निवृत्ति मिल जाएगी और घर से निवृत्त हो जाने के बाद संपूर्ण जीवन तुम्हारे हाथ में ..... जैसा चाहों, बना लो ।" महामुनि ने कहा ।

शायद ! महामुनि के वह वचन ही गौड़ा को आशीर्वाद रूप में मिल गए और उनकी जीवन दिन प्रति दिन निवृत्ति की ओर बढ़ने लगा । गृहस्थी में रहते हुए ही, वे उत्कृष्ट श्रावक धर्म का अभ्यास करने लगे थे ।

अधिकांशतः वे एक समय ही भोजन किया करते, और कभी-कभी उपवास भी कर लेते ।

महामुनि का जीवन उनके लिए यौवन काल से ही आदर्श बन गया था । वे भी उन के पद चिहनों पर चलना चाहते थे । जो कि उनकी ग्राहस्थिक चर्या से ही कुछ-कुछ झलकने लगा था । अब वे भी अपनी आत्मोन्नति की चिंता में ही अक्सर लगे रहते थे ।

प्रत्येक बाधा को वे महामुनि का आदर्श तम जीवन देख कर सहज ही सहन कर लेते थे ..... ।

## १२

मन लोभी मन लालची, मन चंचल चित चोर ।  
मन के मते न चालिये, क्षणिक क्षणिक में और ॥

मन की चंचलता विश्व विख्यात है । वह कब कहां चला जाये कुछ भरोसा नहीं । क्षण भर में ही वह तीन-लोक की यात्रा करने में समर्थ है । संसार में शायद मन से तेज दौड़ने वाला न ही कोई यंत्र आज तक बन पाया है और न ही बन पाना संभव ही है ।

मन बड़ा बदमाश है, वह अपनी मनचाही इच्छा को पूर्ण करना चाहता है । अगर उसकी मन मानी नहीं चल पाती है, तो वह रूठ जाता है ।

प्रत्येक मानव के पास तीन तत्व होते हैं, आत्मा, मन और शरीर । इन तीन तत्वों में एक ओर आत्मा है, दूसरी ओर शरीर और जो इन दोनों के बीच में है, वह है मन । यह जो बीच में बैठा है, बस यही शैतान है, दोनों तत्व शांत है, लेकिन यह चंचल है । दोनों निठल्ले है, लेकिन इसे निठल्ला पन एक क्षण को भी पसंद नहीं । विषय भोगी व्यक्ति का मन जिंद से भी खतरनाक होता है । मन जिंदा को भी मुर्दा कर देता है और मुर्द को भी जिंदा । यह उन जिंदों के समान है जो

हमेशा, यह कहते हैं, कि हमें कुछ काम दो, नहीं तो हम तुम्हें ही खा जायेंगे ।

यह मन जब शरीर से जुड़ता है तो संसार को बढ़ाता और जब आत्मा से जुड़ता है तब सत्य और ध्यान को । मन भोगी के भी होता है और योगी के भी, पर भोगी उसे भोगों में लगाकर प्रसन्न रहता है और योगी योगों में । मन इतना चंचल है कि वह कई बार तो योगियों को भी ठग लेता है । लेकिन जिन योगियों को अपनी आत्म शक्ति का भान होता है, वे मन को सदा ही अपने वश में रखते हैं । वास्तव में मन का मूल नियामक तो स्वयं का आत्मा ही है । लेकिन संसारावस्था में इसकी अधिकांश गतिविधियों का संचालन वह ही करता है ।

आत्मा तो न शुभ का कर्ता है, और न अशुभ वह तो अपने आप में रहने वाला है, लेकिन जब मन उसके साथ में रहता है, तो दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां करता है ।

मन पवित्रता—अपवित्रता, हिंसा—अहिंसा, दया—अदया, पुण्य—पाप, क्रोध—क्षमा, मान—मार्दव, कुटिलता—आर्जव, लोभ—संतोष, त्याग—तृष्णा, राग—द्वेष आदि सभी प्रतिपक्षी धर्मों का उद्गम स्थल है । शुभ परिणाम भी इसी से उत्पन्न होते हैं और अशुभ भी ।

जो सीढ़ी ऊपर की ओर ले जाती है, वही नीचे की ओर लाती है । मन रूपी बंदर इस सीढ़ी पर हमेशा उछल—कूद करता रहता है । कभी क्रोध में, कभी क्षमा में, कभी राग में, कभी द्वेष में, कभी लोभ में, कभी त्याग में, कभी मान में, कभी सरलता में । एक ही मन कबड्डी की तरह खेलता रहता है । एक ही क्षण में वह इन सभी स्वभाव और विभावों में परिवर्तित होने की ताकत रखता है । शायद ! मन जैसा संसार में दूसरा बहुरूपिया नहीं मिल सकता, जो एक क्षण में ही सैकड़ों स्वांग दिखा सके ।

X

X

X

मन कब अपनी चंचलता की तान छेड़ दे कोई विश्वास

नहीं, वह कहां से कहां चला जाय इस बात का भी कुछ पता नहीं । अच्छे — अच्छे योगियों के मन भी आत्मावलोकन न होने पर चंचल हो जाते हैं ।

महामुनि आदिसागर जी ने अपने मन को पूर्णतः वश में कर लिया था । उनकी साधना अनुपम थी । शिष्य गण उनकी साधना देखकर विस्मित हो जाया करते थे । सर्दी के समय में घास के कुछ तिनकों की ही शैय्या उनके लिए पर्याप्त हो जाया करती थी । और फिर वे रातों-रात एकांत पहाड़ी स्थानों में सामायिक-ध्यान आदि करते रहते थे ।

गर्मी में और सर्दी में उन्हें कोई अंतर नहीं रहा था । वर्षा के दिन आते तो वे कहीं अपना चातुर्मास बिताते और फिर यत्र तत्र विचरण करने लग जाते । गर्मी के दिनों में भी पहाड़ी पर बैठकर छः-छः घंटे तक तपस्या किया करते थे । बैठे-बैठे त्वचा भी काली पड़ जाती थी । लेकिन गुरुदेव को शरीर से किंचित भी ममत्व न था ।

उनका संपूर्ण शरीर तप-तपकर शुद्ध कुंदन बन चुका था । वह ऐसी अद्वितीय तपस्या शायेंद! लोगों ने पहली बार देखी थी, तभी तो जन साधारण भी । उन्हें महामुनि, मुनि कुंजर, उपसर्ग विजेता, अतिशय योगी आदि नामों से पुकारने लगे थे ।

लोग यत्र-तत्र उनकी प्रशंसा किया करते थे । उन्हें नाना प्रकार के पदों से विभूषित किया करते थे । पर वे ख्याति आदि के चक्कर में किंचित नहीं पड़ते थे । वे कहा करते थे—“मुझे तीनों में सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ है अब अन्य किसी पद की आवश्यकता नहीं ” अगर आवश्यकता है तो एकमात्र परम पद की, सिद्ध पद की ।” मुझे अब कुछ नहीं चाहिए आधा तो पा लिया है और आधे बल से पूरा भी पा लूंगा ।

उनकी निष्पृहता, अयाचक वृत्ति अकथनीय थी । इन देवबंध पदों की अर्चना कर राजा-महाराजा भी कृतार्थ हो जाते थे ।

तप उनका प्रमुख प्राण था, अधिकांश समय तप और ध्यान में ही समय निकलता था । आज भी वे ध्यान में बैठे थे, पहाड़ी स्थान था,

रात्रि के दो पहर बीतने को थे, अचानक कोई जंभागंम की स्त्री वहां पहुंच गई और अपना मायाजाल फैलाते हुए नाना प्रकार की चेष्टाएं करते हुए, कहने लगी— मुनि ! आँख बंद करके बैठने से सुख-मिलने वाला नहीं है, जरा! आंख खोल कर देखो संसार कितना सुखी है ? क्यों व्यर्थ मैं तुम दुःखी बने हुए हो यह सब ढोंग छोड़ों और संसार का सुख लूटो ? क्या रखा है इन योगों में ? मात्र दुःख के सिवा, भोग भोगों जिससे कुछ सुख मिले..... आंखें खोलो और देखो मेरे रूप लावण्य को । और न जाने वह वाचाल काम रोग से पीड़ित स्त्री महा तपस्वी के सामने क्या— क्या कह रही थी ।

महामुनि मौन थे, उनकी दृष्टि अपने आपको निहारने में लगी हुई थी, वे कुछ न बोले एक दम शांत थे । स्त्री परिषह उनके ऊपर मंडरा रहा था, वे उस पर विजय पाने में संलग्न थे । स्त्री की नाना प्रकार की कुचेष्टा और काम को बढ़ाने वाली बातें सुनकर, वे और भी सावधान हो गये थे ।

वास्तव में कामुक स्त्री सिंह, सर्प, और अग्नि से भी खतरनाक होती है, वह किस पल क्या कर बैठे कुछ नहीं कहा जा सकता । काम रोग से पीड़ित स्त्री अपना विवेक पूर्णतः खो देती है, वह उस नागिन की तरह होती है, जिसको कि अच्छे—अच्छे सपेरे भी वश में नहीं कर पाते ।

मुनि मौन हैं, जब वह कुछ न बोले, तो वह कुछ आगे बढ़ती हुई बोली—देखो! आंख खोलकर देखो! मैं स्त्री होकर भी तुम्हारे पास आई हूँ तुम्हें अपना बनाने आई हूँ । हम दोनों की जोड़ी खूब जमेगी क्योंकि तुम विधुर हो और मैं विधवा..... ।

उसका एक—एक शब्द मुनिराज को कष्ट पहुँचा रहा था, पर वे एक दम शांत रहकर समता धारण करने का ही प्रयास कर रहे थे ।

अब वह कामुक, वाचाल स्त्री पास में आते हुए कह रही थी—इस अंधेरी में हमें कौन देख रहा है । मुनि किसी प्रकार का भय मत करो, आओ जरा मेरे पास आओ, देखो मेरी भड़कती हुई पिपासा को

शांत करो । मुझे प्यास है, तुम्हारे प्यार की । तुम मेरी प्यास को बुझाओ..... । अगर प्यास नहीं बुझी और मैं मर गई तो तुम्हें पाप लगेगा ।

स्त्रियाँ मायाचारी का घर होती हैं, उनके वाग्जाल में अच्छे अच्छे तपस्वी भी फंस जाते हैं, लेकिन जो उनके जाल में नहीं फंसते वे अमर हो जाते हैं । स्त्री को आगे बढ़ते देख अब मुनि सच में कुछ भयभीत होने लगे, अब आत्मरक्षा के लिए उन्होंने मौन रहना ठीक न समझा, वे मौन तोड़कर कहते हैं— माँ मेरे निकट मत आना, मुझे छूना भी मत दूर रहना ।

किंतु वासना से ग्रसित जहरीली नागिन की तरह वह आंखों से मादकता टपकाती हुई आगे बढ़ती है, लेकिन महामुनि के तपोबल के कारण वह उनके निकट नहीं पहुच पाती । काम की अत्याधिक तृष्णा बढ़ने से—उसके शरीर में झुलसन होने लगी । वह अपने अंगोपांग विकृत कर जमीन में लौटने लगी । देह में दाह जैसी बढ़ जाने से वह चीखने चिल्लाने लगी, महाराज शांति मंत्र पढ़ कर उसे सुनाते हैं, तब कुछ समय बाद उसे शांति सी महसूस होती है ।

उसकी काम वेदना को मंद देखकर मुनि उसे समझाते हैं—जम्भा ! तुम एक व्रतधारी महिला हो, किंतु तुमने उस पद की गरिमा को धूल में मिला दिया, क्या किसी व्रती को ऐसे अबांछनीय कार्य करने योग्य होते हैं । ऐसे घृणित भाव तुम्हारे अंदर कहाँ से आ गये, जो तुम अपने व्रतों का भी उल्लंघन करने को तैयार हो गयी ।

यदि तुम्हारे अंदर व्रत पालन करने की सामर्थ्य नहीं तो व्रतों को धारण ही क्यों किया । "व्रत धारण करके उन्हें तोड़ने से सौ गुना अच्छा है कि व्रत धारण ही मत करो ।" जब तुम्हारे अंदर का अब्रह्म नष्ट नहीं हुआ तब बाहरी दिखावा करने से क्या लाभ । यदि तुम्हारे अंदर का कामदेव तृप्त नहीं हुआ तो तुमने इस पथ को ही क्यों अपनाया, क्यों ये त्याग का ढोंग रच रखा है । तुम्हारे कारण दूसरों

की मनोवृत्तियां भी दूषित होंगी ।

कुछ कड़क शब्दों से मुनि राजने उसे फटकार लगाई अंततः समझाते हुए बोले— संयम को प्राप्त कर लेना आसान है, पर उसका उसी रूप में पालन कर पाना बहुत कठिन । संयम धारण कर यदि संयम रूप प्रवृत्ति नहीं की तो वह संयम नहीं ढोंग है । दीक्षा आत्म विराघना के लिये नहीं आत्म साधना के लिए ली जाती है । संयमी कभी अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करता वह तो हमेशा व्रत को विकसित करता है ।

देखो ! जब तक कोई भी बस अथवा गाड़ी सही ढंग से सड़क पर चलती है तब तक उसका कुछ नहीं होता, वह सुरक्षित रहती है, पर वह जरा भी यहां से वहां हुई कि दुर्घटना अवश्यभावी है । यही स्थिति है संयम की ।

संयमी जीव मन को अपनी आत्मा के अनुकूल बनाता है और जो अपनी आत्मा के अनुसार मन को चलाता है, वहीं उन्नति शील संयम का पालन करने में सफल हो पाता है । मन को सम्हालना सीखो । जैसा मन कहता है वैसा मत करो, अपितु जैसा आत्मा के लिए उचित है वैसा मन से करवाओ ।

मन की दौड़ रोकने के लिए ही तो संयम धारण किया जाता है, अगर संयम धारण कर भी मन यथावत दौड़ता रहा, तो क्या लाभ हुआ मात्र बाह्य वेश से । यह इंद्रियों की चपलता क्षणिक है । इनके वेग में बहना मूर्खता नहीं तो क्या है ? तू तो साक्षात् स्त्री है, मैं तो स्वप्न में भी स्त्री से दूर रहता हूँ । एक बार स्वप्न में किसी स्त्री ने मेरे ऊपर रेशमी वस्त्र डाल दिया, मेरी उसी समय नींद टूट गई थी । जब मैं स्वप्न में भी स्त्री परिषह पर विजय प्राप्त करता हूँ, तब तू..... । महाराज उसे समझा रहे थे ।

मुनि नाथ की करुणा पूर्ण भवतारक वाणी सुनकर जंभा अपने ही आंसुओं से कलुषित विचारों का प्रक्षालन कर रही थी । वह पश्चाताप पूर्ण आंसू बहाते हुए बार-बार महामुनि के चरणों में पड़-पड़ कर क्षमा मांग रही थी ।

मुनिराज तो क्षमा के भंडार थे ही, बार-बार विनय करने पर क्षमा कर प्रायश्चित्त देते हुए बोले—जाओ तीन उपवास कर आत्म शुद्धि करो और भविष्य में हमेशा अपने संयम का आत्म जागृति पूर्वक पालन करो । यही दंड और प्रायश्चित्त है । की हुई गलती को पुनः न दोहराना यही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है । जाओ.....जाओ अपनी शुद्धि करो । उसके जाते ही मुनि पुनः ध्यान लीन हो गए ।

X

X

X

महामुनि अत्यंत दयालु प्रकृति के तपस्वी साधु थे । तपस्या के प्रभाव से उनकी शरण में आने वाले प्रत्येक प्राणी को कुछ न कुछ लाभ अवश्य हुआ करता था ।

एक बार की घटना है मुनि राज ध्यान में बैठे थे, कि कोई एक वृद्धा रोती चिल्लाती हुई उसी ओर जा रही थी । श्रावकों ने उसे रोकने का प्रयास किया, पर वह न रूकी । उसने सुन रखा था, कि महामुनि के चरणों से सबके काम बनते हैं । वह भी बरसते पानी और गरजते मेघों में उन्हीं सुनसान गुफाओं की ओर बढ़ती जा रही थी जहां मुनिराज ध्यान लगाया करते थे ।

वह पहुंची, देख मुनिराज तो वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं, वृक्ष से बूंद-बूंद पानी उनके शरीर पर टपक रहा है । वृद्धा अपने मृत पुत्र को उनके चरणों में डालते हुए जोर-जोर से विलाप करने लगी ।

क्षण भर तक कुछ रुककर वह बोली— बाबा ! मेरा विश्वास खंडित हो रहा है । अगर मेरा पुत्र जिंदा न हुआ तो मैं अपनी आज हत्या कर लूंगी । पति तो पहले ही चल बसें, अब पुत्र बिना कैसे जीऊंगी ।

कुछ क्षणों पश्चात् महाराज के शरीर से बहती हुई जलधारा उसके शरीर को स्पर्श करती हुई बहने लगी.....बस फिर क्या था, अद्भुत योगी का चमत्कार हुआ, वह बालक ऐसे उठकर बैठ गया जैसे सोकर उठा हो ।

शायद ! वह किसी भयानक रोग से ग्रस्त था । अब उसका वह रोग भी जाता रहा था । वृद्धा अपने बालक को ले प्रसन्न चित्त से अपने घर की ओर जा रही थी । लोग "चारित्र चूडामणि" की जयजय कार कर रहे थे ।

X

X

X

महाराज की तपस्या से क्रूर पशु भी प्रभावित थे । उनके चरणों में सिंह, नेवला, सर्प, बाघ आदि यदा-कदा बैठे रहते थे । उन्हें उनसे कुछ भी बाधा न होती थी । एक बार कुछ व्यापारी राह भटक गये—वे अपने द्वारा कमाई हुई धन राशि रखने के लिए किसी सुरक्षित स्थान की तलाश में थे, क्योंकि पीछे दस्यु दल उनकी खोज में था । व्यापारी वर्ग को धन और जान दोनों जाने का भय था ।

अचानक किसी एक को ऐसा महसूस हुआ कि यह कोन्नूर का जंगल है और यहां गुफायें भी हैं, क्यों न गुफाओं की खोज कर उनमें ही धन छुपाया जाये ? उसने अपनी योजना अन्य व्यापारियों को बताई, विकट परिस्थिति के कारण सभी ने एकस्वर में उसकी बात स्वीकार कर ली ।

वे सब गुफाओं की खोज करने लगे और वह मिल भी गई । वे अपने प्राण मात्र की रक्षा हेतु कई गुफाओं में गये, किंतु प्रत्येक गुफा में उन्हें दिग्ंबर साधु के दर्शन हुए । वे सब श्रद्धापूर्वक वही एक साधु के पास बैठ गये साधु महाराज का ध्यान टूटा । उनका ध्यान टूटना था, कि व्यापारियों ने अपनी समस्या उनके सामने रखी ।

मुनिराज बोले— भैया ! हम तो त्यागी हैं, पिच्छी कमंडलु के सिवा हमारे पास कुछ नहीं हम धन रक्षा का उपाय क्या जानें ? हां इतना कह सकते हैं, कि और भी कई गहरी, गुप्त गुफायें खाली पड़ी हैं व्यापारियों में एक विशेष समझदार व्यक्ति था वह बोला—क्यों ना । हम खाली गुफाओं में तो माल पटक दे और मुनि बन कर बैठ

जाये, धन और प्राण दोनों की रक्षा हो जाएगी । संकट टलते ही अपने नगर को चल देंगे । सभी ने उसकी बात मानी और तद् रूप किया । उन्हें मालूम था कि डाकू आएँ अवश्य ।

और हुआ भी यही डाकू वहां आ पहुंचे । वह प्रत्येक गुफा में उन व्यापारियों को ढूँढ रहे थे, पर उन्हें प्रत्येक गुफा में साधु ही मिलें । व्यापारियों और धन का कुछ अता-पता ही नहीं था ।

प्रत्येक गुफा में खोजते-खोजते वे पश्चिम दिशा की एक गुफा में गए, देखा एक तेजस्वी मुनि ध्यान लगायें बैठे हुये है । पास ही बैठा है "जंगल का राजा शेर।" सिंह को देखते ही डाकुओं ने बंदूके तान ली ।

किंतु सिंह ने गर्दन उठा कर देखा, और पुनः गर्दन नीची कर ली, डाकुओं के मन से यह दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । एक संत में एक त्यागी में इतनी शक्ति कि सिंह भी साधारण मनुष्य की तरह बैठा रहे । उन्हें अपने आप से घृणा सी हुई कि एक हम है जो निरपराध प्राणियों की धन लोभ में हत्या करते फिरते हैं और एक यह त्यागी देखो, जिनके पास कुछ भी नहीं है ।

नाना प्रकार के विचारों में गोता लगाते-लगाते डाकुओं के सरदार ने मुनि के चरणों में अपने हथियार डाल दिये, उसके अन्य साथियों ने भी शस्त्र डाल दिये ।

महामुनि आदिसागर की ध्यान अवधि भी अब तक पूर्ण हो चुकी थी वे डाकू बेघर- तो थे ही संसार में उन्हें चाहने वाला कौन था, अतः महाराज के उपदेशों से प्रभावित हो, वे उनके ही चरणों में एक श्रावक की भांति रहने लगे ।

उधर जब यात्रियों को यह सब बातें मालूम चली, तो उन्होंने भी सोचा कि नकली मुनि बनकर जब जीवन और धन की रक्षा हो सकती है, तो क्या बास्तविक मुनि बन कर आत्म धन की नहीं हो सकती । वे सब आपस में सलाह करके मुनिकुंजर के दर्शन कर अपने-अपने घर चलें गये, संपूर्ण धन अपने-अपने परिवारों को सौंप दिया ।

कुछ समय पश्चात् एक-एक करके वे सब मुनिराज के चरणों में आ जाते हैं । डाकू तो इन छह-सात महीनों के अंदर मुनि बन चुके थे, और वे भी घोर तपस्या करने लगे थे । समस्त व्यापारियों ने भी महामुनि से यथायोग्य दीक्षा ग्रहण की ।

महामुनि के उपदेशों से वे सब अत्यधिक प्रभावित थे । उनकी आज्ञानुसार ही सब की चर्या चलती थी । सभी अधिकांशतः ध्यान किया करते थे । अब उन व्यापारियों को न डाकूओं से भय था, और न डाकूओं को धन की चाह । महामुनि के प्रभाव से वे दोनों ही शाश्वत धाम की प्राप्ति कराने वाले मुनि पद को ही अंगीकार कर चुके थे । अब उन्हें मात्र आत्मोद्धार ही करना था । कर्मों का ही सफाया करना उनके लिए शेष था ।

## १३

समय की गति को कोई न तो आज तक थाम ही सका है और न ही थाम सकता है । वह तो अपनी चाल से चलता है, चलता था, और चलता रहेगा । शिवगौड़ा अपने इस काल के अन्तराल में लौकिक जीवन में जग विख्यात हो चुके थे, तो अध्यात्मिक जीवन में आत्मा से परिचित ।

इस समय वे कुम्भोज बाहुबली में ही तपस्यारत थे । हमेशा ज्ञान ध्यान तप में लीन रहना, उनका स्वभाव सा बन गया था । चर्या वही जो पहले थी । एक दिन महामुनि के पास एक क्षुल्लक जी का आगमन हुआ । उन्होंने आकर मुनि श्री को बंदना पूर्वक नमस्कार किया ।

महामुनि भी अपने शिष्य को पहचान गए । उन्होंने उनसे समाचार पूछते हुए कहा— तुम तो भोजग्राम वासी भीमगौड़ा हो, ना ?

उत्तर में क्षुल्लक जी ने आघोपांत संपूर्ण कथा सुना डाली, वह क्षुल्लक कैसे बन पाए यह भी निश्चय भाव से प्रकट कर दिया ।

महामुनि बोले—बहुत दिनों के अन्तराल से आये हो..... ।

कुल्लक जी बोले— हां, गुरुदेव बहुत समय हो गया, आज आपके दर्शन पा धन्य हो गया । अब इन चरणों में आ गया हूं, अपने साध्य को पा सकूंगा । साधना तो कर ही रहा हूं गुरुदेव! अब तो भव पार उतरने की ही लगन लगी है ।

महाराज बोले— साधना बढ़ाते चलो और बढ़ते चलो मुक्ति पथ पर अवश्य अपने लक्ष्य को पा जाओंगे । वैसे भी तुम स्वयं ही इतने सक्षम हो कि अब निर्ग्रन्थ पद अंगीकार कर धर्म प्रभावना कर सकते हो । और फिर ज्ञान भी तो तुम्हें अच्छा है ।

नहीं गुरुदेव ! गुरु बिना ज्ञान कैसा ? इन पावन चरणों से तो वास्तविक ज्ञान मिला । अगर इन चरणों की सेवा न की होती तो आज इस पद को नहीं पा पाता ! अब तो गुरुदेव एक ही इच्छा है, इन पावन चरणों में रहने की ।

रहो ! साधना करो और करना भी क्या है । हाँ कभी—कभी आहार चर्यार्थां जाना पड़ता है, सो वह तो किसी भी गाँव में कर आर्येंगे । और फिर यहां भी श्रावकों की कौन सी कमी है ।

गुरु आज्ञा पा कुल्लक शांति सागर जी उनके ही पावन चरणों में रहने लगे । पहले ही वे उनकी आदर्श चर्या को अपना आदर्श बना चुके थे । अब उनके निकट रहने से और भी साधना में वृद्धि हुई थी ।

उनके आचरण से प्रभावित हो महामुनि ने एक दिन उन्हें ऐलक दीक्षा प्रदान कर दी । अब ऐलक शांतिसागर महाराज गुरु के पदों का अनुसरण करने लगे थे । गुरु जगणों में रहते हुए उन्हें बहुत समय हो चुका था । एक दिन उनके मन में गिरनार जी की वंदना करने का विचार आया । गुरु आज्ञा लेकर, वे गिरनार जी की वंदना को चल दिये ।

X

X

X

महाराज आदिसागर जी संघ सहित पद बिहार करते हुए एक गांव में पहुँचे । वहां श्रावकों के आग्रह पर कुछ दिन के लिए रुके । उनकी तपस्या और चर्या प्रत्येक गांव में उनके पहुंचने के पहले ही ख्याति फैला देती थी । महाराज जी के पास दूसरे ही दिन एक वृद्ध बुढ़िया आई । जिनेन्द्र भगवान और गुरु में उसकी तीव्र निष्ठा थी । शास्त्र सुनना भी उसे अच्छा लगता था । लेकिन वहां रोज शास्त्र वाचन ही नहीं होता था ।

दर्शन, वंदन कर वृद्धा महाराज से सरल शब्दों में बोली— महाराज ! मुझे भी दीक्षा दे दो, मेरा भी उद्धार हो जाएगा ।

महाराज उसकी अत्यंत वृद्धावस्था देखकर बोले—मां जी, अब दीक्षा लेने का नहीं समाधि लेने का समय है । समाधि मरण की भावना भाओ ?

—महाराज ! न जाने वह कौन सा दिन होगा जिस दिन इस काया के बोझ से मुक्ति मिलेगी । कुछ परेशानी पूर्ण शब्दों में बुढ़िया बोली ।

—मां जी धर्म ध्यान में मन लगाओ, पंच नमस्कार मंत्र ही एक मात्र शरण है उसका ध्यान करो ।

—महाराज जी ! वह तो मैं रोज ही दिन में तीन बार करती हूँ । कुछ और बताइये, जिससे मैं जीवन का उद्धार कर सकूँ ।

महाराज बोले— कंदमूल आदि का त्याग करो और रात्रि भोजन रात्रि पानी का भी त्याग कर दो ।

—वह तो मेरा त्याग है ही, महाराज वर्षों से मैंने भोजन तो ठीक रात्रि में पानी भी नहीं पिया । कुछ दिनों से एकाशन शुरू कर दिये हैं

महाराज बोले— मां जी, तुम तो स्वयं दीक्षित सी हो, अब क्या दीक्षा दूँ । तुम इन्हीं व्रतों का सम्यक् तथा पालन करो और हमेशा समाधि मरण की भावना रखो । इस वृद्ध अवस्था में वृद्ध भी बालक तुल्य अनर्गल प्रवृत्ति करने लगते हैं । इस अवस्था में इतने व्रतों का पालन करना कोई आसान काम नहीं है । मां जी, अवश्य ही तुम्हारी भावना सफल होगी ।

वृद्धा ने अपने व्रतों का नियम रूप कर लिया और आशीर्वाद लेकर चली गयी ।

बुढ़िया की बातों से महाराज भांप गये थे कि बुढ़िया अवश्य दुःखी है । उसके जाते ही, उन्होंने वहीं बैठे हुए एक व्यक्ति को बुलाया और पूछा—भाई ! तुम उस बुढ़िया से परिचित हो ।

व्यक्ति ने उत्तर दिया हां, उससे तो परिचित हूं, ही उसके संपूर्ण परिवार से भी परिचित हूं, वर्षों से उसके ही पड़ोस में रहता हूं ।

महाराज बोले—इसके परिवार में कौन कौन है ?

—यही बुढ़िया मां, उसका इकलोता बेटा, बहू और दो पोते

—क्या बहू मां की सेवा करती है ? महाराज ने पुनः पूछा ।

“ नहीं महाराज..... बुढ़िया मां की उसकी सेवा करनी पड़ती है, वह क्या करेगी । बड़ी कर्कशा स्त्री है । इस बहू के आने के बाद ही बुढ़िया को इतने दुःख देखने पड़ रहे हैं । जब इस वृद्धा का पति था, तो यह बड़े सुख में थी । अपने पति के राज्य में सेठानी की भांति रहती थी । किसी को कष्ट नहीं देती थी, सबकी यथा शक्ति सहायता करती थी । पर पति के मरने के बाद जबसे बेटे की शादी हुई है तब से ही यह बुढ़िया मां, नौकरानी की तरह हो गई है और फिर जब तक शरीर में ताकत थी, तब तक तो कुछ सुखी भी थी, पर अब तो यह अपनी ही बहू से बड़ी दुःखी है । घर के पीछे एक कोठरी में खाट डाल दी है और रोज एक कटोरी आटा दे दिया करती है । बेचारी बुढ़िया बड़ी दुःखी है, नमक रोटी खाकर गुजारा करती है । घी, तेल, दूध, दही, साग, सब्जी का तो स्वतः ही त्याग हो गया ।

महाराज बोले— बेटा कुछ नहीं कहता ।

—बेटा क्या कहे ? वह तो अपनी पत्नि के रूप यौवन पन्थौछावर है । वह भी उसका दास जैसा बना फिरता है । पत्नि ने जो कहा, वही वह करता है । जब से पत्नि आई है, तब से तो वह पालन पोषण करने वाली मां को भी भूल गया है लड़का भी कैसा निकला, जिसे माँ के सुख-दुःख का भी बोध नहीं और है भी तो, कोई मतलब नहीं ।

महाराज बोले— भैया सब कर्माधीन है । कोई किसी का क्या कर सकता है ।

—महाराज ! मात्र कर्मों का भी तो दोष नहीं है, अगर आप उसके लड़के बहू को समझाये तो वृद्धा का जीवन सुखी बन सकता है । वैसे श्री परिवार कोई लंबा-चौड़ा तो है नहीं कि दूसरे परेशान करते हो । महामुनि ने बुढ़िया की दयनीय स्थिति देखी थी, अतः वे बोले—ठीक कल तुम इनके परिवार को ले आना ।

चूँकि महामुनि हमेशा धर्मध्यान में लगे रहते थे, इन्हें किसी से कोई मतलब न था । फिर भी किसी धर्मात्मा का जीवन बिगड़ता देख, दया के वशीभूत हो उन्होंने बुढ़िया के बेटे-बहू को समझाने के लिए बुलाया था । वे गृहस्थों से हमेशा दूर रहते थे, जब कभी कोई गृहस्थ उनके पास अपनी समस्या लेकर आए तो वे कहते—भैया हम तो गृहस्थी छोड़ चुके । हम से अब गृहस्थी की नहीं ज्ञान और ध्यान की बात पूछो ।

X

X

X

महाराज श्री का प्रवचन चल रहा था । यह गृहस्थ धर्म में अहिंसा कैसे पले ? इस विषय पर श्रावकों को समझा रहे थे । कहें थे—आचार और विचार व्यक्तित्व के समान शक्ति वाले दो पक्ष हैं दोनों अन्योन्याश्रित हैं । विचारों के आधार पर ही हमारा आचरण पलता है तथा आचरण से ही विचारों में स्थिरता आती है । इन दोनों पक्षों के सन्तुलित विकास होने पर ही व्यक्तित्व का विशुद्ध विकास होता है । इस प्रकार के विकास को हम ज्ञान और क्रिया का विकास कह सकते हैं, जो दुःख मुक्ति के लिए अनिवार्य है ।

आचरण में अहिंसा का होना अनिवार्य है । इसे भगवान महावीर स्वामी ने परम धर्म कहा है । शरीर से किसी को कष्ट पहुंचाना तो पाप है ही, वचन से भी इस प्रकार की प्रवृत्ति करना, जिससे किसी को कष्ट हो, पाप है । मन में दूसरे का बुरा विचारना भी पाप है । मन,

वचन, काय से किसी भी प्राणी को कष्ट से बचाये रखना ही सच्ची अहिंसा है। हिंसा के मुख्यतः चार भेद हैं— संकल्पी, आरंभी, उद्योगी और विरोधी।

संकल्प पूर्वक किसी जीव का घात करना अथवा उसे कष्ट पहुंचाना, संकल्पी हिंसा है। कसाइयों द्वारा प्रतिदिन सैकड़ों पशुओं को मौत के घाट उतार दिया जाता है, यह भी संकल्पी हिंसा है। आतंकवाद, जातीय संघर्ष, साम्प्रदायिक दंगों एवं अपने मनोरंजन के लिए अथवा मांसाहार के लिए शिकार आदि करना भी इस संकल्पी हिंसा के अंदर ही आता है। धर्म के नाम पर की जाने वाली पशुओं की बलि भी इसी संकल्पी हिंसा की कोटि में आती है। घरेलू काम-काजों में दैनिक कार्यों के निमित्त से जो हिंसा होती है वह आरम्भी हिंसा कहलाती है। उसके अन्तर्गत, भोजन बनाना, झाड़ू लगाना, नहाना-धोना आदि क्रियायें आती हैं।

गृहस्थ को अपना गृहस्थ जीवन चलाने के लिए अर्थोपार्जन आवश्यक है। उसके लिए खेती-बाड़ी, नौकरी, व्यवसाय अथवा उद्योग आदि करना पड़ते हैं। इनमें होने वाली हिंसा उद्योगी हिंसा कहलाती है। अपने तथा कुटुम्बियों के जान-माल की रक्षा के लिए अथवा धर्म, धर्मायतन, तीर्थ, मंदिर, एवं सन्तों पर आने वाली वाधाओं के निराकरण के लिए तथा अपने राष्ट्र की अस्तित्व की रक्षा करने के लिए आतताइयों अथवा आक्रमण कारियों से मुकाबला करते हुए जो हिंसा होती है, वह विरोधी हिंसा कहलाती है।

गृहस्थ के द्वारा चारों प्रकार की हिंसा का त्याग हो पाना संभव नहीं है। उसको अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आरंभी उद्योगी हिंसा करनी ही पड़ती है। अतः उक्त दोनों प्रकार की हिंसा उसके लिए अपरिहार्य है। योग्य कार्य के अलावा वह यद्वा-तद्वा कार्य नहीं करता है। वह अपनी प्रत्येक क्रिया में पूर्ण सावधानी रखता हुआ यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करता है। उस प्रकार के व्यवसाय को वह भूलकर भी नहीं करता जिससे जीवों की अधिक हिंसा होती हो, साथ ही बहुजीव - बधकारी उद्योग भी वह कभी नहीं

खोलता है ।

इसी तरह विरोधी हिंसा से भी वह नहीं बच पाता है । यद्यपि वह स्वयं किसी से भी अकारण बैर विरोध नहीं लेता, किंतु यदि कोई उस पर आक्रमण करे तो वह उससे बचने के लिए डटकर मुकाबला करता है । आक्रमणकारी, आततायी, अत्याचारी का सामना कर उसे सबक सिखाना ही गृहस्थ की विरोधी हिंसा का अभिप्रेत अर्थ है ।

वह उसके लिए क्षम्य है । उसके बिना समाज में अराजकता बढ़ जायेगी यदि कोई देश पर आक्रमण कर हमारे अस्तित्व को चुनौती देता है, तो इस भावना से कि इसे व्यर्थ में खून बहेगा, डरकर मुंह छुपाना अहिंसा नहीं कायरता है, अहिंसा कायरता नहीं, वीरों का आमूषण है, क्षत्रियों का धर्म है ।

महाराज कह रहे थे—प्रत्येक श्रावक को यथाशक्य हिंसा से बचना चाहिये यह बात सत्य है, किंतु कर्तव्यों से नहीं मुकरना चाहिए । हिंसा के त्याग से मतलब यह नहीं कि पूजन के लिए द्रव्य धोना और दीपक जलाना भी बंद कर दिया जाये । कर्तव्यों अथवा जीवन से पलायन करना अहिंसा नहीं है, अपितु व्यवहारिक जीवन को सन्तुलित बनाकर स्व और पर के घात से बचने का उपाय है ।

महामुनि के शब्द जन समुदाय को सहजतः ही समझ में आ रहे थे । सभी मंत्र मुग्ध से उनकी वाणी को सुन रहे थे । उन्होंने अपनी वाणी को विराम देते हुए कहा था— अहिंसा जीवन का प्रकाश है अतः इस अहिंसा के दीपक को जीवन में अवश्य प्रज्ज्वलित करना ।

आज उस वृद्धा मां का पूरा परिवार भी प्रवचन सुन रहा था । प्रवचन सुनकर उस बुढ़िया की बहू विशेष उद्वेलित हुई थी । लेकिन जब वह इस मार्ग पर चलने में अपने आपको असमर्थ पा रही थी, तब उसने यही सोचा कि यह तो उपदेश है, आखिर कौन चलता है इन उपदेशों पर, खैर.....जो भी है मुनिराज का आशीष तो ले ही लूं, रोज थोड़े ही आ पाती हूं ।

अब तक अधिकांश श्रावक जा चुके थे । उसने बंदना कर आशीर्वाद प्राप्त किया और बैठ गई ।

महाराज ने पूछा—मंदिर जाती हो ।

उत्तर मिला— जी महाराज, जब कभी समय मिल जाता है, तब चली जाती हूँ । प्रायः रोज ही जाती हूँ ।

—परिवार में कौन-कौन है ।

—हम सब आपके सामने है एक वृद्धा सास भी है ।

—क्या अपनी सास की सेवा करती हो..... ।

—कुछ संकोच करती हुई वह स्त्री बोली— हाँ, हाँ ! करती हूँ ।

महाराज बोले— ठीक है ! वृद्धों की सेवा तो करना ही चाहिए । आज जिस प्रकार हम अपने वृद्ध माँ — बाप अथवा सास — ससुर की सेवा करेंगे वैसी ही कल हमारी होगी । अच्छी तरह सेवा करना, जैसी तुम सेवा करोगी, वैसी ही तुम्हारी होगी । यह बात पूर्णतः सत्य समझो ।

जैसे ही महाराज के यह शब्द बहू के कानों में पड़े, उसके कान ठंडे पड़ने लगे । अब वह तुरंत वहां से उठी और घर की ओर चल पड़ी । उसके मन में उथल-पुथल मची थी । संत के वचन कभी झूठ नहीं होते, मैंने आज तक क्या और कैसी सेवा की वह तो मैं ही जानती हूँ । मैंने क्या-क्या अनर्थ कर डाला..... । आदि-आदि बातें उसके मन में घूमने लगी ।

घर पहुंच कर उसने आगे वाले कमरे में सफाई कर के पलंग बिछा दिया और कबाड़खाने से माँ को वहां ले आई । अच्छा-अच्छा भोजन बनाया पर बुढ़िया ने तो एकाशन करने का और सबरस त्याग का नियम ही ले लिया था । वह अब नमक रोटी में ही संतुष्ट थी । उसकी कषायें भी एकदम मंद थी । आज तक कभी भी उसने बहू पर न तो अधिक क्रोध ही किया था और न ही उस पर मनमाने आरोप ही लगाए थे । गलतियों का पश्चाताप करते हुए उसने सासु से क्षमा मांगी ।

वृद्धा बोली— बहू ! इसमें तेरा क्या दोष है । ये सब तो मेरे पूर्व कृत कर्मों का उदय था, जिसे भोगना ही था । तू तो मात्र निमित्त बनी और फिर मुझे उस कबाड़ खाने जैसे एकांत में धर्म ध्यान—जप आदि का लाभ ही तो हुआ हानि तो कुछ भी नहीं हुई । वहां रहने से दिन भर जाप करना, धर्म ध्यान करना ही होता रहता था । शुद्ध भोजन करने से मन में भी शुद्धता की वृद्धि हुई । एकांत में सबसे बड़ा एक लाभ यह भी हुआ कि झगड़े—झंझटों से बची— नहीं तो मुंह चलता ही रहता । बहू ! तूने तो मेरे साथ अच्छा ही किया है । अब मेरे नियम मत तुडवाओं मैंने तो अब सभी रसों और बार—बार भोजन करने का त्याग ही कर दिया है । और अब मुझे जीवन की अंतिम साधना करने में सहयोग करो ।

वृद्धा के वात्सल्य और क्षमा मिश्रित वचन सुनकर बहू लाज से गढ़ सी गई । पश्चाताप मन का तो पहले ही हो चुका था, अब वह अपने पूर्व कृत अपराधों को आंखों के पानी से धो रही थी । कह रही थी—मां मुझे क्षमा कर दो अब मैं तुम्हें कभी कष्ट न दूंगी । धन्य है तुम्हारी क्षमा को और धन्य है तुम्हारे मन को जो कभी भी विरोध में खड़ा न हुआ ।

बुढ़िया बोली— बहू ! धन्य मैं नहीं हूँ, धन्य तो वह है जिन्होंने मुझे यह सत्यथ दिया, मेरी आँखें खोली । जिस भोजन को मैं दुखी मन से करती थी, वहीं मेरे व्रत का साधन बन गया । मैं तो उन गुरुदेव को हमेशा याद करती हूँ, जिनके प्रसाद से इतनी समता सीखी है ।

बहू तू व्यर्थ में मत रो, तू तो मेरे पुण्य की भागी है । तेरे कारण ही तो मैं इन सब क्रियाओं का पालन करने में समर्थ हो पाई ।

अब सास — बहू का जीवन एक गाड़ी के दो पहियों जैसा चलने लगा था । वृद्धा की साधना भी बढ़ी थी, और बहू की सेवा भी शायद ! निराकुल परिणामों से वृद्धा अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही थी ।

आधि, व्याधि और उपाधि यह तीनों एक समान ही कष्ट पहुंचाने वाली है । अर्थात् व्यक्ति अगर इनकी ओर उपयोग रखता है, तो उसे दुःख अवश्य महसूस होता है ।

महामुनि की तपश्चर्या के कारण आधि, व्याधि तो उनसे दूर ही रहती थी, पर उपाधि—दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी । चूंकि उन्हें उपाधियों से कोई मतलब नहीं था । वे तो कभी उनकी ओर ध्यान भी नहीं देते थे, पर उनके गुण उपाधियों को आमंत्रण दे रहे थे ।

मुनिकुंजर बिहार कर रहे थे, एक बड़ा शिष्य समुदाय भी उनके साथ था । वे विहार करते हुए जयसिंगपुर पहुंचे । वहां के राजा ने और अन्य विशेष अधिकारियों ने उनकी अगवानी की तथा वहां रूकने का निवेदन किया । महाराज ने सहजतः कुछ दिनों तक रूकने की स्वीकृति दे दी ।

महामुनि को पहले ही बहुत पदवियां दी जा चुकी थी पर मुनिसमुदाय का सर्वोत्कृष्ट पद आज तक वर्षों से किसी को नहीं मिला था, जो उन्हें, उनके विशाल शिष्य समुदाय एवं श्रेष्ठीजनों ने दिया ।

आचार्य योग्य, समस्त गुणों के सागर, महामुनि को एकश्रुत पंचमी के दिन इस सदी का प्रथम आचार्य पद प्राप्त हुआ । अब समस्त शिष्य और भक्तगण उन्हें आचार्य श्री आदिसागर जी के, नाम से पुकारने लगे थे । महामुनि इन आधि व्याधि और उपाधियों का जरा भी ध्यान न रख अपने आत्मध्यान में ही लगे रहते थे ।

संपूर्ण श्रावक एवं श्रमण समाज ने मनोभावना पूर्वक महामुनि को आचार्य पद प्रदान किया ।

उन्होंने आचार्य पदाभिषेक के पश्चात् आए हुए विशाल समुदाय को संबोधित करते हुए, एक सूत्र कहा, जिसमें उपस्थित शासको

एवं सामन्त गणों ने राष्ट्र के नाम संदेश के रूप में स्वीकार किया ।

आचार्य श्री ने कहा— प्राणियों की हिंसा करने से दुःख होता है । देश में सुख, शांति की स्थापना करने के लिए, राग—द्वेष, अत्याचार अनाचार, अनीति अन्याय से रहित सर्वव्यापी अहिंसा धर्म की शरण लेना ही श्रेयकर है ।

उन्होंने अपने राजकीय संदेश में कहा—तपोमय, त्यागमय, आत्मनिष्ठ श्रेष्ठ जीवन से आध्यात्मिकता का सच्चा साम्राज्य समस्त विश्व में स्थापित हो सकता है व संसार की राजकीय कठिनतम समस्याओं का सुलझना बन सकता है । “निर्ग्रथ तपोधन का विचरण निराबाध रूप से सारे विश्व में होने पर मानव को शांति और सुखमय जीवन प्राप्त होगा ।

संसार, शरीर, भोगों से पूर्णतः विरक्त दिगंबर जैनाचार्य ने “अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा को” आदेश देते हुए कहा था—ग्रह प्राणी संसार में बाह्य पदार्थों से अपने जीवन में आत्मिक सुख मानता आ रहा है यही मिथ्या तत्व का प्रचार—प्रसार हो रहा है मनुष्य आध्यात्मिकता की आड़ लेकर सत्यता को छोड़ कर चल रहा है जिसको चाहे उसको देव मनवाया और माना जा रहा है । गुरु का जिसमें नगण्य लक्षण है उसको गुरु मन वाया और माना जा रहा है, हिंसात्मक वाणी में सुख बताया जा रहा है और हिंसात्मक क्रियाएं करवायी और की जा रही हैं ।

ऐसी परिस्थिति में श्री अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा को मेरा आदेश है कि इस मिथ्यात्व का उन्मूलन करने के लिए, तथा यथार्थता को सामने लाने के लिये चैत्यालयों के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करें, जिन प्रतिमाओं को बनवा कर प्रतिष्ठा करवाने के लिये प्रोत्साहित करें, तथा दिगंबर मुद्राधारियों के बिहार करने में होनी वाली बाधाओं को दूर करें ।

महामुनि सदा ही भव्य जीवों के हित की बात किया करते थे । वे स्वयं तो तत्परता से पंचाचार का एवं संपूर्ण साधु चर्या का स्वयं तो पालन करते ही थे—साथ ही साथ अपने शिष्यों को भी कराते थे ।

उनके व्यवहार आदि गुण प्रशंसनीय हुआ करते थे ।

X

X

X

उनकी साधना के सामने क्रूर से क्रूर जानवर भी झुक जाते थे। शेर तो यदा—कदा उनकी वंदना को आता ही था, सर्प और बाघ आदि भी उनके चरणों की रज ले जाया करते थे ।

जयसिंगपुर से एक दिन समस्त संघ के साथ महाराज बिहार कर गए । लगातार बिहार करते हुए वे एक गांव में पहुंचे । समस्त संघ जिन मंदिर में रुका और वे स्वयं जाकर शमशान में ध्यान पूर्वक खड़े हो गए ।

वे ध्यान में लीन थे, किंतु उनकी ख्याति चारों ओर घूम रही थी । सब जानते थे कि दया के भंडार महामुनि के प्रभाव से हर प्रकार के कष्ट दूर हो जाते हैं । एक वृद्धा के बालक को सर्प ने सलिया था । एक मात्र संतान होने से बुढ़िया भी अपने प्राणों की आहुति देने पर तुली थी । वह कहती थी कि अगर मेरा लड़का ठीक न हुआ तो मैं भी मर जाऊँगी ।

वृद्धा पुत्र के पूर्णतः अचेत शरीर को लेकर के महामुनि के पास पहुंची । अब तक लड़के का शरीर रंग बदलने लगा था । उनके चरणों में उसे डालकर वह रोने चिल्लाने लगी पर महामुनि अपनी साधना में खड़े रहे, उनके चेहरे पर जरा भी बदलाव न आया ।

जब कुछ देर तक कुछ न हुआ तो वृद्धा हताश हो कहने लगी—बड़ी आशा लेकर आई थी इन चरणों में । लेकिन यहां भी कुछ नहीं हुआ तो अब दुनियां में कोई दवा नहीं है, जो मेरे बेटे को ठीक कर सके । मुनिराज! अगर बेटा ठीक न हुआ तो श्रद्धा टूट जाएगी, मैं बेटे बिना पंगु हो जाऊँगी । फिर जीकर करूँगी क्या ? वृद्धा सिर पर हाथ लगाकर बैठ गई, अब तक तो कुछ लोग भी वहां एकत्रित हो चुके थे । अचानक महामुनि के चरणों से कुछ जल कण निकले और वे उस मृत तुल्य बालक पर बड़े, वह कुछ समय में उन जलकणों का स्पर्श

पा स्वस्थ हो जाता है । जहर दूर हो जाता है ।

वृद्धा महामुनि का उपकार मानती हुई, घर चली जाती है । इस घटना के माध्यम से महामुनि प्रत्येक व्यक्ति की श्रद्धा के भगवान बन गए थे । पर न उन्हें तब कोई मतलब था और न अब ।

X

X

X

महाराज अपनी साधना में निष्णात रहते हुए श्रवण बेलगोला भगवान बाहुबली के दर्शनार्थ बढ़ रहे थे । वे प्रत्येक नगर में जिनधर्म की प्रभावना कर रहे थे ।

वे किसी नये गांव में प्रवेश कर रहे थे, कुछ धार्मिक व्यक्ति उनके चरणों में पहले ही पहुँच चुके थे । महाराज नगर की ओर बढ़ रहे थे । कि कुछ असामाजिक तत्वों ने भी उनके आने का समाचार सुन रखा था । अतः वे वहां उपद्रव करने के लिए आ पहुँचे । मार्ग रोककर खड़े हो गए और दिगंबरत्व की निंदा करने लगे ।

जब वातावरण कुछ तनाव ग्रस्त होने लगा, श्रावक भी उन क्रूर तत्वों से मिड़ने की तैयारी करने लगे, तब महाराज एक सिंह जैसी गर्जना करते हुए बोले— तुम सब मेरे स्वागत को आये हो पर मैं इन विरोधी बंधुओं को ज्ञान कराने आया हूँ । तुम लोग इनसे झगड़ने पर उतारू हो, पर यह तो सोचो कि यह दिगंबरत्व की रक्षा है अथवा अरक्षा । झगड़ने के स्थान पर इन सबको समझाना अच्छा है ।

यह इनका दोष नहीं है, कि यह उपद्रव कर रहे हैं, दोष है सत्य की प्रकृति का । व्यक्ति झूठ को सहजतः स्वीकार कर लेते हैं पर सत्यको बहुत ही कम व्यक्ति स्वीकार कर पाते हैं । सत्य की साधना भी कठिन होती है और उसका भेष धारण करना और भी कठिन होता है । और फिर जब तक हमें सत्य की जानकारी नहीं होती है, तब तक उस तत्व को स्वीकार करना भी तो नहीं बन पाता है । यह सब मुनि चर्या से अपरिचित है, इसलिए ही इन्होंने हमें रोका है । इसमें इनका कोई भी दोष नहीं है ।

महाराज की बात सभी व्यक्ति बड़े ध्यान से सुन रहे थे, वे आगे कह रहे थे— भैया ! जब ये हमारी निंदा करते हैं, नगर में जाने से मना करते हैं, तो हम वापिस चले जाएँगे, किसी दूसरे नगर में भी तो जा सकते हैं, वहाँ जाना कोई जरूरी थोड़े ही है, चलो भैया ! लौट चलें ।

महाराज के चंदन तुल्य वचन उनके मन पर भी पूर्ण प्रभाव दिखा रहे थे । वे महाराज के मुख से लौटने की बात सुनकर और भी प्रभावित हुए, सब के सब रास्ते से अलग हो गए, उनमें से एक बोला—महाराज ! हमें आपसे नहीं आपकी नग्नता से कष्ट होता है । क्या एक लंगोटी धारण करके आपके धर्म का पालन नहीं हो सकता ?

महाराज समझाते हुए बोले— भैया कितनी ही तपस्या कर लो बिना नग्नता के मुक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि वस्त्र सहित व्यक्ति के मन में विभिन्न प्रकार के विकल्प रहते हैं । जिस कारण वह कभी भी समता रूप समस्त परिणामों को प्राप्त नहीं कर पाता । जब तक एक धागा मात्र भी परिग्रह होगा, तब तक मुक्ति नहीं हो सकती । नग्न होना अशिष्टता नहीं वह तो प्रकृति की देन है, शरीर का श्रंगार है ।

दिगंबर शब्द की व्याख्या करते हुए महाराज कह रहे थे— दिगंबर शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है दिग् और अम्बर, अर्थात् दिशाएँ ही जिसके अंबर (वस्त्र) है, वह दिगंबर है । शारीरिक विकृतियाँ छिपाने के लिए वस्त्रों का प्रयोग किया जाता है, जिसके अंदर विकार ही नहीं, उसे वस्त्र की क्या आवश्यकता । बताओ, नन्हें नन्हें बालक नग्न घूमते रहते हैं, उन्हें कोई टोकता है क्या ? नहीं । इसलिए कि उनके अंदर कोई विकार नहीं है । वह तो सहजतः निर्मल प्रवृत्ति वाले हैं । उन बालकों जैसे ही होते हैं, दिगंबर साधु जिनके अंदर कोई विकार नहीं होता ।

जिनके अंदर विकार है, वे कभी वस्त्र और वस्त्र वालों का विरोध नहीं करते और न ही कहते हैं कि तुम वस्त्र पहिन कर क्यों घूमते हो लेकिन नग्नता और नग्न व्यक्ति का विरोध करते हैं क्योंकि उन्हें भी वे अपने जैसा ही समझते हैं । जबकि उन्हें यह ज्ञान होना

चाहिए, कि अज्ञानी तो वस्त्रों के पीछे अपनी काम-वासना को छिपाते और ज्ञानी जन उस वासना को नष्ट करते हैं। महाराज की बात पूर्ण होते ही एक व्यक्ति बोला—महाराज आपकी बात सत्य हैं पर मुक्ति तो जप, तप से होती है न कि नग्नता से ?

महाराज बोले— भैया ! यह ठीक है कि मुक्ति जप, तप से होती है, पर वह जप, तप भी तो निर्विकल्प, शुद्ध रूप से होना चाहिए । जब तक हमारे पास जरा सा भी परिग्रह रहता है, हमारा मन उसी ओर दौड़ता है । मन को रोकने के लिए नग्नता आवश्यक है । मन अपनी प्रिय वस्तुओं की ओर दौड़ता है, जब वस्तु ही नहीं होगी तो मन कहाँ जाएगा । और जब कहीं जा न सकेगा तो जप-तप में अवश्य ही लगेगा ।

सभी विरोधी व्यक्ति महाराज से अत्याधिक प्रभावित हो चुके थे । उनकी तपश्चर्या की बातें भी उन्होंने सुन रखी थी । अंततः महाराज को नमस्कार करते हुए उन्होंने अपने किए, अपराधों की क्षमा मांगी और भविष्य में कभी ऐसी गलती न होगी कहकर महाराज के पीछे हो लिए ।

बड़ी प्रभावना के साथ एक बड़े जनसमुदाय को लिये महामुनि श्री आदि सागर जी ने उस नगर में प्रवेश किया । चारों ओर महाराज जी की जय-जयकार हो रही थी ।

X

X

X

ख्याति लाभ-पूजा से दूर निर्ग्रन्थ तपस्वी बिना किसी भार के संसर्ग पद विहार करते हुए श्रवण बेलगोला की ओर बढ़ रहे थे । कंकरीले-पथरीले, कष्टकाकीर्ण मार्ग पर चलना उनका स्वभाव सा बन गया था । वे प्रायः राज (मुख्य) मार्ग पर न चल कर उन पगडंडियों पर चला करते थे, जिन पर पद विहारी ग्रामीण व्यक्ति चला करते थे । चर्या परिषद को सहन करना उनके आत्मबल का प्रतीक था । जब कभी कंकड - पत्थर, कांटे चुम जाया करते थे, लेकिन महामुनि अपने

हाथ से उन्हें अलग करने की चेष्टा कभी नहीं करते थे ।

छोटे-बड़े रास्तों को पगों से नापते हुए गुरुदेव आचार्य श्री आदिसागर जी महाराज श्रवणबेलगोला पहुंच रहे थे । उनके श्रवण बेलगोला पहुंचने का समाचार दिग्-विदिगंतरों से बड़ी तेजी से फैल चुका था, अतः पहले ही वहां शताधिक श्रावक एकत्रित हो चुके थे ।

महाराज के नगर प्रवेश के समय श्रवण बेलगोला मठ के मठाधीश (स्वामी) मुनि देवप्पा स्वामी जी कई श्रावकों के साथ प. पू. महा मुनि को ससंघ लेने के लिए आये । बड़ी प्रभावना के साथ प्रवेश हुआ ।

महामुनि की सम्यक् चर्या से मुनि कहलाने वाले मठाधीश स्वामी देवप्पा भी अत्याधिक प्रभावित हुए । वे मुनि कहलाने पर भी मुनि की चर्या से कोषों दूर थे । उन्हें मुनि के मूलगुणों का पालन भी अच्छी तरह नहीं आता था ।

दिगंबर मुनि स्वयं केशलौच करते हैं अर्थात् सिर, दाढ़ी, मूँछ के संपूर्ण बालों को वे अपने हाथ से उखाड़ते हैं, परंतु देवप्पा स्वामी कुछ केशों (बालों) को हाथ से उखाड़ते, बाकी अधिकांश केशों को वे कैंची से कटवा देते थे । दिगंबर मुनि सदैव बालक व्रत यथाजात रूप में रहते हैं अर्थात् रंच मात्र भी वस्त्र धारण नहीं करते परंतु देवपा स्वामी अधिकांशतः वस्त्र लपेट लिया करते थे । सामायिक, आहारादि के समय उतार दिया करते थे ।

दिगंबर साधु कभी स्नान नहीं करते परन्तु देवप्पा स्वामी कदाचित् स्नान भी कर लिया करते थे । दिगंबर मुनि छयालीस दोषों को टालकर आहार करते हैं, पर स्वामी जी या तो अन्तराय ही नहीं करते थे या अन्तराय न हो इसलिए घंटे की ध्वनि करवाते थे ।

उनकी क्रियाएं अधिकांशतः दिगंबरत्व के विपरीत थी । महाराज उनकी संपूर्ण क्रियाओं को मौन पूर्वक देखते रहते थे, परंतु कभी भी किसी प्रकार का विरोध नहीं करते थे । हाँ! उनकी अज्ञानता पूर्ण क्रियाओं पर वे कभी-कभी मुस्करा कर जरूर मौन भाषा में उन्हें संबोधित करते थे ।

गोमटेश प्रभु के चरणों में महामुनि को पूरा एक पक्ष बीतने को था । इस एक पक्ष में देवप्पा स्वामी के जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन आया । अब वे स्वयं आत्म निंदा करने लगे थे ।

बिना बताये ही स्वामी जी को अपनी गलतियां महसूस होने लगी थी । अपने साधु जीवन में किए गए अनाचरण से वे स्वयं दुःखित होने लगे । सही है, सज्जनों के सच्चरित्र से कौन प्रभावित नहीं होता । बिना विरोध या रोक-टोक के ही उन्हें अपनी त्रुटियां स्पष्ट नजर आने लगी थी ।

एक दिन वे परम पूज्य आचार्य श्री के चरणों में अपने समस्त पूर्वकृत अपराधों की आलोचना करने लगे । अश्रु जल से साधुत्व में लगाये हुए गहरे दागों को धोने लगे । वे कह रहे थे—गुरुदेव सम्यक् चरित्र तो आपका है, मुझ पापी ने तो इस परम पद के व्रतों को धारण करके भी धारण नहीं किया । मुनि व्रतों को धारण कर क्रिया कांड में लगा रहा हूं । लेकिन क्या करूं । जो हो गया, सो हो गया "अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत ।" और न जाने अपने गीले मन से स्वामी जी क्या-क्या कह गए थे, किंतु महामुनि मौन हो सुन रहे थे ।

जब देवप्पा स्वामी की बात पूर्ण हुई, तो महाराज श्री उसे आशा की किरण दिखाते हुए बोले—“जब जागो, तभी सबेरा” अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है, यह मनुष्य जीवन अभी-भी तुम्हारे हाथ में है, क्षण भर का सत् संयम भी मुक्ति में कारण बन जाता है । अब भी तुम मिथ्या मान्यता को छोड़ सत् मान्यता को पा सकते हो ।

जिन प्रभु ने प्रत्येक संसारी प्राणी को मुक्ति पथ पर चलने की आज्ञा दी है और सत् पथ दर्शन भी दिया है । चूंकि तुमसे अनाचरण हुआ है, पर जिनवाणी उस अनाचरण के कलंक को धोने की दवा भी देती है अर्थात् तुम प्रायश्चित आदि लेकर अपनी शुद्धि करो तदुपरांत पुनः दीक्षा कर लेना ।

देवप्पा स्वामी ने सहज— सरल मन से गुरुदेव की बात स्वीकार और प्रायश्चित आदि ग्रहण कर लिया ।

कुछ समय बाद एक विशेष आयोजन में उन्होंने परम अराधय गुरुदेव से निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली । इस निर्ग्रन्थ दीक्षा में स्वामी जी के सैकड़ों भक्त तो आये ही थे, अन्यान्य श्रेष्ठी और सत्ताधिकारी भी आये थे । इस महा महोत्सव को देखकर कितने ही लोग महाराज के श्रद्धालु बन गए थे ।

जो देवप्पा स्वामी के भक्त अथवा शिष्य थे, वे तो उन्हें "गुरुणां गुरु" मान रहे थे । एक नया रास्ता पाकर देवप्पा जी स्वयं अत्यंत प्रमुदित थे । वे भी सम्यक आचरण पालन करने में मन लगाने लगे थे ।

महामुनि को यहां प्रवास करते हुए बहुत समय हो चुका था । अतः एक दिन उन्होंने वहां से किसी अन्य नगर की ओर पद विहार किया कितने ही श्रद्धालु उनका शिष्यत्व स्वीकार कर उनके पीछे चल पड़े ।

X

X

X

महाराज श्री किसी नगर के विशाल मंदिर में ससंघ विराजमान थे । ऐसे अतिशय योगी के दर्शन करने के लिए हमेशा ही दर्शनार्थियों का तांता लगा रहता था ।

राजा-महाराजा से लेकर गरीब भिखारी और पशु-पक्षी भी उनके चरणों के चले थे । उनकी करुणा अत्यंत व्यापक थी ।

उपवास करने के बाद भी करुणा मूर्ति मुनिराज यदा-कदा भव्य जीवों को पथ प्रदर्शनार्थ उपदेश दिया करते थे । आज महाराज संयम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कह रहे थे—“संयम रतन संभाल, विषयचोर बहु फिरत है ।” यह मनुष्य ही संपूर्ण संयम को धारण करने में समर्थ है देव और इन्द्र भी संयम धारण नहीं कर सकते । हौं! तिर्यच गति में जरूर अत्यल्प संयम होता है ।

बिना संयम धारण किये, इस मानव पर्याय की सार्थकता नहीं है । यह पर्याय वह रत्न है जिससे प्रत्येक वस्तु प्राप्त की जा

सकती है अथवा इस पर्याय को हम चौराहा भी कह सकते हैं, जहां से कि, किसी भी दिशा में जा सकते हैं । मनुष्य चाहे तो स्वर्ग और मोक्ष भी जा सकता है और चाहे तो नरक व निगोद भी । हों अगर उसे स्वर्ग मोक्ष जाना है, तो संयम अवश्य ही धारण करना पड़ेगा । बिना नियम, संयम के न तो आज तक सच्चे सुख की उपलब्धि हुई है और न ही हो सकती है ।

कि छोटा सा नियम भी हमारे लिए मुक्ति में कारण बन सकता है । यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक श्रावक मुनि बन जाये, प्रत्येक व्यक्ति मुनि नहीं बन सकता, क्योंकि अनादि कालीन कर्म सब के साथ लगा हुआ है, जिसके मोहनीय कर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम हुआ है, वही जीव संयम धारण कर सकता है, फिर भी संपूर्ण भार मात्र कर्मों पर लाद कर हाथ-पर हाथ धरकर नहीं बैठना चाहिये, अपितु संयम प्राप्ति की दिशा में पुरुषार्थ-करना चाहिए ।

संपूर्ण नहीं, तो अपूर्ण ही सही पर संयम अवश्य ही धारण करना चाहिए । संयम का एक अंश भी सम्यक् तथा पालन करना संयम के सर्वांश प्राप्ति में कारण बन सकता है ।

जिनवाणी में एक उदाहरण आता है, पुनरवा भील का । भीलों का काम ही शिकार आदि करना होता है, वह भी शिकार किया करता था । एक बार वह जंगल में शिकार करने आया, पत्नि भी साथ थी । घने जंगल में धनुष तीर को साधे हुए वह किन्हीं घनी झाड़ियों के पास पहुंचा । उसे झाड़ियों के पीछे किसी पशु जैसा शरीर दिखाई दिया, वह बाण छोड़ने ही वाला था, कि उसकी पत्नि ने रोकते हुए कहा-अभी तीर मत चलाओ, पहले देखो तो कौन है ?

वे दोनों जब झाड़ियों के पीछे पहुंचे, तो देखा एक मुनि राज तपस्या में लीन हैं । उन्होंने आज तक किसी दिगंबर साधु को देखा तो था नहीं अतः उन्हें वे वन देवता मान बैठे ।

मुनिराज का ध्यान टूटा, उन्होंने अपने ज्ञान से जान लिया कि वह भील निकट भव्य है अर्थात् जल्दी ही मोक्ष जायेगा अतः वे उसे उपदेश देने लगे । उपदेशों में उन्होंने हिंसाको छोड़ने की बात कही ।

महाराज की बात सुन कर वह बोला— मैं संपूर्ण प्रकार के मांस का तो त्याग नहीं कर सकता क्योंकि मैं भील हूँ । बिना हिंसा के भोजन आदि कहाँ से जुटाऊंगा । मैं तो मुख्यतः उसी के सहारे जीता हूँ ।

अंततः भील ने मुनिराज के चरणों में कौवे के मांस का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया ।

प्रत्येक नियम की परीक्षा अवश्य होती है, भील की भी हुई । एक बार वह बहुत बीमार पड़ गया । बीमारी का कोई उपचार नहीं हो सका अंततः एक वैद्य आया उसने बताया कि यह अगर कौवे को मांस का सेवन करे तो स्वस्थ हो सकता है । पुरुरवा ने तो कौवे के मांस का सेवन करे तो स्वस्थ हो सकता है । पुरुरवा ने तो कौवे के मांस का त्याग कर रखा था, अतः उसने किसी भी परिस्थिति में कौवे का मांस खाना स्वीकार नहीं किया ।

जब उसने मांस खाना स्वीकार नहीं किया, तब परिवार वाले विकट परिस्थिति में पड़ गए । अंत में परिवार के बुजुर्गों ने कहा—कि यह अपने साले की बात मानता है, अतः इसके साले को बुलाओं । उसके कहने से यह मांस खा लेगा तो स्वस्थ हो जाएगा ।

साले के पास खबर गई, खबर पाते ही वह चल पड़ा बहनोई से मिलने के लिए । रास्ते में घने जंगल में उसे एक स्त्री रोती हुई मिली । कारण पूछने पर पता चला कि वह एक देवी है । पुरुरवा भील मरकर व्रत के प्रभाव से उसका पति बनने वाला है, लेकिन अगर साले के कहने पर उसने कौवे के मांस का सेवन कर लिया तो दुर्गति हो जाएगी ।

साले ने देवी के मुख से संपूर्ण तथा—कथा सुनी और पहुंच गया बहनोई के पास । मांस खाने के लिए कहा, लेकिन उसने नहीं खाया । जब वह किसी प्रकार अपना व्रत तोड़ने को तैयार न हुआ, वह तो साले ने रास्ते में घटी संपूर्ण घटना सुना दी ।

घटना सुन कर पुरुरवा भील ने सोचा, कि जब कौवे के मांस मात्र का त्याग करने से मरकर देव बन सकता हूँ तो क्यों

न सभी प्रकार के मांस का त्याग कर दूं । वह सभी प्रकार के मांस का त्याग कर देता है ।

उसके मरने के बाद साला अपने गांव वापिस जाता है, तो उसे फिर वही स्त्री रोती हुई मिलती है । वह रोने का कारण पूछता है । उत्तर में वह कहती है कि अब वह मेरा पति न होकर ऊंचा देव बनेगा, इस लिए रो रही हूं । जब तो वह संपूर्ण प्रकार के मांस का त्यागी हो गया है, जरूर बहुत बड़ा देव बनेगा, मेरा स्वामी न बन सकेगा, इसलिए आंसू बहा रही हूं ।

कहानी का भावार्थ बताते हुए महामुनि कह रहे थे— कहने का तात्पर्य यही है कि एक छोटा सा नियम भी भव पार लगा देता है । हाँ ! बात अवश्य है कि उसका दृढ़ता से सम्यक् तथा पालन होना चाहिए ।

उस कौवे के मांस का त्याग करने मात्र से वह पुरुरवा भील उस पर्याय के बाद तो ऊँचा देव बना ही, उसके बाद कुछ जन्मों को धारण कर परम अहिंसा धर्म का प्रवर्तक तीर्थकर के रूप में जन्मा ।

बंधुओ, बीज से ही वृक्ष तैयार होता है, अगर उसे अच्छी उर्वरा भूमि में बोया जाए तो वह फलों से लदा रहता है, उसी प्रकार एक छोटा सा व्रत नियम भी मुक्ति रूपी फल प्राप्ति में कारण हो सकता है । अतः सभी को अपनी सामर्थ्यानुसार व्रत-नियम आदि धारण कर उनका अच्छी तरह से पालन करना चाहिए ।

नियम कितना ही सरल अथवा कितना ही कठिन क्यों न हो हमें उसका दृढ़ता से पालन करना चाहिए । कैसी भी स्थिति क्यों न आ जाये, अपने नियमों से विचलित नहीं होना चाहिए ।

महामुनि की गंभीर ध्वनि को प्रत्येक श्रोता ध्यान पूर्वक सुन रहा था । उनके प्रेरणास्पद प्रवचन सुनकर कितने ही लोगों के मन में संयम-नियम के प्रति साकार जागा, कितने ही लोगों ने यथा शक्य व्रत नियम ग्रहण किये ।

उनकी सभा में गरीब अमीर का कोई भेद नहीं होता था ।

नियम आदि भी सभी को यथा योग्य उनकी सामर्थ्य देख कर दिये जाते थे । आज कितने जीव संयम के अंशों को ग्रहण कर अपने जीवन को नई दिशा प्रदान कर रहे थे ।

जैन - अजैन, गरीब - अमीर, कुछ वृद्ध-युवा सभी महाराज श्री के अमृत वचनों का पान कर अपने - अपने घर की ओर जा रहे थे ।

१५

निर्ग्रन्थ दिगंबर मुद्रा के धारी मुनिराजों का कोई स्थाई निवास नहीं होता, वे तो हमेशा चलते ही रहते हैं । विहारशील प्रकृति होने से उनके व्रतों का निरतिचार पालन होता रहता है । दिगंबर साधुओं को भगवान महावीर का सीधा आदेश है कि वे अधिक समय तक किसी स्थान पर स्थाई न रुके । क्योंकि किसी एक निश्चित स्थान पर रहने से उसके प्रति मोह बढ़ सकता है, जिससे कि व्रतों में भी दोष लग सकते हैं ।

किसी कवि ने कहा है, कि-

बहता पानी निर्मला, रुके तो गंदा होय ।

साधु तो रमता भला, दाग लगे न कोय ॥

यह एक प्रकृति का नियम जैसा ही है कि आप जिन पदार्थों के सन्निकट रहेंगे, उनके प्रति राग-द्वेष अवश्य ही उत्पन्न होगा, इसलिए पूर्वाचार्यों ने साधुओं को स्पष्ट रास्ता बताया है ताकि वे उस पथ पर निराबाध रूप से बढ़ते चलें ।

दिगंबर मुनियों को मठ बना कर रहने का विधान किन्हीं शास्त्रों में नहीं मिलता, हाँ परिस्थिति विशेष आने पर मंदिर, धर्मशाला शून्य घर आदि में रहने की बात जरूर किसी-किसी ग्रंथ में पढ़ने को मिल जाती है ।

परम पूज्य आचार्य श्री आदिसागर जी महाराज संसंध पद बिहार कर ऐनापुर की ओर बढ़ रहे थे । उनके ग्रामों—ग्राम बिहार से सभी सम्प्रदायों पर समप्रभाव पड़ रहा था ।

चूँकि ब्रिटिश शासन ने साधुओं के बिहार पर रोक लगा रखी थी, फिर भी विशेष श्रावकों के बल पर और अपने आत्म बल पर महाराज बिहार कर रहे थे । बिहार के बीच उन्हें कई बार उपद्रवियों का सामना करना पड़ता था, जिन्हें वे अपनी मधुर वाणी से समझाने का प्रयास करते और जब विरोधी दल किसी भी परिस्थिति में नहीं मानता तो वे समता धारण कर परिषदों और उपसर्गों को सहते ।

महाराज की चरण रज से लोगों के असाध्य रोग भी दूर हो जाया करते थे । एक ऐसी ही घटना घटी थी—महाराज श्री किसी नगर के प्रवास पर थे । चर्या वही—सात दिन में एक बार आहार ग्रहण कर नित्य ही ज्ञान ध्यान तप में लगे रहना ।

संसारी दुःखी प्राणी यदा—कदा उनके चरणों में अपने समस्यायें लेकर पहुंच जाते, करुणा धारी महामुनि उनकी समस्याओं का निराकरण करने का रास्ता बता देते थे । उन्हें उनसे कुछ लेना—देना, स्वार्थ न था अपितु—करुणा के वशीभूत दुःखी जीवों के दुःख के निराकरणार्थ महामंत्र आदि का जाप उन्हें दे दिया करते थे, जिसे वे श्रद्धा पूर्वक करते और मनोकामना पूर्ण करते ।

एक धनवान श्रेष्ठी, जिनके यहां दो—दशक तक कोई संतान नहीं हुई थी, किसी पुण्य संयोग से एक पुत्र प्राप्त हुआ था । पुत्र बड़ा सुशील और सुंदर था । सेठ जी बड़े धर्मात्मा और दानी स्वभाव के थे, उनकी धर्म पत्नि भी धर्मकार्य में पीछे न थी ।

तो जैसे मां—बाप, वैसी संतान इस लोकोक्ति के अनुसार पुत्र भी दयालु धर्मात्मा प्रकृति का था । युवा होते ही पुत्र के विवाह के लिए सेठ जी के पास संबंध आने लगे । वे किसी योग्य कन्या के साथ उसका विवाह करना चाहते थे ।

इसी बीच एक दिन माँ ने उसके शरीर में दाग अर्थात् सफेद—सफेद धब्बे जैसे देखें वह देखते ही कांप गई उसने पुत्र की

अस्वस्थता के बारे में सेठ जी को बताया । सेठजी पत्नि को सांत्वना देते हुए बोले अभी वैद्य को बुला कर दिखा देते हैं, सब कुछ ठीक हो जायेगा ।

कितने ही वैद्य आये और चले गए पर रोग का निदान कोई भी न ढूढ़ पाये । अंततः थक हार कर वे महामुनि के निकट पहुंचे और संपूर्ण कथा—व्यथा उनके सामने कहते हुए सेठ जी बोले—गुरुदेव कृपा कर कुछ कीजिए, पुत्र तो लज्जा के मारे घर से ही नहीं निकलता, उसका रोग तो असाध्य सा लगता है । अगर आपकी कृपा—दृष्टि हो गई तो, वह ठीक भी हो सकता है अन्यथा... । सेठ जी के दीनता पूर्ण वचन सुनकर महाराज श्री की करुणा जागृत हो गई, वे बोले—बस! त्यागी और रागी में इतना ही तो अंतर है । रागी थोड़ी सी विपत्ति आई, की, उसे दूर करने के सैकड़ों प्रयास कर लेता है जबकि त्यागी विपत्तियों का सामना करते हैं । रागी विपत्तियों में विषम हो जाता है जबकि त्यागी समता धारण करता है ।

हम भी तुम्हारे जैसे ही शरीर को धारण करने वाले हैं, बताओ जब तुम कुछ नहीं कर सकते तो मैं क्या कर सकता हूं ।

सेठ जी बोले— महामुनि आप तो भगवान हैं, आप सब कुछ कर सकते हैं, मुझ पर कुछ तो कृपा कीजिए ।

महाराज बोले— संसार में कोई किसी पर कृपा नहीं करता प्रत्येक प्राणी अपने—अपने किए का फल भोगता है । प्रत्येक आत्मा भगवान है, लेकिन अंतर है सिर्फ—प्रकट और अप्रकटपने का । जिनने अपनी शुद्धात्मा को प्रकट कर लिया वे भगवान बन गये और जिन्होंने अपनी आत्मा को कर्मों से लिप्त किया वे संसार में ही रम गए ।

तुम दूसरे के बारे में क्या सोचते हो जरा, अपने जीवन के बारे में सोचो, यह पर्याय क्षण भंगुर है, कब क्या हो जाये कुछ भी पता नहीं ? अब तुम अपने पुत्र को ही देख लो । जो एक सुंदर राजकुमार जैसा था, वही कुरूप और बीमारी से ग्रसित हो गया । इस पर्याय का कोई भरोसा नहीं व्यर्थ के मोह में फंस कर यह जीव इस अमूल्य मानव पर्याय को यूँ ही बर्बाद कर देता है ।

गुरुदेव का एक-एक शब्द सत्य और तथ्य को लिए थे, अतः वह शब्द सीधे सेठ जी के हृदय तक पहुंच रहे थे ।

महाराज के मुखारबिंद से निकलने वाली वाणी अत्यंत प्रभावक सिद्ध हुई, सेठ जी बोले—महाराज श्री! आप का कहना सत्य है, पर ऐसी स्थिति में परिवार को छोड़कर, धर्म मार्ग ग्रहण करना भी तो पलायन वाद कहा जाएगा । पहले घर—परिवार की अवस्था ठीक हो जाये फिर मैं धर्ममार्ग को ग्रहण कर लूंगा ।

सेठ जी की बात सुनकर महामुनि बोले—जब आपका दृढ़ संकल्प है तो पुत्र के रोग निवारणार्थ जिन पूजा करो, विधान करो ।

—कौन सा विधान करूँ ?

—देखो ! अभी अष्टान्हिका पर्व आ रहा है । बड़ा ही पावनपर्व होता है । इन आठों दिनों के अंदर अनेक देवगण सपरिवार नंदीश्वर देव जिन पूजन करने जाया करते हैं । मनुष्य भी अपनी सामर्थ्यानुसार विधानादि कार्य क्रम करके जिन पूजा का आनंद लेते हैं ।

जहाँ तक आपकी बात है, तो आप सिद्ध चक्र विधान करवाइये अवश्य ही समस्त बाधाएं दूर हो, पुण्यार्जन होगा ।

महामुनि की आज्ञानुसार सेठ जी ने बड़ी धूमधाम से अष्टान्हिका महापर्व में सिद्धचक्र का पाठ करवाया । वह प्रति दिन जिनाभिषेक लेकर अपने लड़के के ऊपर भी छिडक दिया करते थे । विधान के पूरे आठ दिन भी न बीते थे, कि पुत्र स्वस्थ होने लगा । उसे स्वस्थ होते देख सेठ जी की श्रद्धा में अत्यंत वृद्धि हुई । अब वे और अधिक श्रद्धा—भक्ति से देवशास्त्र गुरु की सेवा सुश्रुषा में लग गए ।

विधान पूर्ण हुआ पुत्र भी स्वस्थ हो गया । समय निकलते किसी सुयोग्य कन्या से विवाह भी हो गया । जब सेठ जी ने देखा कि पुत्र भली भांति घर—परिवार, धन—संपत्ति को सम्हाल सकता है, तो एक दिन उन्होंने संपूर्ण परिवार के सामने अपने आत्म कल्याणार्थ गृहत्याग की बात रखी ।

उनकी बात सुन सभी क्षण भर के लिए भौचक्के से रह

गए । कुछ साहस कर पत्नि बोली—आप के बिना संसार में हमारा है ही कौन ? और जब आप ही चले जावेंगे, तो फिर इस घर—परिवार का क्या होगा ।

सेठ जी समझाते हुए बोले— कोई किसी का नहीं है, सब अपने अपने भाग्य का खाते हैं । यह तो व्यक्ति की कृतित्व बुद्धि कहती है कि मैं ही सब कुछ करता हूँ । फिर पुत्र भी परिवार संचालन करने योग्य हो गया है । किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है । मुझे तो अब अपना परमार्थ भी देखना, एक न एक दिन तो इस घर को छोड़ना ही पड़ेगा । क्यों न जीते जागते इस धन संपत्ति का पता करके आत्म कल्याण के मार्ग में लगूँ, जिससे अनादिकाल से दुःख पाती आत्मा को सुख की छांव मिले ।

परिवार में नाना प्रकार की चर्चाएं चल पड़ी, परंतु सेठ जी के मन पर उनका कोई भी प्रभाव न पड़ा, अंततः संपूर्ण परिवार, वंध्यवर्ग एवं मित्रजनों से क्षमा याचना कर वे महामुनि के चरणों में जा पहुंचे ।

मुनि कुंजर की छत्र-छाया में रहते हुए उन्होंने अपनी ध्यान साधना को निखार लिया । सेठ जी को योग्य जान कर गुरुदेव ने दीक्षा प्रदान कर दी । अब वे आत्म कल्याण के मार्ग में बढ़ चले थे ।

X

X

X

महान मुनि की ध्यान क्रिया बड़ी सुंदर थी । वे जब कभी अपने शिष्यों ध्यान के बारे में बताते हुए नए-नए सूत्र देते रहते थे ।

मन की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं । चित्त का किसी एक विषय को लेकर उसमें लीन होना ध्यान है । हर प्राणी का चित्त सामान्यतः हर समय कुछ न कुछ ध्यान करता ही रहता है । भले ही वह शुभ हो अथवा अशुभ इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए आचार्यों ने ध्यान के दो भेद भी किए हैं, अप्रशस्त और प्रशस्त । अप्रशस्त ध्यान नियम से कुगति के कारण होते हैं और प्रशस्त ध्यान सुगति

के नियामक कारण हैं ।

ध्यान मुख्यतः चार प्रकार का है— आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान । प्रारंभ के दो ध्यान अप्रशस्त कहलाते हैं और बाद वाले दो ध्यान प्रशस्त कहलाते हैं ।

आर्त ध्यान—आर्त और रौद्र ध्यान अप्रशस्त ध्यान हैं । आर्त का अर्थ होता है पीड़ा, दुख । इष्ट की प्राप्ति अथवा उसके संयोग के लिए, अनिष्ट के परिहार के लिए, शरीर आदि से उत्पन्न वेदना के प्रतिकार के लिए तथा लालसा वंश आगामी भवों में सुख प्राप्ति के लिए अथवा शारीरिक वेदना से चित्त में जो विकलता होती है उसे आर्तध्यान कहते हैं । उक्त चार निमित्तों की अपेक्षा इसके चार भेद हो जाते हैं ।

रौद्र ध्यान—रुद्र का एक अर्थ होता है क्रूर । जो ध्यान क्रूर परिणामों से होता है वह रौद्र ध्यान कहलाता है । रौद्र ध्यान का मूल आधार क्रूरता है । अतः हिंसा, झूठ, चोरी और विषम संरक्षण के निमित्त से रौद्र ध्यान के भी चार भेद हो जाते हैं— हिंसानन्दी, मृणानन्दी, चौर्यानन्दी, विषम संरक्षणापिना नन्दी (परिग्रहानन्द), इनका सामान्यत अर्थ स्पष्ट ही है ।

धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान प्रशस्त ध्यान की श्रेणी में आते हैं । इसमें धार्मिक चिन्तन की मुख्यतः रहती है । निमित्तों की अपेक्षा धर्म के मुख्यतः चार भेद कहे गए हैं ।

(1) आज्ञा विचय—वीतरागी महापुरुषों की जो धर्म संबंधी प्ररूपणाएं हैं, उनका विचार करना उनकी आज्ञा का पालन करना आज्ञा—विचय धर्म ध्यान है । पूजन, विधान श्रद्धान आदि इसी ध्यान के अन्तर्गत आते हैं ।

(2) अपाय विचय—अपाय का अर्थ दुख होता है । संसारी प्राणी अपने अज्ञान से दुःखी है । उनके दुखों का अभाव कैसे हो, इस प्रकार का करुणा पूर्ण चिन्तन करना अपाय विचय धर्म ध्यान है ।

(3) विपाक विचय—कर्म फल के बारे में विचार करना विपाक विचय धर्म ध्यान है । संसारी जीव अपने—अपने पूर्वकृत कर्मों से

पीडित होकर किस-किस प्रकार से उनका फल भोगते हैं तथा सभी को अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख दुःख मिलता रहता है । इस प्रकार का विचार करना विपाक विचय धर्म ध्यान है ।

(4) संस्थान विचय-विश्व या लोक के स्वरूप का सतत चिन्तन करते रहना संस्थान विचय धर्म ध्यान है । इसके भी चार भेद होते हैं । पिण्डस्थ, पदस्थ रूपस्थ और रूपातीत ।

—पिण्डस्थ ध्यान में पृथ्वी धारणा, जल धारणा, वायु धारणा और अग्नि धारणा का ध्यान किया जाता है ।

—पदस्थ ध्यान में मंत्रों के अक्षर पद आदि का आलंबन लेकर चिंतन किया जाता है ।

—रूपस्थ ध्यान में अरहंत भगवान, समवशरण, देवेन्द्र, चन्द्रमा, सूर्यादि का ध्यान करना चाहिये ।

—रूपातीत ध्यान में अरूपी आत्म तत्त्व अथवा सिद्धात्माओं का ध्यान करना चाहिये ।

इन सभी ध्यानों का विशेष खुलासा, ज्ञानार्णव आदि ध्यान शास्त्रों से जानना चाहिये ।

शुक्ल ध्यान—मन की अत्यंत निर्मलता होने पर जो एकाग्रता होती है, वह शुक्ल ध्यान है । यह परिपूर्ण निर्विकल्पता की स्थिति है । इससे अन्तर्मुखता की अग्रिम भूमिकाएं प्रशस्त हो जाती हैं । इस स्थिति में भौतिक आकांक्षाएं छूटती हैं और आत्मानुभूति के द्वार खुलते हैं । शुक्ल ध्यान की चार अवस्थाएं हैं । चौथी अवस्था में पहुंचने पर जीव सांसारिक बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है ।

पृथकत्व-वितर्क वीचार-तीनों योगों में प्रवृत्त होना पृथकत्व है । श्रुत ज्ञान के आलम्बन को वितर्क कहते हैं तथा अर्थ-व्यंजन और योगों के परिवर्तन को वीचार कहते हैं । ध्येयों का यह परिवर्तन सहज निष्णात होता है इस ध्यान में परिणामों की विशुद्धि के साथ तीनों योगों में प्रवृत्त होता हुआ, श्रुत ज्ञान में उपयुक्त साधक पदार्थों की भिन्न-भिन्न पर्यायों का ध्यान करता है । मोहनीय कर्म का क्षय अथवा उपशम इसी ध्यान की विशुद्धि में संभव होता है ।

एकत्व-वितर्क-अवीचार-श्रुतज्ञान के आलम्बन पूर्वक मन, वचन, काय में से किसी एक योग में स्थिर होकर द्रव्य की एक ही पर्याय का चिन्तन करना एकत्व वितर्क अवीचार ध्यान है । इस ध्यान में एक ही योग होने के कारण एकत्व रहता है तथा पर्यायों में परिवर्तन न होने से अविचार रहता है । इस ध्यान के बल से ही आत्मा वीतराग सर्वज्ञ बनकर सदेह परमात्मा बनता है ।

सूक्ष्म क्रिया-प्रति पाति-वितर्क और वीचार से रहित इस ध्यान में मन, वचन और काय रूप योगों का निरोध हो जाता है । यहां तक कि श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया भी इस ध्यान में रुक जाती है । सूक्ष्म क्रियाओं के भी निरोध से उपलब्ध होने के कारण इसे सूक्ष्म क्रिया -प्रतिपाति कहते हैं । यह ध्यान जीवन मुक्त सयोग केवली के अपनी आयु के अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर होता है ।

व्युपरत क्रिया-निवृत्ति-वितर्क और विचार से रहित हुआ यह ध्यान क्रिया से भी रहित हो जाता है । इस ध्यान में आत्मा के समस्त प्रदेश निष्प्रकर्ष हो जाते हैं । अतः आत्मा अयोगी बन जाता है । इस ध्यान में किसी प्रकार की कोई भी क्रिया नहीं होती । योग रूप क्रियाओं से ऊपर हो जाने के कारण इस ध्यान का नाम व्युपरत क्रिया निवृत्ति है । इस ध्यान के प्रताप से शेष संपूर्ण कर्मों का नाश हो जाता है तथा जीवात्मा देह मुक्त होकर अपनी स्वाभाविक उर्ध्वगति से लोक के अग्र भाग तक जाकर वहां शरीरातीत अवस्था के साथ स्थिर हो जाता है । तात्पर्य यह है कि इसी ध्यान के बल से सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है और दुःखों से सदा के लिए मुक्ति मिल जाती है ।

तप कर्म-निर्जरा का मुख्य साधन है, इसीलिए जैन-दर्शन में इसे विशेष प्रतिष्ठा मिली है । इस पर विचार-विमर्श भी बहुत हुआ है, उसका सार यह है कि-

1. तप-पूजा, प्रसिद्धि अथवा सांसारिक लाभों की दृष्टि से नहीं करना चाहिए, अपितु कर्मक्षय के लिए करना चाहिए ।

2. तप इस प्रकार करना चाहिए, जिससे किसी अंग का भेद अथवा इंद्रिय का खंडन न हो ।

3. तप इस प्रकार करना चाहिए, जिससे मन में निर्मलता आती हो तथा ध्यान स्वाध्याय, चिंतन आदि का विकास होता हो, तप आजीविका के लिये तथा खेद पूर्वक नहीं होना चाहिए ।

जब महामुनि ध्यान के प्रत्येक अंग का खुलासा करते, तो ध्यान संबंधी तथ्य शिष्यों को अतिशीघ्र समझ में आ जाया करते थे । वे कहते जैन धर्म का तप मात्र शारीरिक दण्ड रूप नहीं है, अपितु उसमें क्रमिक संयम के साथ-साथ मानसिक शुद्धि को भी स्थान दिया गया है । दिगंबर साधु का तप अपने वास्तविक स्वभाव को प्रकट करने के लिए होता है ।

ध्यान का लक्षण बताते हुए महामुनि कहते—शारीरिक स्थिरता, नेत्र स्पंदन का अभाव, छींक-जमाई का अभाव, स्वासोच्छ्वास की स्थिरता आदि यह सब, ध्यान के बाह्य लक्षण हैं । जो स्वयं से स्वयं को ध्याता है अथवा जो शांत मन, से किसी एक अथवा अनेक तत्व पर विचार करता है वह आम्यंता ध्यान है ।

महामुनि द्वारा जब-कभी अपने शिष्यों को ध्यान, चिंतन, चर्या आदि की नई-नई शिक्षाएं प्राप्त होती थी, जिससे वे अपने निर्दोषव्रत व मुनि धर्म का पालन कर अपनी आत्मा को निर्मल करते रहते । महामुनि के ध्यान से भी उन्हें ध्यान करने की प्रेरणा व सामग्री मिल जाती थी । वे भी महामुनि का आदर्श अपनाकर, उन जैसे बनने का प्रयत्न करते थे ।

## १६

प्रायः समस्त आत्म वादी दर्शन आत्मा को स्वीकार करते हैं किंतु चार्वाक जैसे भौतिक वादी दर्शन आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते । उनका कहना है कि जीव नामक कोई पदार्थ दृष्टि गोचर नहीं होने से नहीं है । यदि जीव होता तो उसे दिखना चाहिये था । जीव में जो चेतना दिखाई देती है । वह पंचभूतों के संयोग से उत्पन्न

हुई शक्ति मात्र है, जो जीव की मृत्यु होते ही समाप्त हो जाती है ।

जैन सिद्धांत कहता है कि "मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ आदि की जो प्रतीति होती है, वह चेतना का ही परिणाम है । यदि चेतना नाम का कोई पदार्थ नहीं है तो मृतक का शरीर पंचाभूतों से मुक्त होता हुए भी चेतना शून्य क्यों रहता है ? इसी चेतना रूप लक्षण के दृष्टि गोचर होने पर कई बार मृत घोषित जीव को चिता से भी लौटते देखा जाता है । इसी प्रकार आए दिन पूर्व-जन्म विषयक एवं भूत-प्रेतों की घटनाएं भी जीव के अस्तित्व को सिद्ध करती है ।

कुछ लोग कहते हैं कि चेतना जीव का लक्षण न होकर शरीर का लक्षण है । लेकिन यह मान्यता ठीक नहीं है । यदि चेतना शरीर का लक्षण है तो शरीर को सदा चैतन्य रहना चाहिये, क्योंकि लक्षण त्रैकालिक होता है । लेकिन देखा जाता है कि मृतक का शरीर चेतना रहित हो जाता है, अतः चेतना शरीर का लक्षण नहीं हो सकता ।

यदि चेतना शरीर का लक्षण है तो बड़े और स्थूल शरीरों में चेतना अधिक होना चाहिए और ज्ञान अधिक होना चाहिए तथा दुबले-पतले शरीर में चेतना की मात्रा अल्प होना चाहिए और ज्ञान भी अल्प होना चाहिए, किंतु ऐसा देखा नहीं जाता । प्रायः देखा जाता है कि पहलवान शरीर धारी भी अल्पज्ञानी होता है तथा दुबले-पतले शरीर धारण करने वाले साधु संतों और विद्वानों में अधिक ज्ञान पाया जाता है । इसी तरह हाथी, घोड़ा, बैल आदि पशुओं की अपेक्षा मनुष्य का शरीर छोटा होने पर भी उनकी अपेक्षा में ज्ञान अधिक होता है । अतः चेतना को शरीर का लक्षण नहीं माना जा सकता । वह तो शरीर से भिन्न आत्मा का लक्षण है ।

एक बात यह भी है कि पृथ्वी जल अग्निवायु और आकाश रूप पंचभूत तो जड़ (पुद्गल अजीब) है । चैतन्य रहित इनसे जीव की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? यदि कहा जाये कि महुआ गुड़ पानी आदि में मद्य-शक्ति दिखाई नहीं पड़ती, किंतु परस्पर संयोगो को प्राप्त होने पर उनमें मद्य शक्ति उत्पन्न होती है तथा कुछ काल तक रहने के बाद

विनाश की सामग्री प्राप्त होने पर विनष्ट हो जाती है । उसी प्रकार पंचभूतों के संयोग से उत्पन्न चेतना भी कारण सामग्री प्राप्त होने पर विनष्ट हो जाती है । उसी प्रकार पंचभूतों के संयोग से उत्पन्न चेतना भी कारण सामग्री प्राप्त होने पर विनष्ट हो जाती है । यह उदाहरण भी अनुपयुक्त है क्योंकि महुआ, गुड़ आदि पदार्थों में संयोग से पूर्व भी मादक शक्ति पाई जाती है । संयोग से तो केवल उनकी शक्ति का उद्दीपन होता है । इस प्रकार क्या तथाकथित भूतों में चेतना का अस्तित्व विद्यमान है ? यदि है तो जड़वाद की कोई स्थिति ही नहीं रहती । फिर तो चेतना शाश्वत हो गई । जहाँ भूत है, वहाँ चेतना है ।

यदि चेतना संयोगिक ही है तो मद्य शक्ति का उदाहरण अवास्तविक है क्योंकि मद्य के उपादान में मादकता प्रत्यक्ष है, किंतु भूतों में चैतन्यता नहीं । इसके बावजूद यदि कुछ क्षण के लिये मान लें कि पंचभूतों के नियोजन से चैतन्य उत्पन्न होता है, तो उसका समीकरण क्या है ? क्या इस समीकरण के आधार पर आज तक किसी ने चैतन्य की उत्पत्ति करके बताई है ? यदि किसी ने नहीं बताई तो पंचभूतों के संयोग से चैतन्य की उत्पत्ति होती है, यह बात ही आधारहीन होने से अप्रमाणित सिद्ध होती है ।

चेतना तो आत्मा का लक्षण है जो उसमें ही पाया जाता है । आत्मा सदा शाश्वत पदार्थ है । हों कर्मबद्ध होने से वह सुखी-दुःखी होकर पर्याय-पर्यायांतरों में अवश्य भटकती रहती है ।

उस आत्मा का उत्थान करने के लिए, कर्ममल धोने के लिए, चेतना को शुद्ध करने के लिए और आत्मा की भटकन रोकने के लिये ही दिगंबर साधु साधना करते हैं ।

X

X

X

इन दो दशकों में मुनि कुंजर दक्षिण भारत के अधिकांश ही क्षेत्रों में श्रद्धा के पात्र बन चुके थे । वह जहाँ बैठा करते थे वहाँ की मिट्टी औषधि का काम करती थी । उनके सहज संयोग अथवा

आशीर्वाद से कितने ही लोगों के असाध्य रोग नष्ट हो गये थे, कितने ही अथाह संपत्ति से पूरित हो गये थे, और कितने ही साधना के मार्ग को अपनाकर समाधि सिद्ध कर गये थे ।

महामुनि को सामान्य जन समुदाय चमत्कारी बाबा के नाम से जाना करते थे । जहां-जहां उनका प्रवास हो चुका वहां-वहां के प्रत्येक व्यक्ति उनके भक्त बन चुके थे । नग्न मुद्रा के प्रति अब उनके मन में विद्रोह नहीं रहा था ।

एक बार महाराज नगर में पारणा करने आये । किसी समृद्ध सेठ के यहां उनकी विधि मिली । सेठ ने विधि पूर्वक महामुनि को आहार दान दिया । आहार पूर्ण हुआ, महाराज श्री ने आज सिर्फ आम का रस लिया था । आहार करने के उपरांत महामुनि अपनी तपस्यार्थ पुनःकोनूर की गुफाओं की ओर वापिस आ गये ।

आहार के उपरांत सेठ जी ने सोचा-बड़े पुण्य से मेरे घर में आज महामुनि का आहार हुआ है, क्यों न, मैं आज संपूर्ण समाज को आहार करा दूं । शुभ विकल्प उत्पन्न होते ही उन्होंने वहां पर जितने व्यक्ति महामुनि के आहार देखने को एकत्रित हुए थे, उन सबको निमंत्रण दे दिया । सेठ जी का निमंत्रण पाकर उन्होंने खूब अच्छी तरह भोजन किया, पर भोजन खत्म न हुआ । आज सेठ जी आश्चर्य में पड़ गए-वह सोचने लगे कि रोज की अपेक्षा आज कुछ अधिक ही तो भोजन बनाया था, पर पचास व्यक्ति जीम गए, फिर भी भोजन खत्म नहीं हुआ । उन्होंने गांव के अन्य जैन भाइयों को निमंत्रण दिया, कि वे जीम गए, परंतु भोजन खत्म नहीं हुआ । सभी आश्चर्य में पड़ गए, सेठ ने संपूर्ण नगर को भोजन कराया । जब भोजन करके सभी तृप्त हो गये, तब कहीं जाकर भोजन खत्म हुआ । आज के अनोखे चमत्कार से जन सामान्य आश्चर्य में था ।

सेठ जी ने भी बात उजागर कर दी, कि भोजन तो एक रोज जितना ही बना था, मैंने अलग से बिल्कुल भी नहीं बना पाया पर एक परिवार के भोजन में संपूर्ण गांव भोजन कर गया, यह महामुनि का ही प्रभाव है ।

महामुनि का तत्कालीन चमत्कार सुनकर कुछ चंचल लड़के महामुनि के प्रवास स्थान की ओर यह समाचार सुनाने जा पहुंचे । वहां जाकर जैसे ही वे महामुनि को ध्यानस्थ देखते हैं, तो कुछ लड़के डर के मारने कांपने लगते हैं, कुछ उल्टे पांव भागते हैं और कुछ जोर-जोर से श्वासें लेने लगते हैं । वे देखते हैं ..... महामुनि के करीब चार-पांच हाथ लम्बा काला नाग बैठा है । जिस प्रकार महामुनि अत्यंत सौम्य मुद्रा में थे, उसी प्रकार वह महा भयानक रौद्र मुद्रा में था । लेकिन फिर भी महामुनि के चरणों में शांति से बैठा था ।

जो लड़के भयभीत होकर गांव की ओर वापिस आये थे, उन्होंने वह संपूर्ण बात गांव वालों को कह सुनायी । कुछ क्रूर स्वभावी लोग बड़े-बड़े डंडे लेकर उस ओर बढ़ चले ।

महामुनि को मानों यह सब कुछ साक्षात् दिख रहा था, अतः उन्होंने आंखे खोली और मधुर आवाज में बोले नागराज जाओ, तुम अभी यहां से चले जाओ नहीं तो गांव वाले आकर तुझे मार सकते हैं ।

सर्प मानों सब कुछ सुन और समझ रहा था, चुपचाप अपना फन फैलाया जमीन पर सिर झुकाकर नमस्कार किया और फन संकुचित कर महाराज के बाईं ओर से निकलता हुआ, कहीं विलीन हो गया ।

अब तक वह लट्ठ धारी भी वहां पहुंच चुके थे, पर अब न वहां सर्प था और न ही उसका कोई चिन्ह । जब उन्होंने वहां उपस्थित लड़कों से घटना की जानकारी ली तो वे सब बड़े आश्चर्य में पड़ गए । अब वे एक दूसरे का मुंह ताक रहे थे ।

शायद ऐसी घटना पहली बार उन्होंने सुनी थी, उनके मन में नाना प्रकार के प्रश्न उठने लगे, लेकिन उत्तर दे तो कौन ? अंततः उन में से एक बोला— क्यों न हम महामुनि से ही इन सब बातों को स्पष्ट रूप में सुनें ।

दूसरा उसका समर्थन करते हुए बोला—यही ठीक रहेगा ।

सभी महामुनि को नमस्कार कर उनके चरणों में बैठ गए । अब वहां पर जन समुदाय का तांता सा लग गया था । सभी के

मन में एक न एक प्रश्न था—और सभी उनका उत्तर पाने को लालायित थे ।

जब महामुनि ने इतने बड़े समुदाय को एकत्रित देखा तो उन्होंने मौन रहना उचित न समझा । उन सभी के प्रश्नों का समाधान कर देना ही उचित समझा क्योंकि वे समझ रहे थे कि जब तक किसी के अंदर कोई प्रश्न रहता है, तब तक वह पूर्ण शांत मन से न तो बैठ ही सकता है और न कुछ काम ही कर पाता है । हाँ ! कहीं से गलत उत्तर मिलने पर अर्थ का अनर्थ जरूर हो सकता है ।

महामुनि मौन तोड़ते हुए बोले—मैं जानता हूँ, आप लोग क्यों एकत्रित हुए हैं । सभी के मन में नाना प्रकार के प्रश्न हैं । मैं उन सबका समाधान करता हूँ । संसार में विभिन्न प्रकार के जीव देखे जाते हैं । कोई किसी का शत्रु है और कोई किसी का मित्र । शत्रु और मित्र बनाना अपने आचार पर निर्भर करता है । वास्तव में देखा जाये, तो सब कुछ पूर्वकृत कर्मों का ही विपाक (फल) है, फिर भी हम व्यवहार की भाषा में कहते हैं कि उसने ऐसा कर दिया, उसने ऐसा कर दिया ।

कोई भी जीव बिना कारण आप पर बार नहीं कर सकता । हम सिंह, सर्प, व्याघ्र आदि को अपना शत्रु समझते हैं, उन्हें मारने के प्रयास में रहते हैं । पर यह हमारी भूल हैं, वे हमारे शत्रु नहीं हैं, शत्रु अथवा मित्र तो व्यवहार, आचार, विचार से बनते हैं । देखो! दीवान अमरचंद्र के व्यवहार से सिंह भी शाकाहारी बन गया था ।

दीवान अमर चंद्र का नाम सुनकर एक जिज्ञासु ने उनके बारे में जानने के लिए महाराज से निवेदन किया । सबके मन से उठने वाली जिज्ञासा उसने प्रकट की थी । महाराज बोले— दीवान अमरचंद्र जयपुर नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी थे । वे तत्कालीन शासक के दरबार में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व के धनी दीवान थे ।

कोई मनुष्य कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसके निन्यानवें प्रशंसक होंगे तो एक निंदक भी अवश्य मिल जायेगा । निन्यानवे हित चिंतक होंगे तो एक ईर्ष्यालु भी मिल जायेगा ।

दीवान जी के व्यक्तित्व में भी यही बात थी, कुछ सभासद

उनसे ईर्ष्या रखते थे, जिसका कारण था उनकी राजा से घनिष्टता । एक दिन सिंह को भोजन कराने वाला व्यक्ति बाहर चला गया, तो सभी सभासदों और शासकों में चर्चा चल पड़ी, कि सिंह को भोजन कौन करायेगा ।

पाप से तो सभी डरते हैं । कोई भी तैयार न हुआ सिंह को मांस खिलाने के लिए ।

जब सभा में सन्नाटा सा छा गया तो एक मंत्री सन्नाटे को विराम देते हुए बोला— महाराज ! एकदम शांत होने की क्या बात है । हमारे बीच अहिंसा धर्म का नारा देने वाले दीवान जी भी तो विद्यमान है, क्यों न उन्हें ही सिंह को भोजन कराने का काम सौंपा जाये ।

अन्य ईर्ष्यालु व्यक्तियों ने इस बात का समर्थन कर दिया, राजा ने न चाहते हुए भी, यह काम दीवान जी को सौंपते हुए कहा — दीवान जी सभी सभासद चाहते हैं कि आप सिंह को भोजन करायें । हाँ, इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाये कि सिंह भूखा नहीं रहना चाहिये ।

दीवान जी को अपनी अहिंसा पर पूर्ण विश्वास था । उन्होंने बिना आनाकानी किये यह बात स्वीकार ली । दूसरे ही दिन उन्हें सिंह को भोजन देना था । अतः चिन्ता होना स्वाभाविक थी कि सिंह को क्या और कैसे खिलाया जाये ? जब उन्हें कोई रास्ता न दिखा तो उन्होंने जलेबी के थाल भरवाये और दूसरे दिन स्वयं हाथ में लेकर सिंह के पिंजड़े में घुस गए और गंभीर ध्वनि में बोले—हे वनराज! मैं अहिंसक हूँ, तुम्हें किसी पशु को मांस नहीं दे सकता, हाँ ! शाकाहारी भोजन अवश्य करा सकता हूँ । अगर तुम शाकाहारी भोजन खा सकते हो, तो इन जलेबियों को खा लो और अगर नहीं खा सकते तो मैं सहर्ष—तुम्हारे सामने प्रस्तुत हूँ । अपनी भूख मिटा लो ।

दीवान जी की बात सुनकर सिंह दहाड़ा, कुछ इधर से उधर भी हुआ । अंततः वह णमोकार मंत्र तथा भगवान महावीर का स्मरण करते हुए सेठ पर आक्रमण न कर एकदम शांत भाव से जलेबी खाने लगा ।

राजा एवं सभासदों सहित संपूर्ण दर्शकों ने दांतों तले उंगलियाँ दबा ली । राजा ने उसी दिन से संपूर्ण राज्य में हिंसामय वातावरण को विराम देने की घोषणा कर दी । उन्होंने ससम्मान दीवान जी से क्षमा मांगी ।

सभी श्रोता महामुनि की बात सुनकर आश्चर्य में थे, महामुनि कह रहे थे अहिंसा वह मंत्र है जिसके द्वारा क्रूर से क्रूर जीव भी वश में हो जाते हैं । अगर हमारे मन में अहिंसा का भाव है तो दूसरा हिंसक जीव भी हमारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकता और अगर हिंसक भाव है तो अहिंसक पशु भी आक्रमण कर सकता है ।

आप लोगों ने सुना होगा कि दिगंबर साधु जंगलों में तपस्या करते हैं, उनके पास सिंह और सर्प भी आते हैं, पर सज्जनता से आते हैं और चले जाते हैं । क्योंकि मुनिराज के मन में अहिंसक भाव है तथा यह भी देखा होगा कि जब आप गाय को लाठी मारने के लिये उसके पास जाते हैं तो अहिंसक होते हुए भी वह मारने दौड़ती है, क्योंकि तुम्हारे अंदर उसे लाठी मारने के हिंसक भाव हैं ।

महामुनि का एक एक वाक्य प्रत्येक श्रोता के अंदर तक पहुँच रहा था, वे कह रहे थे अब आज की घटना को ही देखो । सर्प मेरे पास बैठा था । उसने मेरा कुछ नहीं किया, बल्कि जब मैंने यह अनुमान लगाया कि वे लड़के गांव वालों को यह घटना बतायेंगे तो गांव वाले जरूर ही उसे मारने आवेंगे और वह इसलिए कि कहीं वह मुझे हानि न पहुंचा दे । तो मैंने उससे चले जाने को कह दिया वह चुपचाप चला गया । उसने मेरी बात सुनी और स्वीकार की क्योंकि मेरे अंदर अहिंसक भाव थे ।

तुम लोगों ने तो उसे मारने का विचार बना कर पाप लाद ही लिया । मनुष्य पाप न करते हुए भी पाप करता रहता है, अर्थात् शरीर से तो वह किसी को नहीं मारता पर मन से तो मार ही रहा है ।

ध्यान रहे! जब से किसी कार्य का संकल्प मन में हो जाता है तब से ही उसका अच्छा बुरा कर्म बंध होना प्रारंभ हो जाता है । अगर आज हम किसी को मारेगें तो कल हम भी उसके द्वारा मारे जायेंगे आज

हम किसी को दुःख पहुंचायेगे तो कल वह हमें दुःख पहुंचायेगा । आज वह समर्थ नहीं है इसलिए तुम उसे दुःख पहुंचा रहे हो, पर कल वह तुमसे ज्यादा समर्थ होकर तुम्हें दुःख पहुंचायेगा ।

एक कहावत है जो बोओगे, सो काटोगे । आप आज जैसा कर्म करोगे, वैसा ही फल भोगना पड़ेगा । इसलिए हमेशा सब के साथ अच्छा व्यवहार करने का प्रयास करो, जब तुम सबके साथ अच्छा व्यवहार करोगे तो तुम्हारे साथ भी सभी अच्छा व्यवहार करेंगे । यह हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह आदि के भाव ही प्राणी को दुःखी बनाते हैं, इन्हें छोड़ने का प्रयत्न करो ।

महाराज श्री सहज सरल भाषा में समझाते—समझाते अपनी वाणी को विराम दे चुके थे, पर श्रोता इस प्रकार बैठे थे जैसे कि अभी भी महामुनि उपदेश दे रहे हो ।

महामुनि के उपदेशों को आदर्श बना कर कितने ही अजैन अहिंसा आदि व्रतों का धारण कर चुके थे, और कर रहे थे । इस प्रभावना से महाराज श्री सहजतः ही प्रमुदित हो जाया करते थे ।

X

X

X

इन पच्चीस—छब्बीस वर्षों में कितने ही भव्य जीव महामुनि आचार्य श्री आदिसागर जी के चरणों में दीक्षित हो चुके थे । वे अब तक शताधिक भव्यों को मोक्षमार्ग में लगा चुके थे, पर वे हमेशा निःसंग निःशल्य बनकर प्रायः एकांत स्थानों में तपस्या किया करते थे । शमशान, गुफायें क्षेत्रों के पहाड़ी मंदिर अथवा खाली मकानों को ही वे प्रायः ध्यान के लिये चुना करते थे ।

एक बार वे किसी गांव के शमशान में ध्यान लीन थे । उसी दिन उस गांव के किसी युवक को सर्प ने काट लिया था, जिस कारण वह अचेत हो गया था । अचेतना इतनी गहरी थी, कि लोगों ने उसे मृत समझा और शमशान घाट लेकर पहुंच गये ।

वे अर्थी को वहीं रख लकड़ियों को एकत्रित करने का

प्रयत्न करने लगे । कुछ लोग शव के ही पास खड़े रहे, कुछ यत्र-तत्र देखने-घूमने लगे । कुछ लोग आपस में चर्चा कर रहे थे । एक युवक कह रहा था भगवान् भी कैसा है, अच्छे लोगों को जमीन पर टिकने ही नहीं देता, देखो ! यह सारे गांव में अच्छा माना जाता था, गांव वं मुखिया भी इसकी कद्र करते थे पर यमराज ने इसे ही उठाया ।

कोई दूसरा बोला -हां भाई वास्तव में अच्छे लोग ऐसे बहुत ही कम मिलेंगे जो सुख पूर्वक संपूर्ण जीवन जी पाते हैं । बुरे लोग तो ऐशो आराम से जीते हैं, और पूरा जीवन जीकर मरते हैं । लोग जिनके मरने का इंतजार करते हैं, वे तो वर्षों जीते रहते हैं और जिन्हें जीवित देखना चाहते हैं, वे कब मर जायें कुछ पता नहीं । एक अन्य बोला-वास्तव में तुम सत्य कह रहे हो, यह कल शाम को ही तो मेरे पास आया था बैठ कर प्रेम की दो बातों की थी, बड़ा अच्छा स्वभाव था

कोई अन्य वृद्ध जैसा एक व्यक्ति बोला- बेटा ! जीवन का कोई भरोसा नहीं अब देखो सुबह तक तो यह भला चंगा था, न मालूम सर्प कहां से आया और काट लिया । एक अंधेड़ उम्र का व्यक्ति बोला-सुना है, यह सुबह घर के भूसा रखने वाले स्थान पर गया था, वहाँ अंधेरा होने के कारण वह देख नहीं पाया, वहीं कहीं वह सर्प था काट लिया । पता नहीं फिर वह कहा गया । वृद्ध बोला-सर्प का तो बहाना है । यह तो सब यमराज का खेल है-वह जब जिसे चाहे उठा ले जाता है । अधिकांश व्यक्ति उसके गुण गान कर रहे थे । अहिंसाशतः ऐसा ही देखा जाता है, कि मरने के बाद व्यक्ति की कीमत महसूस होती है, उसके गुण नजर आते हैं । एक बुंदेलखंडी कहावत है-जियत बाप को डंडम डंडा, मरे हाड़ पहुंचावे गंगा । अर्थात् जब तक वृद्ध पिता जीवित रहता है, तब तक उसे नाना प्रकार के दुःखों में जीना पड़ता है और मर जाता है, तो उसके हाड़ों को गंगा नदी में प्रवाहार्थ ले जाते हैं ।

वास्तव में अगर जिंदा आदमी, जिंदा आदमी की कीमत करना सीख जाये, तो जो गुण मरने के बाद नजर आते हैं वे उसके जीते जी नजर आने लग जायेंगे और यह धरा स्वर्ग बन जायेगी ।

यहां उस शव अवस्था को प्राप्त व्यक्ति के बारे में चर्चाएं चल रही थी, वहां कुछ चंचल युवक घूमते हुए उन झाड़ियों तक पहुंच गये, जहां महामुनि ध्यानस्थ बैठे थे । वे उन्हें देखकर अवाक् रह गये, एकदम चमकता हुआ बदन, दुबला पतला शरीर, शरीर से निकलती हुई सुगंधित उन्हें आकर्षित करने लगी । अचानक उनमें से एक बोला—यह कोई देवता है, जो यहां बिराजमान हैं । दूसरा बोला—होना तो कोई देव चाहिये, सामान्य मनुष्य की क्या औकात जो शमशान में आ खड़ा हो और वह भी नग्न ।

उनमें से कोई अन्य विस्मृत बात को जैसे याद लाते हुए बोला इन्हें भले ही आप देवता कहे पर यह तो जैनों के साधु हैं, कल मैंने इन्हें जैन मंदिर में देखा था । इनकी तपस्या महान है, यह भूत-प्रेत आदि से बिल्कुल भी नहीं डरते हैं ।

यहां वह युवक महामुनि के बारे में समीक्षा कर रहे थे वहां महामुनि के शरीर से स्पर्शित वायु उस अचेत व्यक्ति से स्पर्शित होने लगी, उनके शरीर से स्पर्शित वायु के स्पर्श से उसमें चेतनता आने लगी । कुछ लोगों ने उसे देखकर खोला, वह युवक इस तरह उठ खड़ा हुआ, जैसे कि सोकर उठा हो ।

अब संपूर्ण शव यात्री महामुनि के चरणों में जाने लगे इतने में वे लोग भी आ गए जो लकड़ी लेने गए थे । खाली अर्थां देखकर वे घबरा गये, दूसरे ही क्षण वहां उपस्थित लोगों ने उन्हें सांत्वना दी ।

सभी समझ रहे थे, कि महामुनि के प्रभाव से उस युवक में चेतनता जागृत हुई । यह समाचार आग की तरह चारों ओर फैल गया, उस युवक के परिजन भी घटना स्थल पर पहुंच गए । सैकड़ों श्रद्धालु महामुनि के चरणों में नत थे, पर उन्होंने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, अपना पिच्छी कमंडलु उठाया और चल पड़े मंदिर की ओर । सारा गांव उनके पीछे था ।

जब वे मंदिर पहुंचे तब संपूर्ण बातचीत हुई । परिजनों के कहने पर वह युवक घर नहीं गया, उसने परिवार जनों से बोल दिया— जिसने मुझे पुनः जिंदगी दी, मैं उसी के पास रहूंगा ।

महामुनि के चरणों में रहकर वह युवक सुसंस्कारित हुआ एवं उनके ही चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया । उसे चारित्र पालन योग्य देखकर कालांतर में महामुनि ने उसे क्षुल्लक के व्रत प्रदान किए ।

महाराज श्री का प्रभाव चहुं ओर फैल रहा था, पर वे अपने प्रशंसा से आत्मोन्नति के मार्ग से जरा भी न डिगे थे । वे तो स्व कल्याण के साथ साथ पर कल्याण की भावना संजोये, बिहार कर रहे थे ।

## १७

प्रशंसा एक ऐसी वस्तु है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति पचा नहीं पाता है । अधिकांश व्यक्ति जरा सी प्रशंसा में ही आकाश छूने लगते हैं । प्रशंसा पाना सामान्य शक्ति वालों का काम नहीं है, वह तो जरा सी प्रशंसा सुनते हैं कि फूल का गुप्पा हो जाते हैं और स्वयं भी अपनी प्रशंसा में लग जाते हैं । कोई विरले ही महापुरुष होते हैं, जो सब ओर प्रशंसा होने पर भी उसमें नहीं फंसते ।

प्रशंसा होने पर अल्प ज्ञानियों को मान का भूत भी अति शीघ्र लग जाता है । अब वे अपने से बड़ों का भी तिरस्कार करने लग जाते हैं । और बड़ों का तिरस्कार करने से अपनी मूल भूमि पर आ गिरते हैं । इस लिए आचार्य सावधान करते हुए कहते हैं कि कभी-भी अपनी प्रशंसा के बहाव में मत वहो यह प्रशंसा का बहाव ही ले डूबने वाला होता है ।

आचार्य उमास्वामी ने तो इसे नीच गति का कारण बताते हुए भी कहा है परात्म निंदा प्रशंसे—सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचे— गोत्रस्य अर्थात् पर की निंदा करना और अपनी प्रशंसा करना दूसरे के अच्छे गुणों को ढांकना और अपने में गुण न होते हुए भी प्रकट करना यह नीच गोत्र के बंध का कारण है । इनसे विपरीत आत्म निंदा

पर प्रशंसा, पर गुणोदभावन और स्वगुणोच्छादन को तथा सरस प्रवृत्ति को उन्होंने उच्चगोत्र का कारण कहा है ।

महामुनि की चारों ओर प्रभावना, ख्याति, प्रशंसा थी पर वे उस ओर तनिक भी ध्यान न देकर अपने आत्मगुणों को समृद्ध करने में लगे रहते थे । जीवन के छब्बीस-सत्ताईश वर्ष उनकी साधना को भी देख चुके थे । महान दिगंबरत्व को धारण कर वे उसका पूर्णतः निर्वाह कर रहे थे । अपने जीवन के निर्माण के साथ वे अपने शिष्यों को भी जीवन निर्माण की कला सिखाते थे ।

गुरुदेव ध्यान के विशेष उपदेवता बताते थे और विभिन्न प्रकार से ध्यान करने के तरीके भी बताते थे । जब भी अपने शिष्यों को ध्यान के सूत्र देते, उस प्रकरण में एक कहानी सुनाया करते थे, जो कि ध्यान करने की प्रेरणा देती थी ।

एक बार कहानी कहते हुए वे कह रहे थे— एक समय एक राजकुमारी राजमहल की छत पर बाल संवार रही थी । पहले ही वह राजकुमारी थी, सुंदर होना स्वाभाविक था, पर वह अन्य राजकुमारियों की अपेक्षा अधिक सुंदर थी । वहां से एक वणिक पुत्र निकला वह राजकुमारी को देखकर उस पर मोहित हो गया । अब वह उसे पाने को आकुल हो उठा पर कहां राजकुमारी और कहां वणिक पुत्र संबंध होना मुश्किल था । उसकी बड़ी विचित्र दशा हो गई अब वह हमेशा ही उसे पाने के तरीके सोचा करता था, पर पाये तो कैसे? इसी चिंता के कारण वह कमजोर होने लगा । चेहरे का तेज कम पड़ गया । शरीर दुर्बल होने लगा ।

उसकी ऐसी दशा देखकर पारिवारिक जन परेशान थे, किंतु किसी को यह पता न था, कि पुत्र कमजोर क्यों हो रहा है । कुछ समय पश्चात् उसके पिता को यह ज्ञात हो गया कि वह राजा की पुत्री से शादी करना चाहता है । पिता ने उसे लाख समझाया वह उसकी समझ में कुछ ना आया । उसे तो सपनों में भी वही राजकुमारी नजर आने लगी, पुत्र इकलौता था परिवार जन उसे समझाने के अलावा कर ही क्या सकते थे । पुत्र की ऐसी स्थिति देख पिता भी चिंता में पड़

गये । शनैः शनैः यह बात उस राजकुमारी के पिता जो कि राजा थे उनको मालूम पड़ी । वह भी सोचने लगे कि क्या किया जाये श्रेष्ठी का पुत्र है, क्रोधित होना भी ठीक नहीं, लेकिन जिसके मन में ऐसे कुत्सित विचार हैं, उसे दंड मिलना आवश्यक है, उसे रास्ते पर लाना भी मेरा कर्तव्य है ।

राजा ने एक दिन उस लड़के को अपने पास बुलाया और कहा तुम राजकुमारी को चाहते हो न, अगर चाहते हो तो जाओ पहले एक माह तक साधना करो, तपस्या करो, उसके बाद मैं तुम्हें अपनी पुत्री दे दूंगा ।

लड़के ने सोचा— चलो कैसे भी हुआ, एक माह तपस्या करने के बाद तो राजकुमारी मिल ही जायेगी । फिर तो सुख ही सुख होगा ।

वह उसी दिन निर्जन स्थान में चला गया और तपस्या करने लगा । प्रारंभ के दिनों में उसे तपस्या कठिन लगी, धीरे-धीरे वह उसी में रम गया । अब वह तप में ध्यान करने लगा, कभी तीर्थों का, कभी भगवान का, तो कभी निर्ग्रन्थ और जिनवाणी के सूत्रों का ।

संयम, नियम से रहते हुए, उसे बीस दिन पूरे हो चुके थे, अब वह राजकुमारी को भूल गया था, उसे अब अपनी आत्मा नजर आने लगी थी, उसकी तपस्या की चर्चा यत्र तत्र सर्वत्र होने लगी थी, कितने ही लोग उसे साधु समझने लगे थे, कितने ही उसे नमस्कार आदि करने लगे थे, पर अब उसे जितना स्वयं से मतलब था, उतना दूसरों से नहीं ।

इस बीच परिवार वाले भी नहीं आये, वे सोच रहे थे कि हमारे जाने से उसकी तपस्या में विघ्न पड़ेगा और वह राजकुमारी को नहीं पा पायेगा । एक माह बाद तो वह स्वतः ही सुकुमाल कुमारी को लेकर घर आ जायेगा ।

एक महीना पूर्ण हुआ, राजा सोच रहा था बणिक पुत्र क्या-तपस्या करेगा और जब तपस्या नहीं कर पायेगा, तब पुत्री देने का प्रश्न ही नहीं उठता । पर जब वह पूरे एक माह तक तपस्या करता

रहा और संपूर्ण गांव में चर्चित हो गया तो राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । राजा अपने वचनानुसार इकतीसवें दिन राजा बणिक पुत्र के पास गया ।

उस युवा तपस्वी के आस पास काफी भीड़ एकत्रित थी राजा भीड़ को पार कर उसके पास पहुंचा और बोला—युवक! तुम अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, चलो उठो और अपनी वस्तु प्राप्त कर लो ।

युवक एकदम शांत था, मानों उसका अभी भी ध्यान चल रहा हो । राजा ने अपने कथन को दुहराते हुए कहा— युवक ! मैं वचन वद्ध हूँ, तुम्हें दिये हुए, वचन को अवश्य पूर्ण करूँगा । चलो उठो और अब राजकुमारी से मधुर मिलन का आनंद लो ।

युवक शांत स्वर में बोला—राजन् ! मुझे वाह्य आनंद की आवश्यकता नहीं, अब तो मुझे अंदर से आनंद आने लगा है । जो आनंद मुझे आ रहा है वह एक क्या हजार राजकुमारियों से भी नहीं मिल सकता ।

मैं आभारी हूँ आपका, जिन्होंने मुझे इस पावन पथ पर लगाया, अब मुझे यही जीवन जीने दीजिये, बस मैं यही चाहता हूँ । एक माह में मैंने साधना का अच्छा अभ्यास कर लिया है । अब मैं निर्ग्रथ वेश को धारण करूँगा । मैं अपने किये कृत्यों की क्षमा मांगता हूँ ।

राजा के आश्चर्य का पारावार न रहा । वह सोच रहा था, एक साधारण पुरुष के अंदर साधना से इतने निर्मल भाव आ सकते हैं, साधना और तपस्या से जब वह पूज्य हो सकता है, तो मैं भी क्यों न इस निर्मल मार्ग को अपनाऊँ ।

राजा अहिंसा का पुजारी था । वह अपने जीवन के साठ बसंत देख चुका था । उसने अब निवृत्ति मार्ग अपनाना ही उचित समझा और युवक को माथा झुकाकर राजमहल की ओर चल दिया अपने दायित्वों को पूर्ण करने के लिए ।

अल्प काल में ही उसने अपनी पुत्री का विवाह किसी योग्य राजकुमार के साथ कर दिया तथा अपने पुत्र को राज्य सौंप कर, जंगल की ओर बढ़ चला, उसने भी परम दिगंबर वेश को धारण किया और तप

साधना में लग गया ।

इस ध्यान से श्रेष्ठतम पद की प्राप्ति होती है । अतः ध्यान करो, पर यह ध्यान रखो, ध्यान शुभ हो न कि अशुभ । जहां मन में नाना प्रकार के अच्छे संकल्प विकल्प होते हैं अथवा संकल्प विकल्पों से रहित जो अवस्था होती है वहां शुभ ध्यान होता है ।

आचार्य पूज्य पाद ने अपने इष्टोपदेश ग्रंथ में कहा है—

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य, इतः पिण्याकखंडकं ।

ध्यानेन चदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः ॥20॥

अर्थात् यहां एक जगह चिन्तामणि रत्न रखा हुआ है और एक जगह खली का पिण्ड (टुकड़ा), ध्यान से दोनों वस्तुयें प्राप्त हो सकती, तो ज्ञानी किस वस्तु को प्राप्त करने के लिए ध्यान करेगा । कहने का मतलब है कि ज्ञानी चिन्तामणि रत्न पाने के लिये ध्यान करेगा ।

धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान चिन्तामणि तुल्य स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाले हैं तथा आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान नरक—निगोद के दुःख प्राप्त कराने वाले हैं । अतः बुद्धिमानों को शुभ ध्यान ही करना चाहिए ।

महामुनि कह रहे थे कि देखो ! उस वणिक पुत्र ने ध्यान के प्रवास से अपनी आत्मा से साक्षात्कार किया । आत्मा क अनुपम आनंद उसे मिला इसलिए उसने बाह्य विषय भोगों को छोड़ दिया ।

ध्यान का अभ्यास सभी को करना चाहिये । लोग कहते हैं कि मन ही नहीं लगता, अरे भाई लगे भी कैसे ? जहां आप उसं लगाएंगें वह वहीं लगेगा । आप उसे ध्यान में लगाने की कोशिश ही नहीं करते ।

मन चंचल है, वह कहीं भी अधिक समय के लिए नहीं टिकता है अगर मत्तको शिक्षा दी जाये और उसे अपनी आत्मा के आदेशों पर चलाया जाये तो जरूर वह कुछ समय के लिए टिक सकता है

मानव शरीर में मुख्यतः तीन तत्व होते हैं -

1. देह 2. मन और 3. आत्मा ।

जब मनुष्य का मन उसके शरीर और इंद्रियों से जुड़ता है, तो वह पाप पैदा करता है और जब आत्मा से जुड़ता है तो वह पुण्य । यह मन जब जब शरीर की सेवा करता है तब-तब दुःख पैदा होता है, और जब-जब आत्मा की सेवा करता है तब-तब सुख । हमारे दुःखों का मूल कारण यही है । मन शरीर के आदेश पर चल रहा इसलिए हम दुःखी हैं, अगर यहीं मन आत्मा के आदेशों का पालन करने लग जाये, तो जीव अल्प समय में ही सुखी हो जायेगा ।

ध्यान में भी मन मनमानी करना चाहता है, पर योगी उसे समझाते हैं, उसे बुरी दिशा से मोड़कर अच्छी दिशा में भेजते हैं । क्योंकि वे जानते हैं, मन रुक नहीं सकता । मन तो स्प्रिंग की तरह होता है उसे जितना दबाया जायेगा वह उतनी ही तेजी से उछलेगा । हां जब मन को आत्मा की आज्ञा पसंद आने लगती है तो वह रुकने लगता है । योगी जन आत्मा को तभी ध्या पाते हैं, जबकि वे मन को एकांत, शांत स्थान में बिठा देते हैं ।

इस ध्यान से ही परम पद की प्राप्ति होती है, अतः सभी को ध्यान करने का अभ्यास करना चाहिये । अभ्यास करते-करते हम भी अपनी आत्मा में स्थिर होने लग जायेंगे । किसी ने कहा है-

करत-करत अभ्यास के, जड़ मति होत सुजान ।

रसरि आवत जात ही, सिल पर होत निशान ॥

हमें यह सोचकर नहीं बैठ जाना चाहिये कि आज तो शुक्ल ध्यान होता नहीं, फिर ध्यान करने से क्या लाभ । अरे ! भाई धर्म -ध्यान ही तो शुक्ल ध्यान का कारण है, वही ध्यान करो । यह ध्यान भी परंपरा से मोक्ष का कारण है । जब तक हमारी आत्मा धर्म ध्वनि नहीं करेगी, तब तक दुःख ही दुःख है । इसलिए सभी साधुओं और श्रावकों को चाहिये, कि वे धर्म ध्यान करें । नर्क गति और दुःख के कारणभूत खोटे ध्यानों को छोड़े । खोटे ध्यान को छोड़ने का सरल तरीका है आप अच्छा ध्यान करने लगे, जब आप अच्छा ध्यान करने

लगेगे तो खोटा ध्यान स्वतः ही छूट जायेगा ।

X

X

X

आज नगर में कुछ विशेष ही हल-चल थी । श्रावक रोज की अपेक्षा आज ज्यादा प्रमुदित नजर आ रहे थे । कुछ श्रावक आपस में चर्चा कर रहे थे एक श्रावक बोला-सुना है, महामुनि आचार्य श्री आदिसागर जी के दर्शन के लिए आचार्य श्री शांतिसागर जी आ रहे ।

दूसरा श्रावक बोला- हाँ ! सुना है क्या ? सत्य है वह वहीं पास के ही गांव में आज रात्रि विश्राम करेंगे और कल सुबह वहां से आगमन होगा । क्या तुम्हें पता नहीं समाज के कुछ प्रमुख व्यक्ति वैयावृत्ति के लिए भी गए ।

कोई अन्य व्यक्ति बोला- भैया ! हमारे यहां तो कल के लिये चौके की भी तैयारी हो गई है । भगवान करे दोनों महामुनि एक साथ मेरे यहां ही आहारार्थ आ जाएं । वह व्यक्ति पुनः बोला-महामुनि न सही उनके कोई शिष्य तो आ ही जायेंगे ।

पहले वाला श्रावक बोला- अरे ! भैया क्या तुम्हें पता नहीं अभी महामुनि के पाँच ही उपवास हुए हैं, वे सात उपवास के बाद ही आहार को उठेंगे । बड़े दृढ़ संकल्पी हैं, अस्वस्थ होने पर भी सात सात उपवास करते हैं फिर अभी तो वे स्वस्थ हैं ।

-हाँ आ सकते हैं । लेकिन हमें पहले से यह बात निश्चित नहीं करना चाहिये । इससे साधुओं की चर्चा कराने में दोष लगता है । विभिन्न प्रकार के व्यक्ति विभिन्न प्रकार की चर्चाएं कर रहे थे अधिकांश श्रावकों के मुख पर था-कल हमें दो महामुनियों का पावन मिलन देखने मिलेगा । इसी उहापोह में रजनी का आगमन हो चुका था, अब निद्रा देवी सभी को अपने पास बुलाने लगी थी ।

X

X

X

प्रातः काल से ही लोगों धुले बस्त्र पहिन कर जिनदेव व महामुनि का दिर्शन कर उस दिशा में चल पड़े थे जहां से मुनि शांति सागर जी आ रहे थे । आचार्य शांति सागर जी अपने ऐलक दीक्षा गुरु के पास शिष्यों के साथ जीवन के आदर्श श्री 108 महामुनि आचार्य श्री आदिसागर जी महाराज के चरणों में आ पहुंचे ।

दोनों वीतरागियों का पावन मिलन श्रावकों के मन में आल्हाद पैदा कर रहा था । वास्तव में जहां हम अपने प्रियजन अथवा आराध्य को प्रसन्न देखते हैं, वहां हम निसर्गतः ही प्रमुदित हो जाते है, यह मनुष्य क्या प्रत्येक प्राणी की प्रकृति सी है ।

दोनों आचार्यों के मिलन के समय, कवि की निम्न पक्तियां स्पष्ट नजर आ रही थी -

गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवें ।  
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावें ॥  
होउ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवें ।  
गुण ग्रहण का भाव रहे, नित दृष्टि न दोषों पर जावे ॥

धर्मी सो गो बच्छ प्रीति, वाली बात भी स्पष्ट नजर आ रही थी । महामुनि का महान उपकार मुनि शांति सागर जी भूले न थे । वे जाकर महामुनि के चरणों में बैठे थे । दोनो यतिराज समाचार चर्चा कर रहे थे । मार्ग की चर्चा, स्वास्थ्य की चर्चा, रत्नत्रय की चर्चा, संघ और प्रभावना की चर्चा करते-करते वे अपने जीवन के अतीत में जा पहुंचे ।

पिता-पुत्र जैसी बातें चल रही थी, बातों का विराम न था, क्योंकि वर्षों बाद गुरु शिष्य का मिलन हुआ था ।

महामुनि सूर्य का ताप बढ़ता देखकर बोले- शांति सागर जाओ, आहार चर्या करो, समय ज्यादा हो रहा है ।

-गुरुदेव आप..... ? शांतिसागर जी बोले ।

-नहीं मैं आज आहार चर्या नहीं करूँगा, आज मेरा छटा उपवास है । कल चर्या जरूर कर सकता हूँ ।

—महामुनि ! आप तो हमेशा ही ऐसा करते हैं । अब मैं भी आहार के लिए कल आपके साथ ही उठूंगा । शांतिसागर जी बोले ।

—नहीं ! ऐसा नहीं करो, देखो! तुम धूप में चलकर आये हो, शरीर को डबल कष्ट पहुंचाना ठीक नहीं । जाओ चर्या उठो । देखो कुछ साधु मार्ग की थकान से आकुल हैं, उनका भी ध्यान रखो ।

—जो आज्ञा गुरुदेव..... कहते हुए आचार्य श्री शांतिसागर जी और दोनों संघों के साधुओं ने आहार चर्या की ।

आहार चर्या के बाद पुनः कुछ चर्चायें प्रारंभ हुईं और अब प्रतिदिन दोनों समय अच्छी-अच्छी चर्चाओं का संपादन होने लगा ।

जितने समय भी आचार्य शांतिसागर जी अपने ऐलक दीक्षा गुरु आचार्य श्री आदिसागर जी के चरणों में रहे, उनके अनुशासन का पूर्णतः पालन किया ।

आचार्य शांति सागर जी की गुरु भक्ति देख साधु और श्रावक सभी गद् गद् हृदय हो, उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण करते थे ।

## १८

निर्ग्रंथ साधु बाहर से तो नग्न होते ही हैं, अंदर से भी नग्न होते हैं । उन्हें किसी से भी न तो राग ही होता है, और न द्वेष । वे हमेशा अपने आप में ही जीते हैं । दुनियां के बाह्य आडंबर को छोड़कर वे स्वयं से लगन लगाते हैं । वह पूर्ण रूपेण यह जान चुकते हैं कि संसार असार है । अगर संसार में कुछ सार भूत है, तो एक मात्र आत्मा, उस आत्मा को ही शुद्ध रूप में प्रकट करना है ।

आचार्य कुंद कुंद स्वामी ने जीव की अनादि कालीन स्थिति को बताते हुए अध्यात्म रस से सराबोर ग्रंथ श्री समयसार में कहा है —

सुद परिचिदाणुभूदा, सवस्स वि कामभोग बंध कहा ।

एयत्तस्सुवलंभो ठाणवरि ण सुलभो विहितस्स ॥

अर्थात् काम भोग बंध की कथा तो सबको सुलभ है, अनादि काल से उसी को सुना है, उसी का परिचय हुआ है और उसी का अनुभव किया है, परंतु निर्मल भेद विज्ञान रूपी प्रकाश से स्पष्ट दिखाई देने वाला जो आत्मा का जो एकत्व है, वह यद्यपि सदा अन्तरंग में प्रकाशमान है, फिर भी वह कषायों के साथ एक मिल गया है, इसलिए प्रकट नहीं हो पा रहा है। अपनी आत्मा का ज्ञान न होने से न आज तक उसे जाना, न उसके बारे में सुना और न ही उसका अनुभव ही किया। आत्मा के एकत्वपने की सुलभता हो पाना अत्यंत दुर्लभ है।

योगी जन उस दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति हेतु ही साधना करते हैं। पर से बचने का प्रयास करते हैं।

X

X

X

महामुनि एक शिलाखंड पर मंदिर की धर्मशाला में बैठे हुए थे। कुछ श्रावक भी उनके आस-पास बैठे हुए थे।

शिवगौड़ा जिस पुत्री को अल्पावस्था में अपनी बहिन को सौंप कर आए थे, अब वह अपने पति के घर पहुंच गई थी। वर्षों बाद आज वह सास के साथ महामुनि के दर्शनार्थ आई थी।

महिलाओं की आदत ही होती है, पहचान बनाने की वह महिला भी अपने को रोक न पाई, बोली—महाराज ! मैं आपकी समधन हूँ। यह आपकी बेटी मेरे बड़े पुत्र को ब्याही है।

महाराज बोले—मेरा संसार में किसी से कोई भी संबंध नहीं है। मैं तो दीक्षा लेने के साथ ही संपूर्ण संबंधों को छोड़ चुका हूँ।

बड़ी विडम्बना है, इन संसार के रिश्ते—नातों की, पता नहीं कौन ? कब ? किसका ? क्या बन जाये। बड़ी विचित्र स्थिति है, संसार की। मां को पुत्री और पुत्री को मां, भाई को पति और पति को पुत्र होते देर नहीं लगती जिसे निजात्मा का ज्ञान नहीं है, वे ही इन रिश्ते और नातों के चक्कर में फंसते हैं, ज्ञानी तो अपने आत्मा में ही रहते हैं।

ग्रंथों में एक कहानी आती है, जिसमें एक व्यक्ति के साथ

ही अठारह नाते जुड़े हुए है । मैं वही सुनाता हूँ—मालपदेश की उज्जयिनी नगरी में राजा विश्व सेन राज्य करता था । उसी नगर में एक सुदत्त नाम का धनाढ्य सेठ रहता था । वह सेठ बसंत तिलका नाम की बेश्या पर आसक्त हो गया और उसे अपने घर में ही रख लिया । जब बेश्या गर्भवती हुई तो उसके शरीर को रोंगो ने घेर लिया, अतः सेठ ने उसे अपने घर से निकाल दिया । वह अपने घर पहुंची । कुछ कालोपरांत उसने एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया । उसने खेद खिन्न होकर उन दोनों शिशुओं को अलग-अलग रत्न कंबल में लपेट कर पुत्री को दक्षिण दरवाजे के बाहर छोड़ दिया, जिसे प्रयाग निवासी वैश्य ले गया, और अपनी स्त्री को सौंप दिया, उस कन्या का नाम कमला रखा ।

पुत्र को उत्तर दिशा के दरवाजे पर छोड़ दिया, जिसे साकेतपुर का वासी समुद्रदत्त नाम का वैश्य ले गया, और अपनी स्त्री को सौंप दिया, जिसका नाम धनदेव रखा । पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से धन देव और कमला का विवाह हुआ । भाई-बहिन, पति-पत्नि बन गए । बाद में धन देव व्यापारार्थ, उज्जयिनी नगरी में गया । वहां वह बसंततिलका बेश्या अर्थात् अपनी मां पर मोहित हो गया और उसके संयोग से एक वरुण नाम का पुत्र हुआ । एक समय कमला जिन मंदिर गईं, वहां किसी मुनिराज से उसने अपने पूर्वभव की कथा पूछी ।

मुनिराज उसके पूर्वभव की कथा सुनाते हुए बोले— इसी उज्जयिनी नगरी में एक सौम शर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था । उसकी कश्यपी नाम की स्त्री थी उसके अग्निभूती और सोमभूति नाम के दो पुत्र थे एक बार वे कहीं से आ रहे थे कि उन्होंने मार्ग में जिनदत्त मुनि से उनकी माता जो जिनमती नाम की अर्यिका थी, उनको रत्नत्रय एवं उसके शरीर स्वास्थ्य की कुशलता आदि पूछते देखा तथा जिनभद्र नामक मुनि से सुभद्रा नामक जो आर्यिका जो उनकी पुत्रवधु थी रत्नत्रय कुशलता आदि का समाचार पूछते देखा । वहां उन दोनों भाईयों ने उनकी हंसी करते हुए कहा देखो— कैसी विडम्बना है, तरुण की तो वृद्ध स्त्री और वृद्ध की तरुण परमेश्वर ने भी क्या

विपरीत योग बनाया है ।

इस प्रकार हंसी के पाप से सोमा शर्मा तो वसंततिलका हुई और अग्नि भूत—सोम भूत दोनो भाई मरकर उसके पुत्र पुत्री युगल हुए । उसके कमला और धनदेव नाम रखे गये । धनदेव और बसंततिलका के संयोग से वरुण नाम का पुत्र हुआ कश्यपी ब्राह्मणी को मुनि के मुख से अपनी पूर्व बीती सुनकर जाति उसे जाति स्मरण हो गया । वह उसी समय उज्जयनी नगरी पहुंची । वसंततिलका के घर में उसने वरुण को पालने (झूले) में झूलते देखा । उसे देखकर कमला कहने लगी हे बालक ! तेरे साथ मेरे छः नाते हैं सो सुन ।

पहला—मेरा पति धनदेव, तू उसके संयोग से उत्पन्न हुआ इसलिए तू मेरा भी सौतेला पुत्र है । दूसरा— धनदेव मेरा सगा भाई है उसका तू पुत्र है इसलिए मेरा भतीजा भी है । तीसरा—तेरी माता बसंत तिलका है वह ही मेरी माता है, तू मेरा भाई भी है । चौथा—तू मेरे पति धनदेव का छोटा भाई है इसलिए तू मेरा देवर भी है । पांचवा—धनदेव मेरी माता बसंततिलका का पति है इसलिए धन देव मेरा पिता भी हुआ उसका तू छोटा भाई है इसलिए तू मेरा काका (चाचा) भी है ।

छठा—मैं बसंत तिलका की सोत हूँ इसलिए धनदेव मेरी सोत का पुत्र हुआ इसलिए मेरा पोता भी है ।

इस प्रकार कमला वरुण के साथ छह नाते कह रही थी कि वही वसंततिलका भी आ पहुंची और बोली तू कौन है जो इस प्रकार मेरे पुत्र से छह नाते कह रही है ?

तब कमला बोली तुम्हारे साथ भी मेरे छह नाते हैं—सुनो पहला—पहले तो तू मेरी माता है क्योंकि धनदेव के साथ तेरे ही उदर से (पेट) से उत्पन्न हुई हूँ । दूसरा— धनदेव मेरा भाई तू उसकी स्त्री है इसलिए मेरी भाभी भी है । तीसरा—तू मेरी माता है तेरा पति धनदेव मेरा पिता हुआ और उसकी तू माता है, इसलिए मेरी दादी भी है । चौथा—मेरा पति धनदेव है तू उसकी स्त्री है इसलिए तू मेरी सौत भी है । पांचवा—धनदेव तेरा पुत्र हुआ है सो मेरा भी पुत्र हुआ तु उसकी स्त्री है इसलिए तू मेरी पुत्रवधु भी है । छठा— मैं धनदेव की स्त्री हूँ, तू

धनदेव की माता है इसलिए तू मेरी सास भी है ।

इस प्रकार वेश्या असंमजस में पड़कर विचार कर रही थी कि वहां धनदेव आ पहुंचा । उसको देखकर कमला बोली कि तुम्हारे साथ भी मेरे छह नाते हैं पहला—पहले तो तू और मैं इस वेश्या के उदय से एक साथ उत्पन्न हुए सो तू मेरा भाई है । दूसरा—बाद में तेरा—मेरा विवाह हो गया तो तू मेरा पति है । तीसरा—बसंततिलका मेरी माता है उसका तू पति है इसलिए मेरा पिता भी है । चौथा—वरुण तेरा छोटा भाई है सो मेरा काका हुआ । उसका तू पिता है इसलिए काका का पिता होने से तू मेरा दादा भी हुआ । पांचवा—मैं वसंततिलका की सौत और तू मेरी सौत का पुत्र है इसलिए मेरा तू भी पुत्र है । छठा—तू मेरा पति है इसलिए तेरी माता वेश्या मेरी सास हुई तुम सास के पति इसलिए मेरे ससुर हुए ।

इस तरह एक ही भव में एक ही प्राणी के अठारह नाते हुए । इससे ज्ञात होती है संसार की बिडम्बना और विचित्र दशा ।

महामुनि बोले जब किसी के एक जीवन में अठारह नाते घटित हो सकते हैं तो इस जीवन के प्रत्येक जीव के साथ कितने नाते न हो चुके होंगे वास्तव में अगर देखा जाए तो संसार में कोई भी ऐसा प्राणी न निकलेगा जिसमें कि अनादि काल से कोई न कोई संबंध न बना हो संबंधों नातों की बड़ी बिडम्बना को छोड़कर अपनी आत्मा के बारे में सोचो ।

बेटी तो पहले ही चुप थी पर अब समधन के पास भी ऐसे कोई शब्द नहीं थे जिससे वह आगे कुछ कह सके महाराज के उपदेशों से उसके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आया अब उनका भी कुछ कुछ लक्ष्य आत्म कल्याण का बना बह कुछ व्रतों को ग्रहण कर उठकर अपनी राह पर चल दी ।

X

X

X

महा मुनि अत्यंत शांत और सरल प्रकृति के थे,

भवोद्धारक भी थे वे जिस पर भी अपनी कृपा दृष्टि करते थे वही संयम के मार्ग पर चल पड़ता था महामुनि के विशाल संघ नायक बन चुके थे अब तक वे अपने जीवन में पैसठ— छियासठ बसंत पार कर चुके थे इस अबधि में उन्होंने कुम्भोजबाहुबलि, मांगीतुंगी, गुणावा, नवादा, पावापुरी, कुंडलपुरी, आरा, पटना, अयोध्या, तारंगा जी, शत्रुंजय गिरि, सोनागिरि, राजगृही, पालगंज, गजपंथा, श्रवणबेलगोला, सम्मेशिखर जी आदि सिद्धक्षेत्र अतिशय क्षेत्रों की यात्रा कर ली थी ।

संयम काल में उन्होंने ऐनापुर, जैनापुर, हातकलंगड़ा, आबराद, शैरगांव, जयसिंहपुर, सांगली, बडगांव, उत्तूर, चिचवाड़, चिक्कोड़ी, कोल्हापुर, कुंजवन, जैनवाड़ी, कोथली, अमलवाड़, कुम्भोज, नेत्र, मझले, आजंणी, नांदणी, इचलकरजी, गोकक, बोरगांव, आलते, इंगली, ऊदगांव, कवले, विराज, शेडवाल, अंकली, श्राम कुप्पनबाड़, सदलगा, नसलामुर, कोगनोली, कोन्नूर, गलतगा, मांगूर, सिरदवाड़, तेरदाल, बेडी कसाल भरुच आदि गांव—नगरों में पद विस्तार कर धर्म प्रभावना की ।

इन स्थानों में से जिन स्थानों में ध्यान करने योग्य विशेष स्थान गुफाएं, शिलाखण्ड आदि थे तथा जैन भाई भी थे वहां पर महाराज श्री ने अपने चातुर्मासों की अवधि में प्रवास किया था ।

उनका अधिकांश समय जंगलों, एकांत मंदिरों, शमशानों, अथवा वृक्षों के नीचे बिताता था । चतुर्थकाल के आदर्श को प्रस्तुत करने वाले महामुनि जहां भी जाते वहीं पर तीर्थ बन जाता था ।

X

X

X

महाराज का उपदेश चल रहा था—कि जीवन का कोई भरोसा नहीं जिसने मानव तन पाकर आत्म कल्याण नहीं किया उसका जीना ही बेकार है । यह मनुष्य का शरीर बार—बार नहीं मिलता है इसे यूँ ही "माटी के मोल मत" खो देना । महामुनि एक दोहा कहते हुए ।  
बोले— तन पाया तो तप करो, करो कर्म का नाश ।

सूर चांद से अधिक है, तुममें दिव्य प्रकाश ॥

अर्थात् यह मनुष्य तन पाया है, तो तप कर लो पुनः न जाने यह मिला अथवा नहीं, इस शरीर से तपकर कर्म का नाश करो कर्म नाश हो जाने पर आत्मा चंद्र-सूर्य से भी अधिक तेजस्वी रूप में प्रकट हो आती है ।

महामुनि अपनी सहज सरल वाणी में कहते ही जा रहे थे, कि जब उनकी बात पूर्ण हुई, तो वह पुनः एकदम शांतचित्त उसी शिला पर आ बैठे जहां वे अधिकांश बैठा करते थे ।

महाराज बैठे ही थे, कि वहां दो वृद्ध आ पहुंचे, वे भी अन्य वृद्धों की भांति अपने जीवन से निराश हो चुके थे । अब वे अपने बुढ़ापे के दिन गिन गिनकर काट रहे थे । मानो अब तो उन्हें अपने मरने की प्रतीक्षा थी । उनका एक मात्र अंतिम कार्य मरण ही शेष रह गया था जिसे वे ऐन-केन-प्रकरेण जिस तरह भी संभव हो, सुधार लेना चाहते थे, उन्होंने सुन रखा था, कि जिसका मरण सुधर जाता है वे एक ही परमव में अगले जन्म में सुख संयोगों में पहुंचते हैं, उनको ही सुख की प्राप्ति होती है । और जिनका मरण बिगड़ जाता है, वे नरक-निगोद आदि गतियों में जाकर अनंतानंत काल तक असीम सुख भोगते हैं ।

अतः वे कहा करते थे, कि जीवन तो जैसे जिया वैसे जी लिया अब उसका रोना-रौने से क्या प्रयोजन ? अब तो बार-बार ये ही विचार आता है, कि कम से कम मरण तो न बिगड़ जावे ।

उन बेचारों को क्या पता था, कि जिसने अपना जीवन रो-रोकर जिया हो, जिनको जीवन भर संक्लेश ही संक्लेश और शांति रही हो जिनका जीवन केवल, आकुलता में ही बीता हो, जिसने जीवन में सुख शांति का कभी मुंह भी नहीं देखा हो, निराकुलता का कभी अनुभव भी नहीं किया हो; इस कारण जिनके जीवन भर संक्लेश परिणाम रहे हो, आर्त्तध्यान ही हुआ हो, उनका मरण कभी नहीं सुधर सकता; क्योंकि जैसी मति वैसी गति ।

आगम के अनुसार जिसका आयु बंध जिस प्रकार के संक्लेश या विशुद्ध परिणामों में हो जाता है, उसका मरण ही उसी प्रकार के संक्लेश या विशुद्ध परिणामों में होता है । अतः यह कहा जायेगा, कि

“जब तक आयु बंध नहीं हुआ, तब तक मति अनुसार गति होती है, और आयु बंध हो जाने पर गति अनुसार मति होती है । जिसे कुगति में जाने से बचना हो, वह अपनी मति को पहले ही व्यवस्थित कर ले ।”

उन वृद्धों ने जब से महाराज के उपदेश में यह वाक्य सुने थे तभी से उनके मन में तूफान मचा हुआ था, वे कुछ घबराये हुए से भी दिख रहे थे । उन में से साहस कर एक बोला—गुरुदेव ! हमारा तो पूरा जीवन ही संक्लेश परिणामों में बीता है, अब हमारा क्या होगा ? हमारा कल्याण कैसे होगा ?

महाराज उन वृद्धों की शंका का निवारण करते हुए बोले—आप घबराए नहीं आप लोगों के अंदर जो आत्मकल्याण की भावना जागी है उससे ऐसा लगता है कि अभी आपको अशुभ आयु व खोटी गति का बंध नहीं हुआ है । जिसको अशुभ आयु और खोटी गति का बंध हो जाता है उसकी मति भी गति के अनुसार कुमति हो जाती है ।

जिसने भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र देव पर, जिन गुरुओं पर जिनवाणी तथा सच्चे धर्म पर श्रद्धा की है, तथा उनकी भक्ति—स्तुति सेवा आदि में मन लगाने के साथ—साथ अपने आत्म तत्व पर श्रद्धान किया है, वह निश्चित ही भव्य है और निकट भविष्य में भी वह मोक्ष का भागीदार बनेगा । मरण के पहले ही अपना जीवन सुधारना आवश्यक है, तथा जब जीवन ही न सुधारने, तो मरण सुधार पाना मुश्किल है । अतः आप लोग मरण सुधारने कि चिंता छोड़कर अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए अपने समय व शक्ति का सदुपयोग करें संयम से ही जीवन सार्थक हो सकता है अतः संयमित जीवन बनाना भी आवश्यक है अपने उपयोगों को लौकिक कार्यों के विकल्पों और विकथाओं में लगाकर व्यर्थ का कर्मबंध न करे । जीवन अमूल्य है, इसका एक भी क्षण विषय—कथाओं में न चला जाये अपने उपयोग को सदा ही निर्मल रखे ।

दोनों वृद्ध महाराज की बात सुन कुछ उत्साहित हुए पर उन्होंने सुन रखा था कि आयु कर्म का बंध तो वर्तमान आयु के त्रिभाग

में हो जाता है अतः उनका मानना था कि हमारी आयु के त्रिभाग तो कब के निकल चुके होंगे; क्योंकि हम अपने जीवन के पैसठ बंसत तो देख ही चुके हैं ।

वस्तुतः उन्होंने आयु के त्रिभाग सिद्धांत को पूरी तरह समझा ही न था । महाराज उन्हें समझाते हुए बोले— “आगामी आयु कर्म का बंध जो वर्तमान आयु के त्रिभाग में होता है, वह जीवन में आठ बार आता है, फिर भी यदि आयु कर्म न बंधे तो जीवन के अंत समय में अर्थात् मरण के अंतः महूर्त के पहले भी होता है ।

दूसरा वृद्ध बोला गुरुदेव बात कुछ समझ में नहीं आ रही है आयु के त्रिभाग से क्या मतलब है, कृपया कुछ उदाहरण देकर समझाइये ?

महामुनि बोले— अच्छा ठीक है उदाहरण आपको ही बताते हैं, मान लो आपकी वर्तमान (भुज्यमान) आयु इक्यासी वर्ष है, तो इक्यासी में तीन का भाग देकर उसमें से एक का भाग घटाने पर अर्थात् दो तिहाई उम्र बीत जाने पर इक्यासी वर्ष का प्रथम प्रभाग चौवोन वर्ष की उम्र में आयेगा तब आगामी आयु बंध हो सकता है, अतः उसमें आगामी बंध न हुआ तो शेष बचे सत्ताईस वर्षों का त्रिभाग बहत्तर वर्ष की उम्र में आएगा उसमें आयु का बंध हो जाएगा अतः उसमें भी आयु का बंध नहीं हुआ तो नौ वर्ष का तीसरा त्रिभाग अठत्तर वर्ष की उम्र में आएगा उसमें आयु का बंध होगा यदि उसमें भी आयु बंध नहीं हुआ तो चौथा त्रिभाग अस्सी वर्ष में पांचवाँ त्रिभाग अस्सी वर्ष आठ माह । और छठा त्रिभाग अस्सी वर्ष दस माह बीस दिन में सातवाँ प्रभाग अस्सी वर्ष ग्यारह माह सोलह दिन व सोलह घंटे में आठवाँ त्रिभाग अस्सी वर्ष ग्याहर माह पच्चीस दिन बारह घंटे व चालीस मिनट में आएगा जिसमें आयु का बंध होगा ।

इस प्रकार वर्तमान आयु के आठ अवसर आते हैं यदि इन आठ अवसरों में भी आयु का बंध नहीं हुआ तो आयु का असंख्यातवाँ.

भाग वर्तमान आयु का शेष रहने पर आगामी आयु का बंध होता ही है । अभी आपकी उम्र पैसठ-छयासठ वर्ष की है । अगर इस दृष्टि से विचार करें तो अभी आपकी आयु बंध का केवल एक विभाग ही निकला होगा । जिसमें आयु बंध की संभावना थी, सात अवसर फिर भी शेष है । अतः अभी भी आपको आत्म कल्याण के लिए सुअवसर है, निराश होने की कोई बात नहीं है, पर इतना अवश्य समझ लीजिए कि शुभस्य शीघ्रम शुभ काम में देरी नहीं करना चाहिए ।

कदाचित् किसी का आयु बंध हो भी गया हो तो भी निराश नहीं होना चाहिये । निराश होने के बजाय देव, शास्त्र गुरु के प्रति श्रद्धा बढ़ाना चाहिए । दान, पूजा, स्वाध्याय आदि के द्वारा परिणाम विशुद्ध रखना चाहिए जिससे आयु की स्थिति में उत्कर्षण-अपकर्षण तो हो सकता है, दान, पूजा, स्वाध्याय निरर्थक नहीं जाता ।

आपको अब तक की हुई भूल या लापरवाही से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है, पर दुनियादारी के झंमेलो में अब एक मिनट भी खराब करना आपके हित में नहीं है ।

महाराज श्री की बात पर सहमत होते हुए पहला वृद्ध बोला—हाँ, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं । मैंने भी एक बार एक उक्त सुनी थी । किसी ने कहा था कि श्रेयोसि बहुविहनानि अच्छे कामों में विघ्नोंकी संभावना अधिक रहती है ऐसे विघ्नों की संतोषी लोगों की दुनिया में कमी नहीं है, जिन्हें दूसरों के अच्छे कामों में विघ्न डालने में ही सुख मिलता है । अतः आपकी संपूर्ण बात को मानेंगे । पर यह तो बताइए कि इसके लिए हमें सर्वप्रथम क्या करना चाहिए ?

महामुनि उसे मार्गदर्शन देते हुए बोले—जिनके जीवन में मानसिक शांति रहेगी, जिनका जीवन विषय-कषायों से संक्लेशित नहीं होगा, जिनके जीवन में विशुद्ध परिणाम रहेंगे, उन्हें अशुभ गतियों में जाने के कारणभूत नरक-तिर्यच आयु का बंध नहीं होगा । ऐसी स्थिति में उसका कुमरण कैसे हो सकता है ? वे तो जब भी शरीर छोड़ेंगे समता और समाधि पूर्वक ही छोड़ेंगे ।

पर ध्यान रहे, जिनका जीवन संयम मय बीता हो, सुख-शांति

एवं निराकुलता में बीतता है, उन्हीं का समाधि मरण हो पाता है । अतः हमें मरण सुधारने की बजाय जीवन सुधारने के प्रयत्न करना चाहिए ।

दूसरा बृद्ध बोला— यह तो ठीक है, पर मानसिक शांति कैसे रहेगी ? उसका उपाय क्या है ? हमारा जीवन—विषय—कषायों से कैसे बचे ? हमारे परिणाम विशुद्ध कैसे रहें ? इन सब की विधि भी तो आप बताइये ?

ऐसे उपदेश तो हमने बहुत बार सुने की कषाय मत रखो, शांति रखो विषयों से बचो, आदि, पर उनसे कुछ भी काम नहीं बना, इन उपदेशों से कषायें कुछ भी कम नहीं हुई । जब तक हमारे मनोविकारों को जन्म देने वाली सांसारिक समस्याओं का समुचित समाधान नहीं होता, तब तक इन क्रोधादि मनोविकारों का अभाव कैसे हो सकता है ? अतः जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में हमें कोई मार्ग दर्शन दीजिए, ताकि हम अपने जीवन का समुचित उपयोग अच्छी तरह कर सकें ।

मुनिराज उनकी दृष्टि समझ गये थे, उन वृद्धों को कुछ स्वाध्यायी प्रेमी समझकर महामुनि अब उन्हें कुछ आध्यात्मिक दृष्टि से समझाते हुए बोले—शांति के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है, मन की अशुभ प्रवृत्तियों का निरोध । जब तक मन यत्र—तत्र भटकता रहेगा, संकल्प—विकल्पों में फंसा रहेगा, शांति कहां से आएगी ।

वे जैनदर्शन के वस्तुस्वतंत्र और कर्ता—कर्म के सिद्धांतों को समझाते हुये बोले— तीन लोक में जितने भी पदार्थ हैं वे सब अपने—अपने स्वभाव से ही मिलते—बिछुड़ते हैं—स्वयं आते—जाते हैं । परस्पर कर्ता कर्म का संबंध नहीं है, मात्र निमित्त—नैमित्तिक संबंध है, आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने कहा है—

वपुर्गृहं धनं दारा, पुत्रा मित्राणि शत्रवः ।

सर्वधान्य स्वाभावानि, मूढा स्वानि प्रपद्यते ।। इष्टोपदेश ।।

अर्थात् शरीर घर, धन, स्त्री, पुत्री, मित्र शत्रु आदि ये सब आत्मा से अन्य स्वभाव वाले हैं, पर मूर्ख व्यक्ति इन्हें अपने मानता है । ये तो सब बाह्य संयोग हैं ।

निश्चय से देखा जाए तो एक बस्तु दूसरी बस्तु का कुछ भी अच्छा बुरा नहीं कर सकती ? फिर क्रोधित करने की क्या आवश्यकता ? खेद खिन्न क्यों हो ? हर्ष-विषाद क्यों करें ? संक्लेशित भी क्यों हो ?

आत्म तत्व और बस्तु स्वतंत्र के सिद्धांत को स्वीकार करने वाला व्यक्ति तो हमेशा प्रत्येक परिस्थिति को कर्म विपाक समझकर साम्य भाव धारण करता है । वे संयोग-वियोग, मकान-शमशान, सुख-दुख, शत्रु-मित्र, यहाँ तक कि जीवन और मरण में भी समता परिणाम बनाये रखने का पावन प्रयास करते हैं ।

कर्म सिद्धांत के अनुसार भी कोई किसी को सुख-दुःख देने वाला नहीं है, अपने किये का फल स्वयं को ही भोगना पड़ता है । आचार्य अमितगति ने कहा भी है -

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा ।  
 फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ॥  
 परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं ।  
 स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥ ॥ द्वात्रिंशतिका ॥

जब महामुनि ने उन्हें यह श्लोक विस्तार पूर्वक समझाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने बहुत संतोष व्यक्त किया । मानों उन्हें कोई निधि मिल गई हो अथवा हरे-भरे घावों पर शीतलता प्रदान करने वाली मरहम लगा दी गई हो । एक नया संतोष और नया रास्ता उन्हें नजर आने लगा था ।

वे वृद्ध अब महामुनि के चरणों में प्रतिदिन आने लगे थे । इन सात-आठ दिनों में मन की शांति और समाधि के स्वरूप तथा

अन्यान्य सिद्धांतों पर अच्छी चर्चा हो चुकी थी । पर आज उन्होंने आगम के अनुसार सल्लेखना के स्वरूप को समझाने की जिज्ञासा रखी ।

महामुनि सरल शब्दों में बोले—“सल्लेखना जैन दर्शन का परिभाषिक शब्द है, जो दो शब्दों से मिलकर बना है— सत + लेखना = सल्लेखना । जिसका अर्थ होता है सम्यक् प्रकार से काम और कषाय को कृश करना ।

जब उपसर्ग, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा या असाध्य रोग आदि कोई ऐसी अनिवार्य, परिस्थिति उत्पन्न हो जावे, जिसके कारण धर्म की साधना संभव न रहे, तो वस्तु स्वरूप की समझ एवं आत्मा के आश्रय से कषायों को कृश करते हुए अनशनादि तप द्वारा काम को कृश करके धर्म रक्षार्थ मरण को वरण करने का नाम सल्लेखना है । इसे मृत्यु महोत्सव भी कहते हैं ।

धर्म आराधक उपर्युक्त परिस्थिति में प्रीतिपूर्वक प्रसन्न चित्त से वाह्य में शरीरादि संयोगों को एवं अन्तरंग में राग-द्वेष आदि कषाय भावों को क्रमशः कम करते हुए परिणामों में शुद्धि की वृद्धि के साथ शरीर का परित्याग करता है । बस यही संक्षेप में सल्लेखना का स्वरूप है । समाधि की व्याख्या करते हुए शास्त्रों में कहा है कि “समरसी भाव समाधि, समरसी भावों का नाम समाधि है । उत्तम परिणाम में चित्त को स्थिर रखना । या पंच परमेष्ठि का स्मरण करना समाधि है । अथवा समता धारण करना समाधि है ।

समाधि में त्रिगुप्ति की प्रधानता होने से समस्त विकल्पों का नाश होना मुख्य है । मुनिराजों के समस्त शुभाशुभ विकल्प छूट जाते हैं उन्हें पर के प्रति राग-द्वेष बुद्धि भी नहीं रहती है इसलिए वे परम समाधि के धारक होते हैं ।

सल्लेखना में इसी काम और कषाय को कृश करना मुख्य है, वही समाधि में निज शुद्धात्म स्वरूप का ध्यान प्रमुख है ।

वैसे तो सल्लेखना और समाधि शब्द पर्यायवाची शब्द के रूप में भी प्रकट हुए हैं, फिर भी प्रयुक्त दृष्टि से देखने पर अंतर मालूम पड़ता है, इस अंतर से यह स्पष्ट होता है, कि समाधि में सल्लेखना

सफल हो सकती है । जब तक जीवन में स्वपर के प्रति समरसी भाव या साम्य भाव नहीं होगा, तब तक कषाओं का कृश कर पाना संभव ही नहीं है, और कषायें कृश हुए बिना शरीर को कृश करने का कुछ भी अर्थ नहीं है । कषाओं के साथ काय कृश करना ही सल्लेखना है, केवल काय को कृश करना आत्मघात है, सल्लेखना नहीं ।

सल्लेखना और समाधि में संक्षिप्त में अंतर स्पष्ट करने के बाद महामुनि सल्लेखना के भेदों को स्पष्ट करते हुए कह रहे थे, सल्लेखना के मुख्य दो भेद हैं (1) नित्यमरण और (2) तदभव मरण ।

प्रति समय आयु कर्म के क्षय के साथ साथ द्रव्य सल्लेखना पूर्वक विकारी परिणाम विहीन शुद्ध परिणामन नित्य मरण सल्लेखना है । तथा भुंज्यमान (वर्तमान) आयु के अंत में शरीर आदि के प्रति निर्ममत्व होकर साम्य भाव से शरीर त्यागना तदभव मरण सल्लेखना है महाराज अपनी बात कह ही पाये थे, कि दूसरा वृद्ध बोला — यह तो ठीक है, पर शास्त्रों में काय सल्लेखना, कषाय सल्लेखना भक्त प्रत्याख्यानानादि नाम भी तो सल्लेखना के प्रकरण में आते हैं । ये क्या है इनका क्या स्वरूप है । इनके धारण की विधि क्या है । यह भी हम जानना चाहते हैं कृपाकर इन भेदों का भी स्पष्टीकरण करने की कृपा करें ?

महामुनि बोले— “काय को कृश करना सहनशील बनाना काय सल्लेखना है” यदि काय को पुष्ट किया आराम तलब बनाया तो इन्द्रियों के विषय में अधिक प्रवृत्ति होती है । आत्मा मलिन होती है, कामवासना, निद्रा और प्रमाद बढ़ता है । बात पित्त—कफ आदि रोग हो जाते हैं । अतः समाधि धारक को तपश्चरण द्वारा काया को कृश करना आवश्यक है ।

जैसी आयु की स्थिति जाने—तदनुसार देह से ममत्व कम करते हुए, आहार के आस्वाद के विरुद्ध हो, रसों की गृह्यता छोड़कर नीरस आहार लेना प्रारंभ करो । एतदर्थ कभी उपवास, कभी एकाशन, कभी नीरस आहार, कभी अल्पाहार (ऊनोदर) इस तरह क्रम क्रम से अपनी शक्ति प्रमाण आहार को कम करते हुए दूध पर आवे, दूध से छाछ, छाछ से गर्म पानी तत्पश्चात् पानी का भी त्याग करके देह का

त्याग करना काय सल्लेखना कहलाती है ।

भक्त प्रत्याख्यान सल्लेखना में भी इसी प्रकार भोजन का त्याग होता है । भोजन त्याग की मुख्यता से ही इसे भक्त प्रत्याख्यान कहते हैं । इसका उत्कृष्ट काल बारह वर्ष प्रमाण है और जघन्य (सबसेकम) काल अन्तर्मुहूर्त है ।

राग द्वेष मोहादि को कृश करना कषाय सल्लेखना है । कषाय सल्लेखना बिना काय सल्लेखना निरर्थक है । जो राग-द्वेष व विषय-कषाय जीत सकेगा, उसी के समाधि मरण संभव है, अन्य के नहीं ।

आगम ग्रंथों में मरण या समाधि मरण का उल्लेख कई प्रकार से हुआ है । पांच मरणों की अपेक्षा इनका संक्षिप्त स्वरूप बतलाते हैं ।

(1) पण्डित-पण्डित मरण-केवली भगवान के देह विसर्जन को पण्डित-पण्डित मरण कहते हैं । इस मरण के बाद जीव पुनः जन्म धारण नहीं करता ।

(2) पण्डित मरण- यह मरण छठवें गुणस्थान वर्ती मुनियों के होता है । एक बार यह मरण होने पर दो-तीन भव में मुक्ति हो जाती है ।

(3) बाल मरण- यह मरण देश संयमी को होता है । इस मरण के होने पर सोलहवें के स्वर्ग तक की प्राप्ति हो सकती है ।

(4) बाल मरण- यह मरण चतुर्थ गुणस्थान वर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि के होता है । इस मरण से प्रायः स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।

(5) बाल-बाल मरण- यह मरण मिथ्या दृष्टि के होता है यह मरण करने वाले अपनी लेश्या व कषाय के अनुसार चारों गतियों के पात्र हो सकते हैं ।

यद्यपि पांचवें बाल-बाल मरण को छोड़कर उपर्युक्त चारों प्रकार के मरण समाधिपूर्वक ही होते हैं, पर स्वरूप की स्थिरता व परिणामों की विशुद्धता योग्यतानुसार होती है ।

पहला वृद्ध बाला—गुरुदेव ! समाधि के समय व्यक्तियों को किस प्रकार संबोधित किया जाये, जिससे उनके परिणाम समाधि मय हो सके ? तथा वेदना से भी उनका चित्त विभक्त न हो, उपयोग की एकाग्रता खण्डित न हो और पीड़ा चिन्तन में उपयोग न जाय ।

इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए महामुनि बोले— यद्यपि दूसरों को समझाना उत्तम कार्य है, पर वस्तुतः दूसरों को समझाना सहज नहीं है, क्योंकि समझ बाहर से नहीं, अंदर से, अन्तर्मन से आती है । फिर भी करुणावश या धर्म स्नेह वश यदि कभी विकल्प आवे तो साधक की स्थिति देखकर जैसी परिस्थिति हो, जिन कारणों से वह स्वरूप से विचलित हो रहा है, उनकी सार्थकता और निरर्थकता का ज्ञान कराया जाये ।

उदाहरण के लिए—कोई व्यक्ति असाध्य रोग की पीड़ा से उत्पन्न वेदना से पीड़ित हो, पीड़ाचिन्तन आर्तध्यान कर रहा हो, अथवा भूख प्यास व इंद्रिय विषयों की वांछा से खेद खिन्न हो रहा हो, या संक्लेश कर रहा हो या स्त्री—पुत्रादि के प्रति विशेषअनुरागी होकर इष्ट वियोगज आर्तध्यान कर रहा हो तो उससे कहें कि हैं भव्य आत्मन् ! जो दुःख तुम्हें अभी है इससे भी अनन्त गुणा दुःख तुम इस जगत में अनन्त बार भोग चुके हो, फिर तुम्हारी आत्मा का क्या बिगड़ा ? कुछ भी तो नहीं बिगड़ा । अतः अब इस दुःख से क्या घबराना ।

तुमने इस दुःखों को नरकों में कई बार भोगा है, और देखो अब तुम्हारा यह पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान फिर नये दुःख के बीज बो रहा है । अतः इस पीड़ा पर से अपना ध्यान हटाकर आत्मा पर केन्द्रित करो, जिससे पूर्व वद्ध कर्म की निर्जरा तो होगी ही, नवीन कर्मों का बंध भी रूकेगा ।

जो असाता कर्म उदय में आया है, उसे भोगना तो पड़ेगा ही । यदि समता पूर्वक, साम्य भावों से सह लोंगे तथा ज्ञान के बल पर संक्लेश परिणामों से बचे रहोगे, और आत्मा के चिन्तन में लगे रहोगे तो दुःख के कारणभूत सभी पूर्व संचित कर्म नष्ट हो जायेंगे ।

तुम चाहे, निर्मय हो या भयभीत, रोगों का उपचार करो

यान करो, जो प्रबल कर्म उदय में आया है, वह फल दिये बिना जायेगा नहीं। रोगोपचार भी कर्म के मंद उदय में ही अपना कार्य करेगा। जब तक असाता कर्म का प्रबल उदय रहता है। तब तक कोई भी औषधि कार्यकारी नहीं हो पाती। अन्यथा बड़े-बड़े वैद्य तथा राजा महाराजा तो कभी बीमार ही नहीं पड़ते, क्योंकि उनके पास उपचार के साधनों की क्या कमी है? अतः स्पष्ट है कि कर्म के आगे किसी का भी वश नहीं चलता। चाहे वह वैद्य, राजा, शूरवीर अथवा धनवान ही क्यों न हो।

ऐसा सोचकर कर्म के विपाक, शुद्धात्मा, और वस्तु स्वातंत्र्य आदि का चिन्तन करते हुए साम्य भाव रखना ही श्रेयस्कर है। ऐसा करने से ही व्यक्ति अपने मरण को समाधि मरण के रूप में परिणत कर सकते हैं। वेदना के समय उसे चित्ताकर्षक लय में समाधि मरण पाठ, वैराग्य भावना, बारह भावना एवं आत्म तत्त्व का भान कराने वाले पद्य भजन आदि भी सुनाना चाहिये, जिससे उसका आर्तध्यान और रौद्र ध्यान में उपयोग न जावे।

यदि असह्य वेदना हो रही हो और उपयोग आत्मा में न लगता हो, तो उस समय "संसार, शरीर व भोगों से विरक्त, स्वरूप साधक, उपसर्ग जयी, गजकुमार, सुकौशल, सुकुमाल, चिलाती पुत्र जैसे सुकुमार मुनिराजों द्वारा कठोर साधना करने एवं उनमें असह्य वेदना सहने की सामर्थ्य कहां से, कैसे आ गई? इसका विचार करो और सोचो कि इनकी तुलना में तो हमें कुछ भी कष्ट नहीं है।

ऐसा सोचने और विचार करने से हमें अपने आत्म तत्त्व का भान होगा भेदविज्ञान होगा, जिसके बल से हमारे अंदर भी साहस, शक्ति व धैर्य प्रकट होने लगेंगे। जिससे कठिनतम प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने की सामर्थ्य भी हममें प्रकट होगी।"

महामुनि के उद्गार सुनकर वे दोनों वृद्ध आश्वस्त हुए, पर अब उनके अंदर उन उपसर्ग जयी संतो के जीवन दर्शन जानने की उत्कृष्ट अभिलाषा जागृत हो गई। वे इन कुछ दिनों में ही महामुनि को अपने हृदय में बसा चुके थे। तथा उन्हें आत्म समर्पण भी कर चुके थे। जब उन्होंने उन महापुरुषों के चरित्र जानने की जिज्ञासा रखी तो महामुनि

बोले—देखो भाई इन महापुरुषों का चरित्र बहुत सुन्दर है पर वह लम्बा है, क्यों न अब तुम लोग संघ में ही रहकर उसे सुनो, ताकि समय भी ज्यादा मिलेगा और संयम की दिशा में कदम बढ़ेगा ।

वे वृद्ध तो चाहते ही थे, कि महाराज हमें संघ में रख लें वे अपने घर परिवार से तो पूर्णतः मुक्त हो ही चुके थे । फिर भी उन्होंने अपने अपने परिजनों को सूचना दे दी, कि अब वे महामुनि के चरणों में ही रहेंगे । परिजन तो उन्हें बला समझते ही थे और इस बला को टालना भी चाहते थे, पर लोक व्यवहार के लिए बनावटी प्रेम दिखाने लगे ।

पर वृद्ध तो जीवन के अनुभवों से परिचित हो चुके थे । उनके चेहरे की एक—एक झुर्री पर सौ—सौ अनुभव लिखे हुए थे ।

अब वे महामुनि के चरणों में ही आ गये, तत्त्वचर्चा चलती रही, महामुनियों के चरित्र सुने, उनसे प्रेरणा पाकर, उन्होंने भी महामुनि के चरणों में उनके ही कर कमलों से मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली । अब वे भी साधना रत हो गए ।

## २०

समय बड़ा बलवान है, उसके सामने किसी की भी नहीं चलती । कई बार व्यक्तियों के मुख से सुना जाता है, हम तो समय निकाल रहे हैं, पर ध्यान रखें वे समय को क्या निकालेंगे, समय ही उन्हें निकाल देगा ।

महामुनि भी अपने जीवन के छयासठ वर्ष पूर्ण कर चुके थे, पर उन्हें निकलते समय की कोई चिंता नहीं थी, क्योंकि वे अधिकांशतः अपनी आत्मा में ही रहा करते थे, उनके समय का सदुपयोग हो रहा था ।

संयमी जीवन में अपने वृद्धपने और मौत की भी कोई चिन्ता नहीं रहती, वे कमर कस कर तैयार रहते हैं, मौत से मुकाबला

करने के लिए । समता धारी साधुओं को जीवन और मरण में कोई फर्क नजर नहीं आता, वे हमेशा साम्य में ही जीते हैं ।

X

X

X

महान् तपस्वी के ढलते जीवन को देखकर धर्ममना श्रावक सोचा करते था, इस धर्म की डोर को, कौन होगा इन जैसा महा तपस्वी, चमत्कारी और प्रभावक साधु ।

महामुनि यह चातुर्मास ऊदगांव, (कुंजवन) में कर रहे थे । दिनों-दिन साधना वृद्धिगत हो रही थी । शरीर कृश होता जा रहा था । आत्म बल बढ़ता जा रहा था ।

संघ और समाज चिन्तित था महाराज के अत्यंत कृश शरीर को देखकर । कई बार विज्ञ जन यहां तक विचार कर लिया करते थे, कि कदाचित् महामुनि ने इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया तो कौन संभालेगा इनके महान् उत्तराधिकार को । पर उन्हें क्या पता था, कि महान् उत्तराधिकार को संभालने वाले उत्तराधिकारी महेन्द्र का उत्तर प्रदेश की पावन नगरी फिरोजाबाद में जन्म हो चुका था ।

उनके जन्म की भी बड़ी विशेषता रही । जब वह मां के गर्भ में आये, तब मां का दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं सम्मेदशिखर की यात्रा करूंगी । जहां अन्य गर्भवती स्त्रियों को खट्टे-मीठे फल खाने के नृत्य गीत देखने सुनने के, अथवा अन्य प्रकार के भोग बर्द्धक दोहले उत्पन्न होते हैं वहाँ माँ बूँदा को सम्मेद शिखर की यात्रा करने का दोहला उत्पन्न होना महान शुभ का सूचक था ।

जब उन्होंने अपनी बात अपने पति श्री रतन लाल जी के सामने रखी तो वे बोले- अरे ! तुम क्या पागल हुई हो यह अवस्था और सम्मेद शिखर की यात्रा.....जानती हो सम्मेद शिखर कोई छोटा-मोटा मंदिर नहीं है । पूरी अठारह मील की यात्रा है और वह भी पहाड़ ।

मुझे पता है, कि सम्मेद शिखर पहाड़ है, लेकिन मैं उस पावन तीर्थ की एक बार पुनः बंदना करने अवश्य जाऊंगी । मैं आत्म

विश्वास से कहती हूँ कि वंदना अच्छी तरह से कर लूंगी । मां बूढ़ी बोली ।

क्यों व्यर्थ की झंझट में पड़ती हो, अपने फिरोजबाद में क्या कमी है, मंदिरों की । यहीं की वंदना कर लो । रतन लाल जी बोले ।

मां बूढ़ी बोली— यहां के मंदिरों के दर्शन तो रोज करती हूँ और आज भी किये लेती हूँ, पर सम्मेल शिखर की वंदना अवश्य करूंगी । मेरी यह आंतरिक भावना है, जिसे आप ही पूर कर सकते हैं । :

दंपति वर्ग में कुछ देर तक बात चलती रही, अंततः रतन लाल जी को सम्मेल शिखर की यात्रा करवाना स्वीकार करना ही पड़ा ।

प्रमुदित मन दोनों सम्मेल शिखर यात्रा की तैयारी में जुट जाते हैं । किसी शुअवसर पर वे सम्मेल शिखर के लिये प्रस्थान करते हैं ।

सम्मेल शिखर पहुंच कर संपूर्ण टोंको की भक्ति से पूजा अर्चना की । जब वह पहाड़ पर चढ़ते, तो णमोकार मंत्र अथवा कोई भजन अवश्य चला करता था । शुद्ध मनपूर्वक संपूर्ण जिनवरों को भक्ति सहित शोश नवाया करते थे, जिससे यात्रा सहज सरल हो जाया करती थी ।

अनंतानंत सिद्ध भगवंतो की निर्वाण स्थली सम्मेल शिखर की बारंबार वंदना कर वे अपने गृह नगर फिरोजाबाद लौट रहे थे, कि ट्रेन के जिस डिब्बे में बैठे थे, उसमें ही एक व्यक्ति की अचानक पेट दर्द से मृत्यु हो जाती है । उस मृत्यु को देखकर मां बूढ़ी के मन में वैराग्य की तरंगे उठने लगती हैं । वह सोचती है संसार की अनित्यता और असारता को, काश! मैं गर्भवती न होती तो अवश्य ही इस भयानक भव से पार होने का प्रयत्न करती ।

समय चक्र अपनी तेजी से चलता गया । उनकी कोख में एक सुंदर सुशील पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम रखा गया, "कुंवर महेंद्र सिंह" ।

बाल्यकाल में भी वृद्धों जैसे विचार पूर्वक कार्य करते थे, हमेशा हंसता-मुस्कराता सरलतम चेहरा, सभी को आकर्षित कर लेता था । सामान्य बालकों की भांति वे खेलकूद में समय बर्बाद न कर जिन दर्शन वंदन एवं स्वाध्याय में अधिक रूचि लिया करते, थे । "सादा जीवन, उच्च विचार" बाल्यकाल में ही प्रदर्शित होने लगा था । एक बार मां ने कहा-बेटा! जाओ घर में नाई बाबा आये हैं, बाल कटवा लो ।

महेन्द्र चले गये और बोले-बाबा ! मेरे बालकाट दो । नाई ने हर बार की तरह इस बार भी छोटे-छोटे बाल काट दिये । पर महेन्द्र बोले- बाबा ! आप तो मेरे सिर के संपूर्ण बाल साफ कर दो सिर्फ बीच में एक चोटी छोड़ दो । नाई बाबा करते भी क्या ? उनसे महेन्द्र ने जैसा कहा, वैसा ही कर दिया ।

मां ने देखा तो बोली- ये क्या किया बेटा ।

महेन्द्र सहजतः बोले माँ ! रोज-रोज की जहमत खतम हो गई मां वाली वेटा बालों की सुन्दरता से ही तो चेहरा चमकता है । तूने तो पूरे बाल ही साफ करा दिये ।

महेन्द्र बोले- मां ! तेरे बेटे का चेहरा तो बिना बालों के ही चमकता है, फिर बालों की क्या जरूरत, और फिर चेहरे के चमकने से थोड़े ही कुछ होता है, चमकदार तो मन होना चाहिये ।

X

X

X

बालक महेन्द्र अनेकानेक बाल क्रीडाओं के साथ बृद्धिगंत होते हुए किशोर पन की दहलीज पर पैर रख चुके थे। उनका प्रारंभिक अध्ययन भी पूर्णतः की ओर था ।

कर्म किसी को नहीं छोड़ता । बालक महेन्द्र अभी मां की गोद को पूर्ण रूपेण छोड़ भी न पाया था, कि वह स्वयं छूट गई । नौ-दस वर्ष की अल्पावस्था में ही मां का देहावसान हो गया । महेन्द्र के बाल मन को एक बैराग्य तथा दुःख पूर्ण गहरी ठेस पहुंची । अब वे कुछ उदास से रहने लगे थे ।

उनकी ऐसी स्थिति को देखकर कुछ कालोपरांत पिता ने महेन्द्र को अर्थ यनार्थ मुरैना भेज दिया । यहां आकर उन्होंने अपनी प्रतिभा को निखारा, धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ यहां रहकर उन्होंने मैट्रिक भी पास कर ली । मैट्रिक में वे अच्छे अंको से उत्तीर्ण हुए थे, अतः उन्होंने उच्च अध्ययन के लिये इंदौर को चुना ।

इंदौर आकर उन्होंने न्यायतीर्थ, आयुर्वेद रत्न, काव्यतीर्थ, साहित्य रत्न, ज्योतिषाचार्य, व्याकरणाचार्य आदि-आदि अनेक धर्म परीक्षाओं के साथ लौकिक अध्ययन की चरम सीमा को पार किया ।

लौकिक एवं धार्मिक अध्ययन के साथ-साथ उन्होंने हिंदी, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, तेलगू, कन्नड, अपभ्रंश, उड़िया आदि भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था ।

ज्ञान वही है, जो चरित्र को प्राप्त कराये । उनका ज्ञान भी सच्चा ज्ञान था, अतः उनके परिणाम संयम धारण करने के होने लगे थे । अब तक वे अपने जीवन में सम्मेल शिखर, श्रवण वेलगोला, कुंडलपुर, इंदौर, इटावा, कलकत्ता, बम्बई, सागर, ललितपुर आदि कई स्थानों की यात्रा कर चुके थे । जिनके संस्मरण बड़े ही रोचक रहे । कई बार वे बड़े-बड़े नगरों में श्रेष्ठ विद्वान के रूप में आमंत्रित हुए ।

अब उन्हें अपना आत्म कल्याण ही मुख्य जान पड़ रहा था । बड़े-बड़े विद्यालयों ने उन्हें अपने यहां उच्च शिक्षक का पद देने की बात भी रखी, पर अब वे पद और आपद से दूर भागना चाहते थे । अब संयम प्राप्ति ही उनका प्रमुख लक्ष्य बन गया था ।

एकाशन, उपवास और चटाई पर सोने का अभ्यास तो उन्हें विद्यार्थी अवस्था में ही हो गया था, अब तो वे प्रधान विद्वानों की श्रेणी में गिने जा रहे थे । निर्ग्रथ गुरुओं के परम भक्त थे । एक बार वे आचार्य कल्प चंद्रसागर जी के पास गए और ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया जब किसी को कोई बस्तु रूचने लगती है, तो वह उस बस्तु को पाने का अथक प्रयास भी करता है । महेन्द्र को अब व्रतों से लगन लग रही थी अब उनके बैरागी कदम-आगे बढ़ते गए और उन्होंने एक पावन अवसर पर मुनि वीरसागर जी से क्षुल्लक दीक्षा धारण की ।

वैराग्य भावना दिनों दिन बढ़ती जा रही थी, अब वे किसी सुयोग्य गुरु की खोज में थे, जो उन्हें मुनि के व्रत प्रदान करने में सक्षम व समर्थ हो। संपूर्ण उत्तर भारत में उन्हें अपने योग्य गुरु न मिला तो वे दक्षिण भारत में पहुंचे।

जो व्यक्ति जिस बस्तु को खोजता है, वह मिल भी जाती है, चाहे, कठिनता से ही क्यों न मिलें। उन्हें भी एक निर्ग्रथ महामुनि के प्रवास का पता चल गया और वे कदम-कदम बढ़ाते हुए वहां जा पहुंचे जहां परम पूज्य आचार्य श्री आदिसागर जी (अकंलीकर) विराजमान थे।

ऊदगांव के कुंजवन में दो निष्कलुष आत्माओं का पावन मिलन हुआ। क्षुल्लक जी को योग्य गुरु मिल गये। महामुनि के चरणों में क्षुल्लक जी के दिन वीतने लगे तब महामुनि ने उन्हें चरित्र में निष्पात देखा, तो एक पावन मुहूर्त में उन्हें मुनि दीक्षा प्रदान कर दी। मुनि दीक्षा पाकर वे मुनि महावीर कीर्ति नाम से विख्यात हुए। उन्होंने अपना सर्वस्व महामुनि के चरणों में समर्पित कर दिया। मुनि महावीर कीर्ति की ज्ञान और चरित्र की क्षमता देखकर महामुनि जब कभी स्नेह पूर्ण वाक्यों में उनसे कहा करते थे "लगता है—गुरु तो गुड़ ही रह जाएगा और चेला शक्कर बन जायेगा।

मुनि महावीर कीर्ति कहते — गुरुदेव आपके गुणों का पार कौन पा सकता है। आप की तपस्या भी अगाध है। आपके ही आशीर्वाद से मैं कुछ बना हूँ और आपके ही आशीर्वाद से आगे बढ़ रहा हूँ। गुरु शिष्य के पावन संबंध और बार्ता को कोई नहीं समझ पाता था।

X

X

X

महामुनि का शरीर अब एकदम कमजोर पड़ गया था। फिर भी साधना में वृद्धि ही हुई थी। शायद! अब उन्होंने अपनी समाधि का लक्ष्य निर्धारित कर लिया था तभी तो वे क्रमशः बस्तुओं का

परित्याग करते जा रहे थे ।

एक दिन महामुनि आचार्य श्री आदिसागर जी सप्तोपवास की पारणा करके आये । संपूर्ण शिष्य संघ एकत्रित था । अचानक महामुनि एक गंभीर ध्वनि में बोले—आज से मैं संपूर्ण प्रकार के आहार पानी का त्याग करता हूँ ।

संपूर्ण शिष्य संघ की सहमति से उन्होंने अपना आचार्य पद अष्टादश भाषाभाषी, महान ज्ञानी, श्रेष्ठ निर्यापकाचार्य, आदर्श तपकर्ता मुनि महावीर कीर्ति महाराज को दिया । संपूर्ण संघ ने सहर्ष उन्हें आचार्य के रूप में स्वीकृत किया ।

X

X

X

सुयोग्य शिष्य को आचार्य पद देकर महामुनि पूर्णतः निश्चिन्त हो गये थे । अब उन्हें एक मात्र आत्म ध्यान के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था । अब उनका आत्म चिन्तन ही सब कुछ हो गया था ।

महामुनि चिन्तन करते— हे ! आत्मन पंच परावर्तन के स्वरूप का ध्यान करों लोक में ऐसे कोई पुद्गल परमाणु या स्कन्ध नहीं है, जिन्हें तूने भोग कर नहीं छोड़ा हो । एक बार नहीं अनेक बार तुमने उन बस्तुओं को भोगा, परंतु उनसे सुख की प्राप्ति नहीं हुई । और न उनके सेवन से कुछ तुम्हारा हित ही हुआ । निस्प्रयोजन ही उन पदार्थों के प्रति तुमने इष्टानिष्ट की कल्पना की, वस्तुतः उनसे तुम्हारा कोई संबंध ही नहीं था । वह न तुम्हारे लिए इष्ट ही थे और न अनिष्ट ही । तुमने अपनी बैभाविक परिणति के कारण उनमें इष्टानिष्ट की कल्पना की । वह न तुम्हारा कुछ बना सकते हैं और ना ही बिगाड़ सकते हैं, उनके प्रति जो तुम्हारा ममत्व परिणाम है, वही तुम्हें हानि पहुंचाने वाला है अतएव बाह्य पदार्थों का ममत्व छोड़ो, निज्जात्मा से ममत्व जोड़ो । मन में शरीर और आत्मा के भिन्न पने का विचार

करो । शरीर पुद्गल है, जड़ है, अचेतन है और आत्मा ज्ञाता है, दृष्टा है, अनंत गुणों की खान है, महान् है, चेतन है, एक सुख स्वरूप है इन दोनोंका स्वरूप एक नहीं हो सकता है अनादि काल से बहिरात्मा बन शरीर को ही आत्मा मान लिया, जिस कारण आत्म स्वभाव की पहचान न कर पाया और आत्महित के लिए कुछ पुरुषार्थ भी नहीं किया । अब जब तुम्हें स्वयं का ज्ञान हुआ है, तो स्वयं में आओ, स्वयं की उन्नति के लिए पुरुषार्थ करो । इस पुरुषार्थ से यह अधूरा परमात्मा पूर्ण परमात्मा हो जायेगा ।

महामुनि ने संपूर्ण प्रकार के आहार जल का तो त्याग कर ही दिया था । अब चिंतन ही उनका भोजन था । वे नए-नए चिन्तन अपनी आत्मा को दे रहे थे, ताकि वह पूर्णतः सावधान रहकर शरीर छोड़े ।

वे आत्मा को समझाते हुए विचार करते-हे ! आत्मन् यह शरीर अत्यंत अशुचि है । इस शरीर के नौ द्वारों से हमेशा ही मलक्षण होता रहता है, दुर्गंध स्वभाव वाला है । मांस, रक्त आदि का पिण्ड है । केवल मक्खी के पंख जराबर पतले चमड़े से आच्छादित है, अपवित्र है ।

इसके अंदर मल, मूत्र लबालब भरा हुआ है । फिर भी तू इसके सेवा में लगा रहता है । पर ध्यान रखो । जिसकी तुम इतनी सेवा करते हो वह कब धोका दे जायेगा कोई भरोसा नहीं है । ऐसे निध शरीर का ही भरण पोषण करते रहते हो । तू इस शरीर की सेवा करता है, कितनी मूर्खता है, जबकि तुझे इससे अपनी सेवा करानी चाहिए । तू इस महा दुर्लभ मानव शरीर का मालिक है, लेकिन अज्ञान वश नौकर का भी नौकर बना बैठा है ।

इस मानव तन में ही तुम अपने हित-अहित का अच्छी तरह चिंतन करके, अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रवृत्ति कर सकते हो, यह व्यवस्था अन्य गतियों में नहीं है । यह अवसर निकल गया, तो मात्र पछताना ही हाथ रह जायेगा, अतएव इसका सदुपयोग करना ही

श्रेयस्कर है । इस से मोह हटा कर, अपनी पवित्र आत्मा में मोह करों । जब तुम आत्मा से मोह करने लगोगे, तो शरीर प्राप्ति की सार्थकता भी हो जायेगी । सोचो! तुमने आज तक कभी समाधि मरण नहीं किया, क्योंकि अगर एक बार भी सम्यक् प्रकार समाधि मरण किया होता तो आज यहां न होते । देखो! क्षुधा की वेदना से शरीर को दुःख हो सकता है, वह निर्बल हो सकता है, पर तुझे कुछ होने वाला नहीं, अतः तू तो अपना भला कर शरीर का जो कुछ हो रहा होने दे । वैभाविक शक्तियां शरीर में विकृति पैदा कर सकती है, तुझे शुद्ध आत्मा में नहीं, इसलिए एकदम शांति पूर्वक संपूर्ण बाधाओं को समता पूर्वक सहन कर, कर्मों की निर्जरा करो । परीषह और उपसर्गों से इस तन को भावित करो, और उस आत्मा को जीना सिखलाओ, तभी इस मानव पर्याय की सार्थकता है ।

जब कभी महान बेदना होने पर गुरुदेव अपनी आत्मा को संबोधित करते हुए विचार करते-हे आत्मन तुम इस थोड़े से ही कष्ट में दुःखी होने लगे । जरा सोचो उन महामुनियों के बारे में जिन्हें शेरनी ने खाया, श्रगालों ने खाया चींटियों ने खाया, अग्नि से जलाया गया, कोल्हू में पेला गया, दीवारों में चिनवा दिया गया, सोचो! उन पर कितनी वेदना का पहाड़ न टूटा होगा, पर उन्होंने उसे समता पूर्वक सहन किया । वे अपने ध्यान से किन्ति भी विचलित न हुए । क्योंकि वे जानते थे कि जो कर्म पूर्व में किये हैं, उनका फल भोगे बिना मुक्ति मिल पाना असंभव है और फिर दुःख, आत्मन् तुझे ! थोड़े ही होता है, वह तो शरीर को होता है ।

उन महान योगियों के जीवन चरित्र का चिंतन करो, जिससे तुम्हारे अंदर भी वेदना सहन करने की सामर्थ्य आएगी ।

उन महान योगी, सुकुमाल, कौशल, गजकुमार, पार्श्वनाथ महावीर, कार्तिकेय कुमार, चिलाती पुत्र, वृषभ दत्त, गुरु दत्त आदि का महान् आदर्श उन महामुनि को महा शक्ति प्रदान कर रहा था ।

जब तब वे आत्मा को संबोधित करते हुए कहते-हे आत्मन् रस की विषम परिस्थितियों का अच्छी तरह चिंतन करो । कर्म के

कारण, अज्ञान अथवा मिथ्यात्व के कारण यह आत्मा अनादिकाल से ही इस महा भयानक संसार में भटकता रहा है । तुझे तेरी ही भूल ने सारेसंसार में महान् दुःखो को प्राप्त कराया । समझ में विपरीत, पना ही तुम्हारे दुःखों का कारण है इस विपरीत श्रद्धा को छोड़ो और देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान करो । पंच परमेष्ठि ही शरण है । सदा उन्हीं की शरण का चिंतन करो ।

मुनि कुंजर, संपूर्ण प्रकार का आहार त्याग कर चुके थे, अब वे अपनी आत्मा को चिंतन के नित नये व्यंजन परोसा करते थे । जिससे आत्मा पुष्ट हो रहा था और शरीर कृश ।

महामुनि स्वयं एक श्रेष्ठ निर्मापकाचार्य थे, फिर उन्हें महावीर कीर्ति शिष्य जैसा महान ज्ञानी ज्योतिर्विद, निमित्तज्ञानी, तत्वज्ञ, अंततः वचन उपदेश्य सहायक निर्यापकाचार्य भी मिल चुका था । जब कभी उन्हें क्षुधा की वेदना सताती, तो वे आत्मा को समझाते हुए कहते, हे प्रिय आत्मन् ! भव में बहुत खा चुका अब छोड़ दे । इस जगत में एक भी ऐसा पुद्गल परमाणु नहीं है, जिसे तूने भोगकर न छोड़ा हो, अब क्यों उस उच्छिष्ट (उल्टी-वमन) को खाने की भावना करता है ।

जब प्यास की वंदना सताती है तो वे कहते, है चेतन ! कितना पानी पिया । अगर संपूर्ण पानी एकत्रित किया जाये, तो एक सागर भर जायेगा और फिर तेरा स्वभाव भी तो खाना-पीना नहीं है क्यों व्यर्थ की वैभाविक परिणति में पड़ते हो ।

स्वाध्याय, चिंतन, मनन में समय व्यतीत होने लगा । आचार्य महावीर कीर्ति सहित गुरुदेव के सेवा में उनके अपने ही कई शिष्य हमेशा तत्पर रहते थे । मृत्यु महोत्सव की तैयारियां अपनी गति से चल रही थी ।

X

X

X

परम पूज्य स्याद्वाद केशरी, सप्तोपवासी, मुनिकुंजर, महामुनि ने समाधि ले ली है । अब अंकली बाबा कभी आहार नहीं लेगे । अब

वे अपनी समाधि की साधना में जुट गये थे, यह समाचार बड़ी तेजी से यत्र-तत्र-सर्वत्र फैल चुका था । अब प्रतिदिन जैन-अजैन सभी भक्त महाराज के दर्शन को लालायित हो रहे थे । प्रतिदिन हजारों श्रद्धालु बाबा के दर्शनार्थ आने लगे, कोई पुष्प चढ़ाता, कोई दीप जलाता, कोई धूप खेता तो कोई अष्ट द्रव्य से पूजा रचाता, पर मुनि कुंजर एकदम निःसल्य, निसंग और निराकुल हो, आत्मचिंतन करते रहते ।

महामुनि की सल्लेखना का समाचार संपूर्ण उत्तर भारत में आग की तरह फैल चुका था ।

यह समाचार जैसे ही आचार्य शांतिसागर जी को मिला वह तत्काल अपने संघ को लेकर ऊदगांव की ओर बढ़ चले ।

आचार्य देशभूषण एवं मुनि श्री वीरसागर जी पहुंच रहे थे, तीन महान् संघाधिपतियों के अलावा अन्य साधु भी महामुनि वैयावृत्ति एवं दर्शन के लिए एकत्रित हो चुके थे ।

भरमप्पा अखाड़े, बालगौड़ा, पाटिल, लक्ष्मीबाई, आरबाडी, राजकुमार सिंग, आदि श्रेणियों के साथ शासकगण भी महामुनि के दर्शनार्थ पहुँचने लगे थे, वहां पर करीब साठ-सत्तर पिच्छी तथा शताधिक व्रती और हजारों श्रावक एकत्रित हो चुके थे ।

X

X

X

जब महामुनि की सल्लेखना का समाचार एक अनपढ़ मूर्ख व्यक्ति ने सुना तो उसने पुलिस थाना जाकर रिपोर्ट कर दी, एक जैन मुनि आहार त्यागकर आत्महत्या कर रहे हैं ।

समाचार पाते ही कोतवाल सहित सात-आठ सिपाई अतिशीघ्र कुजंवन पहुंचे क्यों कि साधुओं के उपदेश से श्रावकों को तो समाधि संबंधी जानकारी प्राप्त हो गई थी अतः किसी के मन में यह न था कि सल्लेखना आत्मघात है, परंतु उन अजैनों को भी यह बात समझ में न आई थी ।

जब वे सभी पुलिस वाले महाराज के निकट पहुंचे तो

उनका प्रमुख दरोगा बोला, यहां पर वह कौन सा आदमी है, जिसने अन्न जल त्याग कर दिया है, और आत्महत्या के प्रयास में है ।

एक श्रावक बोला— माफ करना दरोगा जी ! यहां कोई आदमी नहीं वह महामुनि हैं, जिन्होंने अन्न जल का त्याग कर दिया है, वह भी आत्महत्या के लिए नहीं बल्कि सल्लेखना के लिए ।

दरोगा बोला— यह सल्लेखना वगैरा क्या होता है हम कुछ नहीं जानते, आप इन्हें खाना खिलाइये ।

कहीं बात न बढ़ जाये इसलिए आचार्य श्री शांतिसागर जी बोले—भैया देखिये जो आप कह रहे हैं, वह तो संभव नहीं हो पाएगा । क्योंकि हमारे गुरुदेव सल्लेखना समाधि धारण की है । न कि आत्मघात करने के लिए अन्न जल छोड़ा है ।

दरोगा बोला— स्वामी जी ! गलत बात तो गलत ही है, चाहे आप उसे सल्लेखना कहे या आत्महत्या इस प्रकार अन्न जल त्याग करना अनशन है, जो कि अनुचित है, आप इन्हें खाना खिलाइये, अन्यथा हमें दूसरा कदम उठना पड़ेगा ।

दरोगा सोच रहा था कि वृद्ध आसक्त हो चुका है, पर महामुनि आत्म शक्ति वान थे, वे सब कुछ सुन रहे थे, तथा बात सम्हलते न देखी तो वे एक गम्भीर ध्वनि में बोले— भैया ! तुम व्यर्थ में परेशान होते हो, बताओ तो सही आत्महत्या क्यों करूंगा, कौन मृत्यु के मुंह में जबरदस्ती जाना चाहेगा यह तो जब मृत्यु सामने आ खड़ी है, तो उसका स्वागत किया जा रहा है, घर आये हुए अतिथि का स्वागत करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है, हां अभी आयु कुछ शेष है, इसलिए जीवित हूँ, आयु पूर्ण होने पर शरीर छूटना निश्चित है ।

दरोगा कुछ शांत होता हुआ बोला— पर बाबा यह तो आत्मघात होगा । महामुनि उसे क्षीण वाणी में समझाते हुए बोले— भैया आत्महत्या उसे कहते हैं, जिसमें तीव्र क्रोध मान माया अथवा लोभ हो जब व्यक्ति को क्रोध आदि कषाये उत्पन्न होती है, तब वह आत्मघात करता है, लेकिन सल्लेखना में इसकी विपरीत है, समाधि करने वाले के

मन में कषायें नहीं होती हैं, अतः यह आत्मघात नहीं है ।

दरोगा सहित अन्य लोगों की समझ में कुछ कुछ आया, अब वह गंभीरता पूर्ण स्वर में महामुनि से चर्चा करता रहा, जब वह पूर्णतः अस्वस्थ हो गया तो महामुनि के चरणों में माथा टेका और वापस चला गया ।

उसने सम्पूर्ण रिपोर्ट अपने अधिकारियों को दी, वे भी यह चमत्कारित साधना देखने महामुनि के निकट पहुंचे महामुनि से प्रभावित उन्होंने मरुज आदि कई स्थानों से यात्रियों की सुविधा के लिए फ्री ट्रेनों की व्यवस्था करवा दी ।

X

X

X

महामुनि आचार्य श्री आदिसागर जी का शरीर अब मात्र हड्डियों का ढांचा रह गया था, वे लकड़ी के एक पाटे पर बैठे थे, संपूर्ण शिष्य समुदाय उनके यत्र-तत्र ही बैठा था, वे सभी को उपदेश दे रहे थे, शायद ! यह उनके अंतिम उद्गार थे, वे साधुओं को संबोधित करते हुए बोले— हे मुनि ! इस मनुष्य जन्म में रत्नात्रयात्मक बोधि की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है, इसकी पूर्णतः के लिए तुम समता आदि छः आवश्यकों में दर्शन आदि चार अराधनाओं में प्रमाद रहित प्रवृत्ति करना । रस सात और ऋद्धि इन तीन गोरवों को हेय जानकर मिथ्यात्वादि तीन शक्तियों से भिन्न रहकर मन, वचन, काय दण्डों से आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोधदि कषायों आर्द्र रौद्र ध्यान और पंचेन्द्रिय विषयों के पूर्वक अतिन्द्रिय शुद्ध स्वभाव में लीन होना रत्नात्रय सम्पन्न साधुओं में परम वात्सल्य भावना और उनकी समय के अनुसार योग्य शरीर और आत्मा की सेवा करना ।

परिषह एवं उपसर्ग इत्यादि के द्वारा शरीर में वेदना होने पर भी जिन कथित मोक्षमार्ग से दिचलित नहीं होना । एकाग्रता पूर्वक आत्म स्वरूप ध्यान करना पर दब्यो में हेय, उपादेय बुद्धि रहित मोक्ष के कारण भूत योग्य तपश्चरण आदि में प्रवृत्ति करना । और धर्मवृद्धि

करने वाले धर्मोपदेश करना । महामुनि की क्षीण किंतु दिव्य आवाज सभी के हृदय तक पहुंच रही थी । महाराज श्री अपनी बात कह कर मौन हो गए ।

X

X

X

आत्म दृढी, निराकुल, आत्मा नुरागी, महामुनि की साधना, साधना के शिखरको छू रही थी । पल-प्रतिपल आत्मा से राग बढ़ रहा था और शरीर से तथा पर वस्तुओं से राग कम होता जा रहा था ।

महामुनि की समाधि करने के लिए आचार्य श्री शातिसागर आचार्य श्री देशभूषण, उनके ही पट्टाधीश आचार्य श्री महादोर कीर्ति, वैयावृत्ति प्रेमी मुनि श्री वीर सागर जी जैसे अनेक दिग्गज साधु उपस्थित थे ।

चौदह दिनों से महान्त साधक ने कुछ भी ग्रहण न ही किया था अगर कुछ ग्रहण किया था, तो सिर्फ आत्मज्ञान, तत्वाभ्यास । चौदहवे दिन को त्याग पूर्णतः साम्य भाव से किया ।

जब उन्होंने शरीर छोड़ा उस समय उस स्थान पर कुछ क्षणों के लिए एक दिव्य आलोक फैला और अनाहद गूंजते रहे । संपूर्ण जन समुदाय आश्चर्य चकित था । कुछ क्षणोपरांत वह दिव्य आलोक और दिव्य बाजों की आवाज स्वतः विलीन हो गई । समस्त वातावरण अश्रुपूरित जय ध्वनि से गूंज उठा । महामुनि का नाम प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर था ।

सभी के मुख पर एक चर्चा थी कि चमकता हुआ एक "नक्षत्र" अस्त हो गया । अब वह नक्षत्र हमें कभी नहीं मिल पायेगा ।

उन परम गुरु के आराधक हजारों जैन-अजैनो ने उन्हें अंतिम विदा दी और अश्रुपूरित नेत्रों से लौट चले अपने घर की ओर खोकर एक चमकता नक्षत्र ।

उन महागुरु के महान शिष्य आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी ने संपूर्ण सघ को संभाला और जुट गये गुरु और धर्म की प्रभावना करने में ।

इन दोनों महामूर्तियों का एक रूप है उनके ही पट्टाधीस आचार्य श्री सन्मति सागर जिनमें अपने दादा गुरु का तप तथा गुरु का ज्ञान दोनों एक साथ झलकते हैं ।

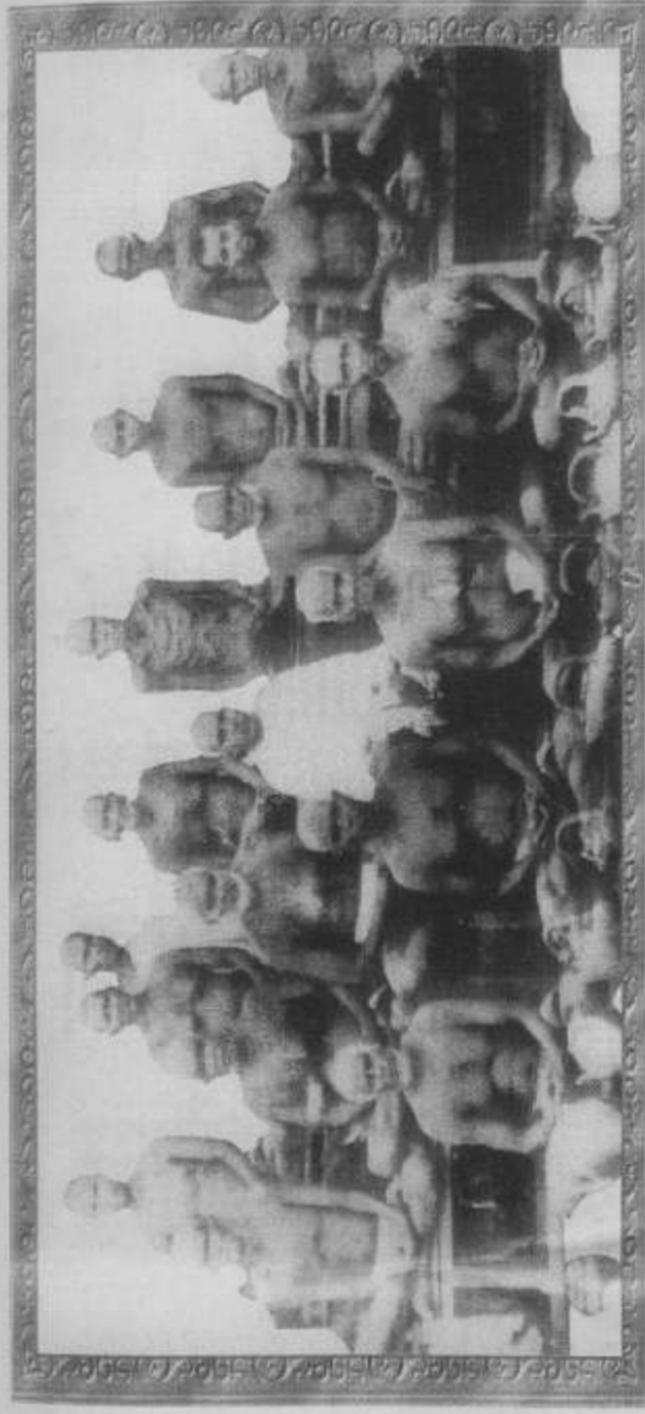
जयवंत रहे यह परंपरा, ऐसे ही दिव्य "नक्षत्र" इस धरा को प्रकाशित करते रहे ।

जयवंत हों, वह श्रमण जन .....जयवंत हो ।

## प्रणमामि

आचार्य श्री आदिसागर गुरु, चारित्र्य भूषितम्  
मिषजं मांत्रिकं ज्योतिर्विदं, नैयायिकं महाकविम् ।  
निमित्तज्ञं बुधैः पूज्यं, सर्वसंग विदूरितम्,  
प्रभावशालिनं धीरं वंदे, त्रैविध्य भक्तितः ॥

बंदे श्री महावीर कीर्ति सुगुरुं, विद्याधिपारंप्रदं,  
कालेद्यापि तपोनिधिं गुणगणैः, पूर्ण पवित्रं स्वयं ।  
नग्नत्वादि दुष्ट शतपरिष है, मग्निो न योगिराट्,  
पायान्मां कुबुद्धि कुष्ठ कुहरात्, संसार पाथो निधेः ॥



बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य १०८ श्री आदिसागर जी महाराज सा. अंकलीकर अपने विशाल के मध्य साथ में आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी,

आचार्य श्री देशभूषणजी आदि विराजमान हैं।